महर्षि वाल्मीकि विरचित

अद्भुत रामायण

वाराणसी

महर्षि वाल्मीकि विरचित

अद्भुत रामायण

(मूल और हिन्दी अनुवाद सहित)

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक

राम कुमार राय

प्राच्य प्रकाशन

जगतगंज, वाराणसी

प्रथम बार १९८२

प्रकाशक :
प्राच्य प्रकाशन
७४-ए, जगतगंज
वाराणसी - २२१ ००२ (भारत)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य
~~सजिल्द १६.०० रुपये~~
अजिल्द १२.०० रुपये

एकमात्र वितरक :
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० आ० चौखम्बा, पो० बा० ८
वाराणसी-२२१००१ (भारत)

मुद्रक :
अनूप प्रिन्टिंग वर्क्स, जगतगंज, वाराणसी

ADBHUTA RAMAYANA

(OF MAHARSHI VALMIKI)

Text Edited and Translated into Hindi
by
RAM KUMAR RAI

PRACHYA PRAKASHAN
VARANASI

First Edition : 1982

PRACHYA PRAKASHAN
74-A, Jagatganj
VARANASI—221002 (INDIA)
Phone : 53252

All Rights Reserved

No part of this book may be translated or reproduced in any form, by print, photoprint, microfilm or any other means without written permission from the publishers.

Price
Cloth Bound Rs. 16.00
Hard Cover Rs. 12.00

Sole Distributors :
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Post Box No. 8
VARANASI-221001 (INDIA)

Printed by P. K. Rai at the Anoop Printing Works, Varanasi, and Published by Rakesh Rai for Prachya Prakashan, Varanasi.

भूमिका

ऐसी मान्यता है कि संसार में श्रीराम कथा का शतकोटि विस्तार है—रामायणमितिख्यातं शतकोटि प्रविस्तरम्—जिनमें से अधिकांश ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हैं। पृथिवी पर भी २५,००० रामायणों के प्रचलित होने की बात अद्भुत रामायण में कही गई है। परन्तु आज प्रकाशित रूप से कुछ गिने-चुने रामायण ही मिलते हैं। अद्भुत रामायण, जो बहुत पहले छपा था, वह भी अब उपलब्ध नहीं था। साथ ही, पहले के संस्करणों के पाठ और अनुवाद दोनों त्रुटिपूर्ण थे। हमने प्रस्तुत संस्करण में पाठ को संशोधित और अनुवाद को भी मूल के अधिक निकट लाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत रामायण का कथावस्तु अनेक दृष्टियों से अद्वितीय और महत्व-पूर्ण है। श्रीराम और सीता के एकत्व का प्रतिपादन होने के साथ ही साथ इसमें शक्ति के प्रभाव को प्रधानता दी गई है। दशमुख रावण का वध करने के पश्चात् अयोध्या आकर श्रीराम ने राज्य प्राप्त किया। सीता सहित राज्य पर अभिषिक्त होने के बाद अनेक दिशाओं से महर्षियों ने आकर श्रीराम को रावणवध पर साधुवाद देते हुये जानकी देवी द्वारा वनवासकाल में सहे गये कष्टों तथा रावण द्वारा अपहृत होने से रामवियोग का असह्य दुःख सहन करने पर सहानुभूति प्रकट की। तब सीता ने बिना किसी अहंकार या क्रोध के अत्यन्त विनम्र भाव से सहस्रमुख रावण की कथा का वर्णन किया जिसे सुनकर श्रीराम उत्तेजित हो इस महारावण के वध के लिये प्रस्थित हुये। सहस्रमुख रावण पुष्कर द्वीप में रहता था। अतः अपनी सेना, भ्राताओं, महर्षियों और सीता देवी के साथ श्रीराम

पुष्कर द्वीप आये जहाँ सहस्रमुख रावण से उनका युद्ध हुआ। युद्ध में रावण के शक्ति प्रहार से श्रीराम पुष्पक विमान में ही मूर्च्छित हो गये। इस अप्रत्याशित घटना से क्रुद्ध हो देवी सीता ने महाकाली का रूप धारण कर रावणवध किया। ब्रह्मा आदि देवताओं ने आकर श्रीराम की मूर्च्छा दूर की। रणभूमि में महाकाली के रौद्र और भयानक रूप को देखकर श्रीराम भयभीत हो उठे किन्तु ब्रह्मादि देवताओं के आश्वासन पर उन्होंने सहस्रनाम से सीता की स्तुति की। तब सीता के शान्त होने पर श्रीराम उनको साथ लेकर पुनः अयोध्या लौटे और प्रजा का पालन करने लगे। इसी कथा का प्रस्तुत अद्भुत रामायण में विस्तार से वर्णन है।

कथाक्रम में अनेक अन्य प्रसङ्ग भी आये हैं, जिनमें से कुछ अन्यत्र मिलते हैं, किन्तु सीता के जन्म का कारण, रावण के वध का हेतु, नारद-मोह आदि के प्रसंग इसमें भिन्न रूप से वर्णित हैं। परशुरामजी को विश्व-रूप दिखाने का प्रसङ्ग तो अक्षरशः महाभारत से लिया गया है। फिर भी अपने मूलकथावस्तु की दृष्टि से यह रामायण अपने नाम को सार्थक करता हुआ वास्तव में अद्भुत है।

हिन्दी टीका में यदि मेरी अल्पज्ञता से कहीं दोष प्रतीत हो तो सुधी पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

राम कुमार राय

विषयानुक्रमणिका

सर्ग	विषय	पृष्ठ
१.	श्रीरामसीता के परब्रह्मत्व का प्रतिपादन	१
२.	राजा अम्बरीष की नारायण से वरप्राप्ति	५
३.	नारद-पर्वत का राजसभा में आगमन	१३
४.	श्रीरामचन्द्र के जन्म लेने का कारण	१९
५.	सीताजी के जन्म लेने का कारण-कथन	३१
६.	हरिमित्रोपाख्यान	४०
७.	नारद को गानविद्या की प्राप्ति	५४
८.	सीताजी का जन्मवर्णन	६४
९.	श्रीराम का परशुराम को दिव्यरूप दिखाना	७१
१०.	रामचन्द्र का महावीर को चतुर्भुज रूप दिखाना	७६
११.	श्रीराम द्वारा सांख्य-योग वर्णन	८०
१२.	उपनिषद् कथन	८८
१३.	श्रीराम द्वारा भक्तियोग कथन	९२
१४.	श्रीरामचन्द्र और हनुमान का संवाद	९७
१५.	हनुमानजी द्वारा श्रीरामचन्द्र की स्तुति	१०५
१६.	रावणवध करके श्रीराम की राज्यप्राप्ति	१०९
१७.	सीताभाषण, सहस्रमुख रावण का वृत्तान्त	११३
१८.	रावण की सेना का निकलना	१२३
१९.	सहस्रमुखी रावण के पुत्रों का युद्ध के लिये निकलना	१३३
२०.	संकुलयुद्ध	१३९
२१.	रावण द्वारा श्रीराम की सेना का विक्षेप	१४४
२२.	श्रीराम का मूर्च्छित होना	१४७
२३.	जानकी द्वारा सहस्रमुख रावण का वध	१५५
२४.	देवों द्वारा राम का आश्वासन	१६६
२५.	श्रीराम द्वारा सहस्रनाम से जानकी की स्तुति	१७२
२६.	श्रीरामविजय-वर्णन	१९४
२७.	श्रीराम का अयोध्या आना	२०१

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अद्भुत रामायणम्

भाषाटीकासहितम्

प्रथम सर्ग

श्रीरामसीता के परब्रह्मत्व का प्रतिपादन

तमसातीरनिलयं निलयं तपसां गुरुम् ।
वचसां प्रथमं स्थानं वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥
विनयावनतोभूत्वा भारद्वाजोमहामुनिः ।
अपृच्छत्सम्मतः शिष्यः कृताञ्जलिपुटो वशी ॥ २ ॥

तमसातट निवासी तपस्वियों के गुरु, वाणी के प्रथम स्थान, मुनि-श्रेष्ठ वाल्मीकि से उनके सम्मत शिष्य महामुनि भरद्वाज जी ने विनय से नम्र हो हाथ जोड़ कर कहा :

रामायणमितिख्यातं शतकोटिप्रविस्तरम् ।
प्रणीतं भवता यच्च ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥
श्रूयते ब्रह्मणा नित्यमृषिभिः पितृभिः सुरैः ।
पञ्चविंशतिसाहस्त्रं रामायणमिदं भुविः ॥ ४ ॥
तदाकर्णि तमस्माभिः सविशेषं महामुने ।

शतकोटि श्लोकों में जिस रामायण का विस्तार कहा गया है, जो आपके द्वारा प्रणीत और ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित है, जिसे ब्रह्मा, ऋषि, देवता और पितृगण नित्य श्रवण करते हैं और जिसमें से पच्चीस सहस्त्र रामायण यहाँ इस पृथिवी पर हैं उन्हें, हे महामुनि, हमने सुना है ।

शतकोटिप्रविस्तारे रामायणमहार्णवे ॥ ५ ॥
किं गीतमिह मुष्णाति तन्मे कथय सुव्रत ।

परन्तु हे सुव्रत ! रामायण के शतकोटि विस्तार में क्या कथा गुप्त है उसका आप हमसे वर्णन कीजिये ।

आकर्ण्यादरिणः पृष्टं भारद्वाजस्य वै मुनिः ॥ ६ ॥

हस्तामलकवत्सर्वं सस्मार शतकोटिकम् ।

ओमित्युक्त्वा मुनिः शिष्यं प्रोवाच वदतां वरम् ॥ ७ ॥

भरद्वाज का यह प्रश्न सुन कर उन मुनिराज ने हस्तामलकवत् सम्पूर्ण शतकोटिरूपी रामायण का स्मरण किया और अपने शिष्य से तथास्तु कह कर इस प्रकार बोले :

भारद्वाज ! चिरञ्जीव साधु स्मारितमद्य नः ।

हे भरद्वाज ! तुम चिरजीवी होओ । तुमने हमको एक श्रेष्ठ बात का स्मरण कराया है ।

शतकोटिप्रविस्तारे रामायणमहार्णवे ॥ ८ ॥

रामस्य चरितं सर्वमाश्चर्यं सम्यगीरितम् ।

पञ्चविंशतिसाहस्रं भूलोके यत् प्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥

नृणां हि सदृशं रामचरितं वर्णितं ततः ।

सीतामाहात्म्यसारं यद्विशेषादत्र नोक्तवान् ॥ १० ॥

शतकोटि विस्तारवाले रामायण महासागर में श्रीराम का चरित्र सर्वाधिक आश्चर्यमय है। जो पच्चीस सहस्र रामायण मनुष्य लोक में प्रतिष्ठित हैं उनमें श्रीराम का चरित्र मनुष्यों के समान वर्णित है, किन्तु उनमें सीता-माहात्म्य को विशेष रूप से नहीं कहा गया है।

शृणुष्वावाहितोब्रह्मन् ! काकुत्स्थचरितं महत् ।

सीताया मूलभूतायाः प्रकृतेश्चरितञ्च महत् ॥ ११ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुम उस विशाल रामचरित्र का सावधान होकर श्रवण करो जो मूलप्रकृति सीता का चरित्र है ।

आश्चर्यमाश्चर्यमिदं गोपितं ब्रह्मणोगृहे ।

हिताय प्रियशिष्याय तुभ्यमावेदयामि तत् ॥ १२ ॥

यह जो ब्रह्मा जी के गृह में गोपित आश्चर्यों में आश्चर्य है उसे मैं तुम

जैसे प्रिय शिष्य के हितार्थ वर्णन करता हूँ।

जानकी प्रकृतिः सृष्टेरादिभूता महागुणा ।
तपःसिद्धिः स्वर्गसिद्धिर्भूतिर्मूर्तिमतां सती ॥ १३ ॥
विद्याविद्या च महती गीयते ब्रह्मवादिभिः ।
ऋद्धिः सिद्धिर्गुणमयी गुणातीता गुणात्मिका ॥ १४ ॥
ब्रह्मब्रह्माण्डसम्भूता सर्वकारणकारणम् ।
प्रकृतिर्विकृतिर्देवी चिन्मयी चिद्विलासिनी ॥ १५ ॥
महाकुण्डलिनी सर्पानुस्यूता ब्रह्मसंज्ञिता ।
यस्या विलसितं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ १६ ॥

जानकी प्रकृतिरूप, सृष्टि की आदिभूत और महागुण सम्पन्न हैं। वे तपसिद्धि, स्वर्गसिद्धि, ऐश्वर्यरूप और मूर्तिमान सती हैं। ब्रह्मवादी उनका ही विद्या-अविद्या रूप से गायन करते हैं। वही ऋद्धि, सिद्धि, गुणमयी, गुणातीत और गुणात्मिका हैं। ब्रह्म और ब्रह्माण्ड उन्हीं से सम्भूत हैं, वही सर्वकारणों की कारण हैं, वही प्रकृति-विकृति की देवी, चिन्मयी और चिद्विलासिनी हैं। वही सबको प्रकट करने वाली महाकुण्डलिनी और ब्रह्म संज्ञा से युक्त हैं। यह चराचर जगत उन्हीं से बिलसित है।

यामाधाय हृदि ब्रह्मन् ! योगिनस्तत्वदर्शिनः ।
विघट्टयन्ति हृद्ग्रन्थिं भवन्ति सुखमूर्त्तिकाः ॥ १७ ॥
यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति सुव्रत ! ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा प्रकृतिसम्भवः ॥ १८ ॥

तत्वदर्शी ब्रह्मयोगी जिसको हृदय में धारण करके अज्ञानमयी हृद्ग्रन्थि को नष्ट कर सुखी होते हैं, हे सुव्रत ! जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब धर्म के उत्थान के लिये उन प्रकृति का आविर्भाव होता है।

रामः साक्षात् परं ज्योतिः परं धाम परः पुमान् ।

आकृतौ परमो भेदो न सीतारामयोर्यतः ॥ १९ ॥
रामः सीता जानकी रामभद्रो नाणुर्भेदो नैतयोरस्ति कश्चित् ।
सन्तो बुद्ध्वातत्त्वमेतद्विबुद्धाः पारं याताः संसृतेर्मृत्यु वक्त्रात् ।२०।

श्रीराम साक्षात् परमज्योति, परमधाम और परमपुरुष हैं। आकृति रूप में श्रीसीताराम में कोई भेद नहीं है। राम, सीता, जानकी, रामभद्र—इनमें अणुमात्र भी भेद नहीं हैं। इस तत्व को जानकर सन्तगण तत्वज्ञान को प्राप्त होते हैं और मृत्यु के मुख से छूट कर जन्म-मरण के चक्र से पार हो जाते हैं।

रामोऽचिन्त्यो नित्यचित्सर्वसाक्षी सर्वान्तः स्थः सर्वलोकैककर्त्ता ।
भर्त्ता हर्त्तानन्दमूर्त्तिर्विभूमा सीतायोगाच्चिन्त्यते योगिभिः सः ।२१।
अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्य चक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता तमाहुरन्यं पुरुषं पुराणम् । २२ ।

श्रीराम अचिन्त्य, नित्य, चित्स्वरूप, सर्वसाक्षी, सबके अन्तःकरण में स्थित, सब लोकों के एककर्ता, भर्ता, हर्ता, आनन्दमूर्ति और विभूमा हैं तथा योगिजन सीतायुक्त रूप में उनका चिन्तन करते हैं। वे चरण और हस्तादि के बिना सर्वत्र गमन और सब कुछ ग्रहण करने वाले हैं। वे सम्पूर्ण विश्व को जानते हैं किन्तु उनको जानने वाला कोई नहीं है। उन्हीं को अन्य और पुराण पुरुष कहते हैं।

तयोः परं जन्म उदाहरिष्ये ययोर्यथाकारणदेहधारिणोः ।
अरूपिणो रूपविधारणं पुनर्नृणां महानुग्रह एव केवलम् ॥ २३ ॥

मैं उन दोनों (श्रीराम और सीता) के जन्म का और जिस कारण उन दोनों ने देह धारण किया है, उसका वर्णन करूँगा। उन अरूपी का देहधारण केवल मनुष्यों के हित के निमित्त ही है।

पठन् द्विजोवागृषभत्वमीयात्क्षत्रान्वयो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनो पण्यफलत्वमीयाच्छृण्वन्हि शूद्रोहि महत्त्वमीयात् ।२४।

इसके पठन से ब्राह्मण श्रेष्ठ वाणीयुक्त होता है, क्षत्रिय भूमिपति होता

है, वैश्य व्यापारयोग्य फल प्राप्त करता है, और शूद्र इसके श्रवण से महत्व प्राप्त करता है ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीरामसीता-माहात्म्यकथनोपक्रमोनाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

राजा अम्बरीष की नारायण से वरप्राप्ति

भरद्वाज ! शृणुष्वाथ रामचन्द्रस्य धामतः ।
जन्मनः कारणं विप्र ! इक्ष्वाकुकुलवारिधौ ॥ १ ॥
सीतायाश्च महादेव्यः पृथिव्यां जन्महेतुकम् ।
तत्र रामकथामादौ वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ॥ २ ॥

हे भरद्वाज ! इक्ष्वाकुकुल-समुद्र में श्रीरामचन्द्र का जिस प्रकार जन्म हुआ उसे, और महादेवी सीता के भी पृथिवी पर जन्म लेने के कारण को सुनिये । हे मुनिपुङ्गव ! उसमें से मैं सर्वप्रथम श्रीरामकथा का वर्णन करता हूँ ।

श्रूयतां मुनिशार्दूल अम्बरीषकथालयम् ।
पुरुषोत्तममाहात्म्यं सर्वपापहरं परम् ॥ ३ ॥

हे मुनिशार्दूल ! आप हमसे अम्बरीष की कथा को श्रवण कीजिये । यह पुरोषत्तम माहात्म्य सब पापों का हरण करने वाला है ।

त्रिशंकोर्दयिता भार्या सर्वलक्षणशोभिता ।
अम्वरीषस्य जननी नित्यं शौचसमन्विता ॥ ४ ॥

त्रिशंकु की प्रिय भार्या सब लक्षणों से सुशोभित थीं । वह अम्बरीष की जननी और नित्य शौचसमन्वित थी ।

योगनिद्रासमारूढं शेषपर्यङ्कशायिनम् ।
नारायणं महात्मानं ब्रह्माण्डकमलोद्भवम् ॥ ५ ॥
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम् ।

सत्वेन सर्वगं विष्णुं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ ६ ॥

योगनिद्रा में आरूढ़, शेषशय्या पर शयन करने वाले महात्मा नारायण ब्रह्माण्ड और कमलोद्भव (ब्रह्मा) के निर्माता हैं। वे तमोगुण से युक्त होने पर कालरुद्र, रजोगुण से युक्त होने पर ब्रह्मा, और सतोगुण से युक्त होने पर सर्वदेवनमस्कृत विष्णु-स्वरूप होते हैं।

अर्चयामास सततं वाङ्मनःकायवृत्तिभिः।
माल्यदामादिकं सर्वं स्वयमेव व्यचीकरत् ॥ ७ ॥

वह (त्रिशंकुभार्या) मन-कर्म-वचन से उन्हीं नारायण की सतत अर्चना तथा माला आदि हाथ में लेकर स्वयं सेवा करती थी।

गन्धादिपेषणञ्चैव धूपद्रव्यादिकं तथा।
तत्सर्वं कौतुकाविष्टा स्वयमेव चकार सा ॥ ८ ॥

गन्धादि का पेषण और धूपद्रव्यादि का भी कार्य वह कौतुकाविष्ट होकर स्वयं ही करती थी।

शुभा पद्मावती नित्यं वचो नारायणेति च।
अनन्तेति च सा नित्यं भाषमाणा यतव्रता ॥ ९ ॥

वह शुभलक्षणा पद्मावती नित्य 'नमो नारायणाय' का उच्चारण और अनन्त नाम का भी संयमपूर्वक उच्चारण करती थी।

दशवर्षसहस्राणि तत्परेणान्तरात्मना।
अर्चयामास गोविन्दं गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ॥ १० ॥

वह दस सहस्र वर्ष तक अन्तरात्मा से तत्पर होकर गन्ध-पुष्पादि से गोविन्द की अर्चना करती रही।

विष्णुभक्तान्महाभागान् सर्वपापविवर्जितान्।
दानमानार्चनैर्नित्यं धनै रत्नैरतोषयत् ॥ ११ ॥

सर्वपापों से रहित विष्णु-भक्तों को दान, मान, धन, रत्न आदि से वह नित्य सन्तुष्ट करती थी।

ततः कदाचित्सा देवी द्वादश्यां समुपोष्य वै।

हरेरग्रे महाभागा सुष्वाप पतिना सह ॥ १२ ॥

एक समय वह देवी द्वादशी व्रत रखते हुये पति के साथ हरि के आगे सो रही थी ।

तत्र नारायणो देवस्तामाह पुरुषोत्तमः ।
किमिच्छसि वरं भद्रे मत्तः किं ब्रूहि भामिनि ॥ १३ ॥
सा दृष्ट्वा तं वरं वव्रे पुत्रस्त्वद्भक्तिमान्भवेत् ।
सार्वभौमो महातेजाः स्वकर्मनिरतः शुचिः ॥ १४ ॥

तब पुरुषोत्तम नारायणदेव ने उससे कहा : 'हे भामिनि ! तुम क्या वर चाहती हो ?' उन्हें देख कर उसने यह वर माँगा कि 'अपनी भक्ति-वाला मुझे ऐसा पुत्र दीजिये जो सार्वभौम, महातेजस्वी और अपने कर्म निरत तथा पवित्र हो ।'

तथेत्युक्त्वा ददौ तस्यै फलमेकं जनार्दनः ।
सा प्रबुद्धा फलं दृष्ट्वा भर्त्रे सर्वं निवेद्य च ॥ १५ ॥
भक्षयामास संदर्श्य फलं तद्धृष्टमानसा ।
ततः कालेन सा देवी पुत्रं कुलविवर्द्धनम् ॥ १६ ॥
असूयत शुभाचारं वासुदेवपरायणम् ।
शुभलक्षणसम्पन्नं चक्राङ्कितमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

उनके यह कहने पर जनार्दन ने उन्हें एक फल दिया । उस फल को देख कर वह जाग उठी और अपने पति से सब कुछ निवेदन करने के बाद प्रसन्न मन से उस फल को खा गई । तब समय आने पर उस देवी ने एक कुलवर्धन सुन्दर आचरणयुक्त और वासुदेवपरायण पुत्र को उत्पन्न किया जो शुभ लक्षणों से सम्पन्न, चक्रादि अंकित और श्रेष्ठ था ।

जातं दृष्ट्वा पिता पुत्रं क्रियाः सर्वाश्चकार वै ।
अम्बरीष इति ख्यातो लोके समभवत्प्रभुः ॥ १८ ॥

पुत्र को उत्पन्न हुआ देख कर उसके पिता ने उसके सम्पूर्ण कृत्य सम्पन्न किये । वही पुत्र लोक में अम्बरीष के नाम से विख्यात हुआ ।

पितर्युपरते श्रीमानभिषिक्तोमहात्मभिः।
मंत्रिष्वाधाय राज्यं च तप उग्रं चकार सः ॥ १९ ॥
संवत्सर सहस्रं वै जगन्नारायणं प्रभुम्।
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं सूर्यमण्डलमध्यगम् ॥ २० ॥

पिता के उपरत होने पर उस महात्मा का राज्याभिषेक हुआ। तब उन्होंने (अम्बरीष ने) मन्त्रियों को राज्य सौंप कर उग्र तप किया। उन्होंने सहस्र-संवत्सरों तक हृदयकमल के मध्य में तथा सूर्य में प्रभु नारायण का जप किया।

शंखचक्रगदापद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम्।
शुद्धजाम्बूनदनिभं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ २१ ॥
सर्वाभरणसंयुक्तं पीताम्बरधरं प्रभुम्।
श्रीवत्सवक्षसं देवं पुरुषं पुरुषोत्तमम् ॥ २२ ॥
ततो गरुडमारुह्य सर्वदेवैरभिष्टुतः।
आजगाम स विश्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ॥ २३ ॥
ऐरावतमिवाचिन्त्ये कृत्वा वै गरुडं हरिः।
स्वयं शक्र इवासीनस्तमाह नृपसत्तमम् ॥ २४ ॥

तब शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले चतुर्भुज, शुद्ध-सुवर्ण के समान आभावाले, ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक, सम्पूर्ण आभूषणों से युक्त, पीताम्बरधारी प्रभु, श्रीवत्स को वक्षःस्थल में धारण किये हुये, गरुड़ पर आरूढ़, सर्वदेवों से स्तुत, और सर्वलोकों से नमस्कृत, विश्वात्मा, पुरुषोत्तम नारायणदेव वहाँ आये। तदनन्तर गरुड को ऐरावत के समान करके तथा स्वयं इन्द्र का रूप धारण कर वे उन नृपश्रेष्ठ के निकट आये और बोले :

इन्द्रोऽहमस्मि भद्रं ते किं ददामि तवाद्य वै।
सर्वलोकेश्वरोऽहं त्वां रक्षितुं समुपागतः ॥ २५ ॥

हे राजन्! मैं इन्द्र हूँ, तुम्हें मैं क्या वस्तु दूँ। मैं सर्वलोकेश्वर हूँ और तुम्हारी रक्षा के लिये आया हूँ।

अम्बरीषस्तु तं दृष्ट्वा शक्रमैरावतस्थितम् ।
उवाच वचनं धीमान् विष्णुभक्तिपरायणः ॥ २६ ॥
नाहं त्वामभिसन्धाय तप आस्थितवानिह ।
त्वया दत्तश्च नेच्छामि गच्छ शक्र यथासुखम् ॥ २७ ॥
मम नारायणो नाथस्त्वां नस्तोष्येऽमराधिप ! ।
व्रजेन्द्र मा कृथास्त्वत्र ममाश्रमविलोपनम् ॥ २८ ॥

ऐरावत पर स्थित उन इन्द्र को देखकर विष्णुभक्ति-परायण राजा अम्बरीष ने यह वचन कहा : 'मैंने आप के उद्देश्य से तप नहीं किया है। आप द्वारा दी हुई वस्तु की मुझे इच्छा नहीं है। अतः हे शक्र! आप सुखपूर्वक गमन कीजिये। मेरे स्वामी तो नारायण हैं। हे अमरों के अधिपति ! मैं आप से कुछ नहीं चाहता, अतः आप पधारिये। मेरे इस आश्रम में अपने समय को व्यर्थ मत कीजिये।

ततः प्रहस्य भगवान् स्वरूपमकरोद्धरिः ।
शार्ङ्ग-चक्र-गदा-पाणिः शङ्खहस्तो जनार्दनः ॥ २९ ॥
गरुडोपरि विश्वात्मा नीलाचल इवापरः ।
देवगन्धर्वसंघैश्च स्तूयमानः समन्ततः ॥ ३० ॥
प्रणम्य राजा सन्तुष्टस्तुष्टाव गरुडध्वजम् ।

तब हँस कर भगवान् ने अपना स्वरूप प्रकट किया। शार्ङ्ग, चक्र, गदा और शङ्ख हाथ में लिये हुये, देवों और गन्धर्वों के समूहों द्वारा सब ओर से स्तुति को प्राप्त, गरुड़ पर स्थित, दूसरे नीलाचल के समान सुशोभित विश्वात्मा जनार्दन को देख कर राजा ने प्रणाम किया और उन गरुडध्वज को स्तुति से सन्तुष्ट करने लगे।

प्रसीद लोकनाथस्त्वं मम नाथ जनार्दनः ॥ ३१ ॥
कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ सर्वलोकनमस्कृत ।
त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनन्तः च पुरुषः प्रभुः ॥ ३२ ॥

मेरे नाथ, जनार्दन, लोकनाथ ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे

कृष्ण, हे कृष्ण, हे जगन्नाथ, हे सर्वलोकनमस्कृत ! आप आदि, अनादि, अनन्त पुरुष और प्रभु हैं।

अप्रमेयो विभुर्विष्णुर्गोविन्दः कमलेक्षणः ।

महेश्वरांशजो मध्यः पुष्करः खगगः खगः ॥ ३३ ॥

कव्यवाहः कपाली त्वं हव्यवाहः प्रभञ्जनः ।

आदिदेवः क्रियानन्दः परमात्मनि संस्थितः ॥ ३४ ॥

अप्रमेय, विभु, विष्णु, गोविन्द, कमललोचन, महेश्वरांशज, मध्य, पुष्कर, और अनन्त पुरुष हैं। आप कव्यवाह, कपाली, हव्यवाह, प्रभञ्जन हैं। आप आदिदेव, क्रियानन्द परमात्मा में स्थित हैं।

त्वां प्रपन्नोऽस्मि गोविन्द पाहि मां पुष्करेक्षण ।

नान्या गतिस्त्वदन्या मे त्वामेव शरणं गतः ॥ ३५ ॥

हे गोविन्द मैं आपकी शरण में हूँ। हे पुष्करेक्षण मेरी रक्षा कीजिये। आपके अतिरिक्त मेरी अन्य गति नहीं है। मैं आपकी शरण में हूँ।

तमाह भगवान् विष्णुः किं ते हृदि चिकीर्षितम् ।

तत्सर्वं संप्रदास्यामि भक्तोऽसि मम सुव्रत ॥ ३६ ॥

भक्तप्रियोऽस्मि सततं तस्माद्दातुमिहागतः ।

तब भगवान् विष्णु ने पूछा : 'हे सुव्रत ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? तुम मेरे भक्त हो, मैं तुम्हें सब कुछ दूंगा। मैं निरन्तर भक्तप्रिय हूँ। इसी कारण मैं तुमको यथेच्छ फल देने के लिये आया हूँ।'

अम्बरीषस्तु तत् श्रुत्वा हर्षगद्गदया गिरा ॥ ३७ ॥

प्रोवाच परमात्मानं नारायणमनामयम् ।

त्वयि विष्णौ परानन्दे नित्यं मे वर्त्ततां मतिः ॥ ३८ ॥

भवेयं त्वत्परोनित्यं वाङ्मनः कायकर्मभिः ।

पालयिष्यामि पृथिवीं कृत्वा वै वैष्णवं जगत् ॥ ३९ ॥

यज्ञहोमार्चनैश्चैव तर्पिष्यामि सुरोत्तमान् ।

वैष्णवान् पालयिष्यामि हनिष्यामि च शात्रवान् ॥ ४० ॥

'तुम मेरे भक्त हो' यह वचन सुन कर अम्बरीष हर्षगद्‌गद हो गये और परमात्मा अनामय नारायण से बोले : 'हे विष्णु ! मेरी आप में निरन्तर भक्ति हो। मन, वचन, कर्म से मैं नित्य आपकी सेवा करके पृथिवी को विष्णुभक्त बना दूंगा। यज्ञ, होम और अर्चना से देवों को तृप्त कर, वैष्णवों का पालन तथा असुरों का हनन करूंगा।

एवमुक्तस्तु भगवान् प्रत्युवाच नृपोत्तमम्।
एवमस्तु तवेच्छा वै चक्रमेतत्सुदर्शनम् ॥ ४१ ॥
पुरा रुद्रप्रभावेन लब्धं वै दुर्लभं मया।
ऋषिशापादिकं दुःखं शत्रु रोगादिकं तथा ॥ ४२ ॥
निहनिष्यति ते दुःखमित्युक्त्वान्तरधीयत।

राजा के इस प्रकार कहने पर भगवान् ने उन नृपश्रेष्ठ से कहा : 'जैसी तुम्हारी इच्छा है वैसा ही होगा। यह सुदर्शन चक्र, जिसे पहले हमने रुद्र के प्रभाव से प्राप्त किया था, ऋषिशाप, दुःख, शत्रु, और रागादि तुम्हारे दुःखों का हनन करेगा।' ऐसा कह कर वे अन्तर्धान हो गये।

ततः प्रणम्य मुदितो राजा नारायणं प्रभुम् ॥ ४३ ॥
प्रविश्य नगरीं दिव्यामयोध्यां पर्यपालयत्।
ब्राह्मणादींस्तथा वर्णान् स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत् ॥ ४४ ॥

तब प्रसन्न होकर राजा ने नारायण प्रभु को प्रणाम किया और दिव्य अयोध्या नगरी में प्रवेश कर उसका पालन करने लगे। उन्होंने ब्राह्मण आदि वर्णों को भी उनके अपने-अपने कर्मों में लगा दिया।

नारायणपरो नित्यं विष्णु भक्तानकल्मषान्।
पालयामास हृष्टात्मा विशेषेण जनाधिपः ॥ ४५ ॥

वे राजा नित्य नारायण में तत्पर हो विष्णुभक्तों का विशेष रूप से पालन करने लगे।

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतानि च।
पालयामास पृथिवीं सागरावरणामिमाम् ॥ ४६ ॥

उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ किया और सागरपर्यन्त

पृथिवी का पालन करने लगे।

गृहे गृहे हरिस्तस्थौ वेदघोषो गृहे गृहे ।

नामघोषो हरेश्चैव यज्ञघोषस्तथैव च ॥ ४७ ॥

उस समय घर-घर में श्रीहरि की प्रतिष्ठा और वेदघोष तथा प्रत्येक घर में हरि के नाम का उच्चारण और यज्ञघोष होता था।

अभवन्नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यं प्रशासति ।

नासस्या नातृणा भूमिर्न दुर्भिक्षादिभिर्युता ॥ ४८ ॥

रोगहीना प्रजा नित्यं सर्वोपद्रववर्जिता ।

उन नृपशार्दूल के राज्य में इसी प्रकार के कार्य होते थे। राज्य की भूमि तृण और अन्न से युक्त रहती थी तथा दुर्भिक्ष आदि का नाम भी नहीं था। उनकी प्रजा नित्य रोगहीन और हर प्रकार के उपद्रवों से रहित थी।

अम्बरीषो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् ॥ ४९ ॥

स वै महात्मा सततं च रक्षितः सुदर्शनेन प्रियदर्शनेन ।

शुभां समुद्रावधिसन्ततां महीं सुपालयामास महीमहेन्द्रः ॥ ५० ॥

इस प्रकार महातेजस्वी अम्बरीष पृथिवी का पालन करते थे। वे महात्मा सुदर्शन चक्र से भली प्रकार रक्षित होकर सागरपर्यन्त पृथिवी का अच्छी तरह पालन करते थे।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
अम्बरीषवरप्रदानं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

नारद-पर्वत का राजसभा में आगमन

तस्यैवं वर्त्तमानस्य कन्या कमल-लोचना ।
श्रीमती नाम विख्याता सर्वलक्षणशोभिता ॥ १ ॥

उनके इस प्रकार विद्यमान होते हुये, उन्हें (अम्बरीष को) सर्व-लक्षणों से सुशोभित श्रीमती नाम से विख्यात एक कमललोचना कन्या प्राप्त हुई ।

प्रदानसमयं प्राप्ता देवमायेव शोभना ।
तस्मिन्काले मुनिः श्रीमान् नारदोऽभ्यागतोगृहम् ॥ २ ॥
अम्बरीषस्य राज्ञो वै पर्वतश्च महाद्युतिः ।

प्रदान-समय प्राप्त होने पर वह देवोपम सौन्दर्य से शोभित हुई । उन्हीं दिनों राजा अम्बरीष के घर पर श्रीमान् नारदमुनि आये और महाद्युतिमान पर्वत भी आये ।

तावुभावागतौ दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि ॥ ३ ॥
अम्बरीषो महातेजाः पूजयामास तौ नृपः ।

उन दोनों लोगों को आया देखकर महातेजस्वी राजा अम्बरीष ने उनका विधिवत् पूजन किया ।

ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ सर्वलक्षणशोभिता ॥ ५ ॥
कन्यां तां प्रेक्ष्य भगवान् नारदः प्राह विस्मितः ॥ ४ ॥
केयं राजन् महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ।

उन धर्मात्मा की श्रेष्ठ और सर्वलक्षणों से शोभित कन्या को देखकर विस्मित हो भगवान् नारदजी बोले : 'हे राजन् ! यह देवपुत्री के समान महाभागा कन्या किसकी है ?'

निशम्य वचनं तस्य राजा प्राह कृताञ्जलिः ।
दुहितेयं मम विभो श्रीमती नाम नामतः ॥ ६ ॥

प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभा ।

उन ऋषि का यह वचन सुन कर राजा हाथ जोड़कर बोले : 'यह श्रीमती नामवाली मेरी कन्या है। यह प्रदानसमय को पहुँच चुकी है और वर की खोज में है।

इत्युक्तोमुनिशार्दूलस्तामिच्छन्नारदो द्विजः ॥ ७ ॥
पर्वतोऽपि मुनिस्तां वै चकमे सर्षिसत्तमः ।

राजा के ऐसा कहने पर मुनिशार्दूल नारद जी ने उसको प्राप्त करने की इच्छा की। ऋषिसत्तम पर्वत मुनि ने भी उसकी इच्छा की।

अनुज्ञाप्य च राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
रहस्याहूय धर्म्मात्मा मम देहि सुतामिमाम् ।
पर्वतोऽपि तथा प्राह राजानं रहसि प्रभुम् ॥ ९ ॥

तब राजा को अनुज्ञापित करते हुये धर्मात्मा नारद जी उनसे एकान्त में बोले : 'यह कन्या मुझे दे दीजिये।' पर्वत जी ने भी राजा से एकान्त में ऐसा ही कहा।

तावुभौ प्राह धर्म्मात्मा प्रणिपत्य भयार्दितः ।
उभौ भवन्तौ कन्यां मे प्रार्थमानौ कथं त्वहम् ॥ १० ॥
करिष्यामि महाप्राज्ञौ शृणु नारद मे वचः ।
त्वञ्च पर्वत मे वाक्यं शृणु वक्ष्यामि यत्प्रभो ॥ ११ ॥
कन्येयं युवयोरेकं वरयिष्यति चेत् शुभा ।
तस्मै कन्यां प्रयच्छामि नान्यथा शक्तिरस्ति मे ॥ १२ ॥

इन दोनों के ऐसा कहने पर भयाकुल होकर राजा बोले : 'आप दोनों ही मुझसे कन्या की प्रार्थना कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हे नारद जी, हे पर्वत जी, मैं आप लोगों के वचन को किस प्रकार पूर्ण करूँ। अतः मैं जो कुछ कहता हूँ उसे आप सुनें। यह कन्या आप दोनों में से जिसका वरण करेगी उसी को मैं कन्या दे दूँगा। इससे अन्यथा मुझमें देने की शक्ति नहीं है।

तथेत्युक्त्वा तु तौ विप्रौ श्व आयास्याव एवहि ।

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलौ जग्मतुः प्रीतमानसौ ॥ १३ ॥
वासुदेवपरौ नित्यमुभौ ज्ञानवतां वरौ ।

तव 'बहुत अच्छा' कह कर वे दोनों ब्राह्मण मुनिशार्दूल दूसरे दिन आने को कह कर प्रसन्नतापूर्वक चले गये। ज्ञानियों में श्रेष्ठ वे दोनों वासुदेव परायण थे।

विष्णुलोकं ततोगत्वा नारदोमुनिसत्तमः ॥ १४ ॥
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ।
वृत्तान्तश्च निवेद्याग्रे नाथ नारायणाव्यय ॥ १५ ॥
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि नमस्ते भुवनेश्वर ।

तव मुनिसत्तम नारद ने विष्णुलोक में जाकर हृषिकेश को प्रणाम किया और सम्पूर्ण वृत्तान्त बताने के बाद कहा : 'हे अविनाशी नारायण ! मैं एकान्त में आप से कुछ कहूँगा। हे भुवनेश्वर आपको प्रणाम।'

ततः प्रहस्य गोविन्दः सर्वात्मा कर्मठं मुनिम् ॥ १६ ॥
ब्रूहीत्याह स विश्वात्मा मुनिराह च केशवम् ।
त्वदीयोनृपतिः श्रीमानम्बरीषो महामतिः ॥ १७ ॥
तस्य कन्यां विशालाक्षी श्रीमती नाम नामतः ।
परिणेतुमहं तां वै इच्छामि वचनं शृणु ॥ १८ ॥
पर्वतोयं मुनिः श्रीमान् तव भृत्यस्तपोनिधिः ।
तामैछत्सोऽपि भगवन्स्तमाह जनाधिपः ॥ १९ ॥
अम्बरीषो महातेजाः कन्येयं युवयोर्वरम् ।
लावण्ययुक्तं वृणुयात् यदि तस्मै ददाम्यहम् ॥ २० ॥

सर्वात्मा गोविन्द ने हँस कर उन कर्मठ मुनि से कहा कि 'कहिये।' तब वह केशव से बोले : "राजा अम्बरीष आपके भक्त हैं। उनकी श्रीमती नामवाली एक विशाललोचना कन्या है। मेरी उससे विवाह करने की इच्छा है। यह आप सुनिये। श्रीमन् ! तपोनिधि पर्वत मुनि भी आपके भक्त हैं। वे भी उसी की इच्छा रखते हैं। और महातेजस्वी

अम्बरीष ने कहा है कि दोनों में से जिसको सुन्दर समझकर कन्या वरण करेगी उसे ही कन्या देंगे।

इत्याहावां नृपस्तत्र तथेत्युक्त्वाप्यहं ततः।
आगमिष्यामि ते राजन् श्वः प्रभाते गृहं प्रति ॥ २१ ॥
आगतोहं जगन्नाथ कर्तुमर्हसि मे प्रियम्।
वानराननवत् भाति पर्वतस्य मुखं यथा ॥ २२ ॥
तथा कुरु जगन्नाथ मम चेदिच्छसि प्रियम्।
श्रीमती तु यथा पश्येन्नान्यः पश्येत्तथाविधम् ॥ २३ ॥

'तब बहुत अच्छा मैं प्रातःकाल तुम्हारे घर आऊँगा' ऐसा कह कर अब, हे जगन्नाथ ! मैं आपके पास आया हूँ। आप मेरा प्रिय कीजिये। यदि आपको मेरा प्रिय करने की इच्छा है तो पर्वत का मुख बानरवत् हो जाय और उस रूप को केवल श्रीमती ही देखे, अन्य कोई नहीं।"

तथेत्युक्त्वा स गोविन्दः प्रहस्य मधुसूदनः।
त्वयोक्तं तत्करिष्यामि गच्छ सौम्य ! यथासुखम् ॥ २ ॥
एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः प्रणिपत्य जनार्दनम्।
मन्यमानः कृतात्मानमयोध्यां वै जगाम सः ॥ २५ ॥

उनके यह कहने पर मधुसूदन गोविन्द हँस कर बोले : 'आपने जो कुछ कहा है मैं वैसा ही करूंगा। आप सुखपूर्वक गमन कीजिये।' यह सुन कर प्रसन्न हो मुनि ने जनार्दन को प्रणाम किया और अपने को कृतार्थ मानकर अयोध्या गये।

गते मुनिवरे तस्मिन् पर्वतोऽपि महामुनिः।
प्रणम्य माधवं हृष्टोरहस्येनमुवाच ह ॥ २६ ॥
वृत्तान्तञ्च निवेद्याग्रे नारदस्य जगत्पतेः।
गोलांगुलमुख यद्वन्मुखं भाति तथा कुरु ॥ २७ ॥
श्रीमती तु यथा पश्येन्नान्यः पश्येत्तथाविधम्।

उन मुनिवर के चले जाने पर महामुनि पर्वत प्रणाम कर माधव से

एकान्त में कहने लगे। उन्होंने नारद के वृत्तान्त का जगत्पति के आगे निवेदन कर के कहा : 'जिस प्रकार नारद का मुख गोलांगूल के समान हो जाय वैसा कीजिये, और उसे केवल श्रीमती ही देखे अन्य कोई नहीं।'

तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुस्त्वयोक्तं च करोमि वै ॥ २८ ॥
गच्छ शीघ्रमयोध्यां त्वं मा वादीर्नारदस्य वै ।
त्वया मे सम्विदं यच्च तथेत्युक्त्वा जगाम सः ॥ २९ ॥

यह सुनकर भगवान् विष्णु बोले : 'मैं तुम्हारे कथनानुसार करूँगा। तुम शीघ्र अयोध्या जाओ और नारद से कुछ न कहना।' 'आपने जो परामर्श दिया है वैसा ही होगा', ऐसा कह कर वे चले गये।

ततो राजा समाज्ञाय प्राप्तौ मुनिवरौ तदा ।

तब राजा ने देखा कि दोनों मुनिवर आ गये हैं।

माङ्गल्यैर्विविधैर्भद्रैरयोध्यां ध्वजमालिनीं ॥ ३० ॥
मण्डयामास लाजैश्च पुष्पैश्चैव समन्ततः ।

अयोध्यापुरी विविध प्रकार के मंगलों और ध्वजों से युक्त हो रही है तथा चारों ओर से उसे खीलों और पुष्पों से मण्डित किया गया है।

अभिषिक्तगृहद्वारां सिक्ताङ्गणमहापथाम् ॥ ३१ ॥
दिव्यगन्धरसोपेतां धूपितां दिव्यधूपकैः ।
कृत्वा च नगरीं राजा मण्डयामास तां सभाम् ॥ ३२ ॥
दिव्यैर्गन्धैस्तथा धूपे रत्नैश्च विविधैस्तथा ।

गृहद्वारों को सजाया और महापथों में पानी का छिड़काव, तथा दिव्य गन्ध और रस से युक्त दिव्य धूपों से धूपित किया गया है। इस प्रकार नगरी को सजा कर राजा ने सभा को भी मण्डित और दिव्य गन्ध-धूप तथा विविध प्रकार के रत्नों से अलंकृत किया था।

अलंकृतां मणिस्तम्भैर्नानामाल्योपशोभितैः ॥ ३३ ॥
पराध्यास्तरणोपेतैर्दिव्यैर्भद्रासनैर्वृताम् ।
नानाजनसमावेशैर्नरेन्द्रैरभिसंवृताम् ॥ ३४ ॥

मणियों से जटित स्तम्भों को नाना प्रकार की मालाओं से अलंकृत किया गया है। विविध प्रकार के उत्तम बिछौने और आसन बिछाये गये हैं। अनेक राजा और विशिष्ट जन वहाँ आकर स्थित हुये हैं।

कृत्वा नृपेन्द्रस्तां कन्यामादाय प्रविवेश ह।
सर्वाभरणसम्पन्नाम श्रीरिवायतलोचना ॥ ३५ ॥
करसम्मितमध्याङ्गी पञ्चास्निग्धा शुभानना।
स्त्रीभिः परिवृता दिव्या श्रीमती संस्थला सती ॥ ३६ ॥

तब उस कन्या को लेकर राजा ने सभा में प्रवेश किया जो सारे आभरणों को धारण किये हुये दीर्घलोचना लक्ष्मी के समान थी। मुट्ठी भर कमरवाली, पाँच स्थानों में स्निग्ध शरीरवाली, सुन्दर मुखवाली, दिव्य स्त्रियों से घिरी हुई, श्रीमती स्थित हुई।

सभा तु सा भूमिपतेः समृद्धा
मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा।
न्यस्तासना माल्यवती सुगन्धा
तामन्वयुस्ते सुरराजवर्याः ॥ ३७ ॥

राजा की वह सभा अन्यान्य मणिरत्नों से युक्त थी। वहाँ आसन के ऊपर हाथ में सुगन्धित माला लिये हुये वह सुरराज कन्या के समान आसन पर विराजमान हुई।

अथाययौ ब्रह्मवरात्मजो महां-
स्त्रैविद्य वृद्धोभगवान्महात्मा।
सपर्वतो ब्रह्मविदां वरिष्ठो
महामुनिर्नारद आजगाम ॥ ३८ ॥

उसी समय ब्रह्मात्मज, महान त्रिविद्या-वृद्ध महात्मा, ब्रह्मविदों में वरिष्ठ महामुनि नारद जी पर्वत के साथ उस स्थान पर आये।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
नारद-पर्वत सभाप्रवेशोनाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

श्रीरामचन्द्र के जन्म लेने का कारण

तत्रागतौ समीक्ष्याथ राजा संभ्रान्तमानसः ।
दिव्यमासनमादिश्य पूजयामास तावुभौ ॥ १ ॥

उन दोनों (नारद और पर्वत) को आया देख कर राजा ने संभ्रान्त मन से उन्हें दिव्य आसन पर बैठा कर दोनों की पूजा की ।

उभौ देवऋषी दिव्यौ नित्यज्ञानवतां वरौ ।
समासीनौ महात्मानौ कन्यार्थे मुनिसत्तमौ ॥ २ ॥

नित्य ज्ञानवालों में श्रेष्ठ वे दोनों मुनिसत्तम, दिव्य देवर्षि महात्मा कन्या के लिये उस आसन पर आसीन हुये ।

तावुभौ प्रणिपत्याग्रे कन्यां तां श्रीमतीं शुभाम् ।
स्थितां कमलपत्राक्षीं प्राह राजा यशस्विनीम् ॥ ३ ॥
अनयोर्यं वरं भद्रे ! मनसा त्वमिहेच्छसि ।
तस्मै मालामिमां देहि प्रणिपत्य यथाविधि ॥ ४ ॥

उन दोनों को प्रणाम करके राजा यशस्विनी, कमललोचनी कन्या श्रीमती से बोले : 'भद्रे ! इन दोनों में से जिसे तुम मन से वरण करो उसी को यथाविधि प्रणाम कर यह माला पहना दो ।'

एवमुक्ता तु सा कन्या स्त्रीभिः परिवृता तदा ।
मालां हिरण्मयीं दिव्यामादाय शुभलोचना ॥ ५ ॥
तस्थौ तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि ॥ ६ ॥
अनयोरेकमुद्दिश्य देहि मालामिमां शुभे ।

स्त्रियों से घिरी उस कन्या से जब इस प्रकार कहा गया तब वह शुभलोचना सुवर्णमयी दिव्य माला को लेकर खड़ी रही । तब राजा ने उससे कहा, 'हे पुत्री ! तुम क्या कर रही हो ? इन दोनों में से किसी एक को माला पहना दो ।'

सा प्राह पितरं त्रस्ता इमौ तु वानराननौ ॥ ७ ॥

मुनिश्रेष्ठौ न पश्यामि नारदं पर्वतं तथा ।

अनयोर्मध्यतस्त्वेकं वरं षोडशवार्षिकम् ॥ ८ ॥

तब वह त्रस्त हो पिता से बोली : 'इन दोनों का मुख तो वानर जैसा है। मैं तो मुनिश्रेष्ठ नारद और पर्वत को नहीं देख रही हूँ। किन्तु एक सोलह वर्ष का युवा इन दोनों के बीच में है।

सर्वाभरणसंयुक्तमतसीपुष्पसंनिभम् ।

दीर्घबाहुं विशालाक्षं तुंगोरःस्थलमुत्तमम् ॥ ९ ॥

चामीकराभं करणपटयुग्मकशोभितम् ।

विभक्तत्रिवलीयुक्तनाभिं व्यक्तकृशोदरम् ॥ १० ॥

सभी आभरणों से युक्त, अलसी के पुष्प के समान, दीर्घबाहु, विशाल नेत्र, उत्तम उन्नत वक्षःस्थल, सुवर्ण के समान आभावाला, दो वस्त्रों से सुशोभित, विभक्त त्रिवलीयुक्त नाभि, व्यक्त कृश उदरवाला,

हिरण्याभरणोपेतं सुरंगकनखं शुभम् ।

पद्माकारकरं त्वेनं पद्मास्यं पद्मलोचनम् ॥ ११ ॥

पद्मांघ्रिं पद्महृदयं पद्मनाभं श्रियावृतम् ।

दंतपंक्तिभिरत्यर्थं कुन्दकुड्मलसन्निभम् ॥ १२ ॥

स्वर्णालङ्कारों से विभूषित, सुन्दर नख, कमल जैसे हाथ, कमलमुख, कमललोचन, कमल जैसे चरण, कमलहृदय, पद्मनाभ, लक्ष्मी से युक्त, कुन्दकली के समान दन्तपंक्ति से सुशोभित,

हसन्तं मां समालोक्य दक्षिणं च प्रसार्य वै ।

पाणिं स्थितमिमं छत्रं पश्यामि शुभमूर्धजम् ॥ १३ ॥

मुझे देख कर हँसते हुये दाहिना हाथ फैलाये है। मैं उसे ही शुभ मस्तक से युक्त यहाँ स्थित देखती हूँ।'

एवमुक्ते मुनिः प्राह नारदः संशयं गतः ।

कियन्तो बाहवस्तस्य कन्ये वद यथातथम् ॥ १४ ॥

उसके (कन्या के) ऐसा कहने पर नारद मुनि सशंकित होकर बोले : 'हे कन्ये ! ठीक ठीक बता उसके कितनी भुजायें हैं।'

बाहुद्वयं च पश्यामीत्याह कन्या सुविस्मिता ।
प्राह तां पर्वतस्तत्र तस्य वक्षःस्थले शुभे ॥ १५ ॥
किञ्च पश्यसि मे ब्रूहि करे किं धारयत्यपि ।
कन्या तमाह मालां वै चंचद्रूपामनुत्तमाम् ॥ १६ ॥
वक्षःस्थलेऽस्य पश्यामि करे कार्मुकसायकौ ।

कन्या विस्मित होकर बोली : 'मैं दो भुजायें देखती हूं।' तब पर्वत बोले : 'हे शुभे ! उसके वक्षःस्थल में क्या है, वह हाथ में क्या धारण किये हुये है, यह देखकर मुझे बताओ।' कन्या ने कहा कि वह पुरुष वक्षःस्थल पर अत्यन्त सुन्दर माला धारण किये और हाथ में धनुष-बाण लिये हुये है।

एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ परस्परमनुत्तमौ ॥ १७ ॥
मनसा चिन्तयन्तौ तौ मायेयं कस्यचिद्भवेत् ।
मायावी तस्करो नूनं स्वयमेव जनार्दनः ॥ १८ ॥

जब उसने यह कहा तब दोनों मुनिश्रेष्ठ अपने-अपने मन में यह विचार करने लगे कि यह किसकी माया है। यह तस्कर मायावी अवश्य स्वयं जनार्दन हैं।

आगतो नान्यथा कुर्यात्कथं मेऽन्यो मुखं त्विदम् ।
गोलांगूलोयमित्येवं चिन्तयामास नारदः ॥ १९ ॥
पर्वतोऽपि तथैवैतद्वानरत्वं कथं मया ।
प्राप्तमित्येव सहसा चिन्तामापेदिवांस्तथा ॥ २० ॥

वही आ गये हैं, अन्यथा हमारा मुख किस प्रकार गोलांगूल जैसा हो गया। नारदजी इस प्रकार चिन्ता करने लगे। पर्वत भी कहने लगे कि हमारा मुख वानर जैसा कैसे हो गया ? इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त चिन्तित हुये।

ततो राजा प्रणम्यासौ नारदं पर्वतं तथा ।
भवद्भ्यां किमिदं भद्रौ कृतं बुद्धि विमोहनम् ॥ २१
स्वस्थौ भवन्तौ तिष्ठेतां यदि कन्यार्थमुद्यतौ ।

तब राजा प्रणाम करके नारद और पर्वत से बोले : 'हे भद्र ! यह आपकी बुद्धि में कैसा मोह हो गया है । यदि कन्या की इच्छा है तो स्वस्थ होकर स्थित होइये ।'

एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ नृपमूचतुरुल्वणौ ॥ २२ ॥
त्वमेव मोहं कुरुषे नावामिह कथञ्चन ।
आवयोरेकमेषा ते वरयत्वेव भामिनी ॥ २३ ॥

उनके यह कहने पर वे दोनों मुनिश्रेष्ठ राजा से कहने लगे : 'तुमने ही मोह किया है । हम किसी प्रकार के मोह में नहीं हैं । यह कन्या हम दोनों में से किसी एक का वरण कर ले ।'

ततः सा कन्यका भूयः प्रणिपत्य च देवताम् ।
पित्रा नियुक्ता सहसा मुनिशापभयाद्द्विज ॥ २४ ॥

तब वह कन्या देवता को प्रणाम करके, मुनिशाप के भय से पिता द्वारा पुनः नियुक्त की गई ।

मालामादाय तिष्ठन्ती तयोर्मध्ये समाहिता ।
पूर्ववत्पुरुषं दृष्ट्वा मालयें तस्मै ददौ हि सा ॥ २५ ॥

वह सावधान हो माला लेकर उन दोनों के बीच में स्थित हुई । तब उसने पूर्ववत् उस पुरुष को देख कर वह माला उसे हो प्रदान कर दी ।

अनन्तरं च सा कन्या दृष्टा न मनुजैः पुनः ।
ततो नादः समभवत्किमेतदिति विस्मयात् ॥ २६ ॥

तदनन्तर उस कन्या को किसी मनुष्य ने नहीं देखा । तब, 'यह क्या हुआ' विस्मयपूर्वक इस प्रकार का शब्द होने लगा ।

तामादाय गतो विष्णुः स्वस्थानं पुरुषोत्तमः ।
पुरा तदर्थमनिशां तपस्तप्त्वा वराङ्गना ॥ २७ ॥
श्रीमतीयं समुत्पन्ना सा गता च तथा हरिम् ।
तावुभौ मुनिशार्दूलौ धिक्त्वामित्येव दुःखितौ ॥ २८ ॥
वासुदेवं प्रति सदा जग्मतुर्भवनं हरेः ।

उसे लेकर पुरुषोत्तम विष्णु अपने स्थानको चले गये। पूर्व समय में भगवान् के लिये तपस्या करके वह वराङ्गना श्रीमती उत्पन्न हुई थी और उन्हीं हरि को प्राप्त हुई। तब वह दोनों मुनिशार्दूल परस्पर 'तुमको धिक्कार है', ऐसा कह कर दुखी हुये और वासुदेव के भवन में गये।

तावागतौ समाक्ष्याह श्रीमतीं भगवान्हरिः ॥ २९ ॥
मुनि श्रेष्ठौ समायातौ गूढस्वात्मानमत्र वै ।
तथेत्युक्ता च सा देवी प्रहसन्ती चकार ह ॥ ३० ॥

उन दोनों को आया देख कर भगवान् हरि ने श्रीमती से कहा : 'दोनों मुनिश्रेष्ठ आ रहे हैं, तुम अपनी आतमा को छिपा लो'। उनके ऐसा कहने पर हँसकर उस देवी ने अपना रूप छिपा लिया।

नारदः प्रणिपत्याग्रे प्राह दामोदरं हरिम् ।
किमिदं कृतवानद्य मम त्वं पर्वतस्य च ॥ ३१ ॥
त्वमेव नूनं गोविन्द कन्यां तां हृतवानसि ।
तच्छ्रुत्वा पुरुषो विष्णुः पिधाय श्रोत्रमच्युतः ॥ ३२ ॥

नारदजी ने प्रणाम करके दामोदर श्रीहरि से कहा : 'आपने मेरा और पर्वत का यह कैसा रूप कर दिया। हे गोविन्द ! आपने निश्चय ही उस कन्या का हरण कर लिया है।' यह सुन कर पुरुषोत्तम विष्णु ने दोनों कानों पर हाथ रख कर कहा :

पाणिभ्यां प्राह भगवन्भवता किमुदीरितम् ।
कामवादो न भावोऽयं मुनिवृत्तेरहो किल ॥ ३३ ॥

हे भगवन् ! आप क्या कह रहे हैं ? यह कामवाद का भाव नहीं है। तो क्या यह आपकी मुनिवृत्ति है ?

एवमुक्तो मुनिः प्राह वासुदेवं स नारदः ।

कर्णमूले मम कथं गोलांगूलमुखं त्विति ॥ ३४ ॥

उनके यह कहने पर नारद मुनि वासुदेव के कानों में बोले कि आपने मेरा गोलांगूल जैसा मुख कर दिया ।

तदाकर्ण्य महाबुद्धिर्देवो नारायणो हरिः ।

कर्णमूले तमाहेदं वानरास्यं कृतं मया ॥ ३५ ॥

पर्वतस्य तथा विप्र गोलांगूलमुखं तव ।

यथा भवांस्तथा सोऽपि प्रार्थयामास निर्जने ॥ ३६ ॥

यह बात सुन कर महाबुद्धि श्रीहरि, नारायणदेव ने कर्णमूल में कहा कि 'मैंने तुम्हारा मुख वानर जैसा कर दिया, और हे विप्र ! इसी प्रकार पर्वत का मुख भी गोलांगूल जैसा कर दिया । जैसे तुमने एकान्त में प्रार्थना की थी, वैसेही इन्होंने (पर्वत ने) भी की थी ।

मामेव भक्तिवशगस्तथाऽस्म्यकरवं मुने ।

न स्वेच्छया कृतं तद्वां प्रियार्थं नान्यथा त्विति ॥ ३७ ॥

याचते यच्च यश्चैव तच्च तस्य ददाम्यहम् ।

न दोषोऽत्र गुणो वापि युवयोर्मम वा द्विज ॥ ३८ ॥

हे मुने ! दोनों की भक्ति के वश में होने के कारण मैंने ऐसा किया था । मैंने स्वेच्छया नहीं बल्कि आपके प्रियार्थ ही ऐसा किया था । मेरा भक्त जो कुछ याचना करता है वही मैं उसे दे देता हूँ । इसमें मेरा अथवा तुम्हारा कोई गुण-दोष नहीं है ।'

पर्वतोऽपि तथा प्राह तस्याप्येवं जगाद सः ।

शृण्वतोरुभयोस्तत्र प्राह दामोदरो वचः ॥ ३९ ॥

प्रियं भवतोः कृतवान्सत्येनायुधमालभे ।

पर्वत के पूछने पर भी उन्होंने यही बात कही । फिर दोनों को सुनाते हुये दामोदर ने कहा : 'मैं सत्य तथा आयुध की सोगन्धपूर्वक कहता हूँ कि मैंने आप लोगों का प्रिय ही किया है ।'

नारदः प्राह धर्मात्मा आवयोर्मध्यतः स्थितः ॥ ४० ॥

धनुष्मान्द्विभुजःको नु तां हृत्वा गतवान्किल ।

तब धर्मात्मा नारदजी कहने लगे कि 'हम दोनों के मध्य में धनुष धारण किये हुये दो भुजाओंवाले पुरुष कौन थे जिन्होंने उसका (कन्या का) हरण कर लिया ।'

तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽसौ प्राह नौ मुनिसत्तमौ ॥ ४१ ॥

मायाविनौ महात्मानौ बहवः सन्ति सत्तमौ ।

तत्र सा श्रीमती देवी हृता केनापि सुव्रतौ ॥ ४२ ॥

यह सुनकर वासुदेव उन दोनों मुनिश्रेष्ठों से बोले : 'हे महात्माओ ! हे सत्तमो ! संसार में अनेक मायावी हैं, उन्हीं में से किसी ने हरण कर लिया होगा ।

चक्रपाणिरहं नित्यं चतुर्बाहुरिति स्थितिः ।

तस्मान्नाहमतथ्यो वै भवद्भ्यांविदितं हि तत् ॥ ४३ ॥

मैं तो चक्रपाणि तथा चतुर्भुज हूँ । यह स्थिति आपको विदित ही है, अतः मैं वहाँ नहीं रहा हो सकता ।'

इत्युक्तौ प्रणिपत्यैनमूचतुः प्रीतमानसौ ।

कोऽत्र दोषस्तव विभो नारायण जगत्पते ॥ ४४ ॥

उनके यह कहने पर दोनों ने प्रणाम करके कहा : 'हे नारायण, जगत्पति, हे विभो ! इसमें आपका क्या दोष है ।

दौरात्म्यं तु नृपस्यैव मायां हि कृतवानसौ ।

इत्युक्त्वा जग्मतुस्तस्मान्मुनि नारदपर्वतौ ॥ ४५ ॥

वह राजा ही दुरात्मा है । उसीने माया की होगी ।' यह कहकर नारद और पर्वत वहाँ से चले गये ।

अम्बरीषं समासाद्य शापेनैनमयोजयत् ।

नारदः पर्वतश्चैव यस्मादावामिहागतौ ॥ ४६ ॥

आहूय पश्चादन्यस्मै कन्यां त्वं दत्तवानसि ।

मायायोगेन तस्मात्त्वां तमोऽज्ञाभिभविष्यति ॥ ४७ ॥
तेन नात्मानत्यर्थं यथावत्त्वं हि वेत्स्यसि ।

फिर अम्बरीष के पास आकर उन्हें यह शाप दिया : 'जब हम नारद और पर्वत इस स्थान पर आये थे, तब तुमने हमको बुलाकर भी माया-योग से दूसरे को कन्या दे दी अतः तुम अज्ञानी हो जाओगे। तुम्हें अपनी आत्मा का यथावत् बोध नहीं रहेगा।'

एवं शापे प्रवृत्ते तु तमोराशि रथोत्थितः । ॥ ४८ ॥
नृपं प्रति ततश्चक्रं विष्णोःप्रादुरभूत्क्षणात् ।
चक्रवित्रासितं घोरं तावुभावभ्यगात्तमः ॥ ४९ ॥
ततः संत्रस्तसर्वांगौ धावमानौ महामुनी ।
पृष्ठतश्चक्रमालोक्य तमोराशिं च दुर्मदम् ॥ ५० ॥

इस प्रकार शाप देने से वहाँ महान् अन्धकार उपस्थित हुआ। वह अन्धकार जब राजा की ओर बढ़ा तब उसी समय विष्णु का चक्र प्रकट हुआ। उस चक्र से त्रस्त होकर अन्धकार उन दोनो (नारद और पर्वत) की ओर दौड़ा। तब सर्वाङ्ग संत्रस्त हो वे दोनों महामुनि अपने पीछे अन्धकार और उसके पीछे चक्र को देखकर भागने लगे।

कन्यासिद्धिरहो प्राप्तस्त्यावयोरिति वेगितौ ।
लोकालोकतामनिशं धावमानौ तमोऽर्दितौ ॥ ५१ ॥
त्राहि त्राहीति गोविन्दं भाषमाणौ भयार्दितौ ।

'कन्या की यह सिद्धि हमें प्राप्त हुई' ऐसा कहते हुये वे दोनों लोकालोक (पर्वत) की ओर दिन रात वेग से भागते रहे। वे भय से बोले : 'हे गोविन्द ! हमारी रक्षा करो।'

विष्णुलोकं ततो गत्वा नारायण जगत्पते ॥ ५२ ॥
वासुदेव हृषीकेश पद्मनाभ जनार्दन ।
त्राह्यावां पुण्डरीकाक्ष नाथोऽसि पुरुषोत्तम ॥ ५३ ॥

तब उन्होंने विष्णुलोक में जाकर कहा : हे नारायण, जगत्पति, हे वासुदेव, हृषिकेश, पद्मनाभ, जनार्दन, पुण्डरीकाक्ष, हमारे नाथ, पुरुषोत्तम, ! हमारी रक्षा करो।'

इत्यूचतुर्वासुदेवं मुनी नारदपर्वतौ ।
ततो नारायणोऽचिन्त्यः श्रीमाञ्छ्रीवत्सलक्षणः ॥ ५४ ॥
निवार्य चक्रं ध्वान्तं च भक्तानुग्रहकाम्यया ।
अम्बरीषश्च मद्भक्तस्तथेमौ मुनिसत्तमौ ॥ ५५ ॥
अनयोर्नृपस्य च तथा हितं कार्यं मया पुनः ।

जब नारद और पर्वत मुनि ने इस प्रकार वासुदेव से कहा तब अचिन्त्य श्रीमान् श्रीवत्स से लक्षित नारायण ने भक्तों पर अनुग्रह की इच्छा से चक्र का निवारण कर कहा : 'जैसे आप दोनों मुनिश्रेष्ठ मेरे भक्त हैं वैसे ही अम्बरीष भी मेरे भक्त हैं। आप दोनों का तथा राजा का भी मुझको हित करना है।'

आहूय तौ ततः श्रीमान्गिरा प्रह्लादयन्हरिः ॥ ५६ ॥
उवाच भगवान्विष्णुः श्रूयतामिति मे वचः ।
क्षमेतां मुनिशार्दूलौ भक्तसंरक्षणाय मे ॥ ५७ ॥
अपराद्धं च चक्रेण क्षमाशीला हि साधवः ।

तदनन्तर श्रीहरि ने उन दोनों को बुलाकर वाणी से प्रसन्न किया। तब भगवान् विष्णु ने कहा : 'आप मेरे वचन को सुनिये। हे मुनिशार्दूल ! भक्त की रक्षा के निमित्त मैंने जो कुछ कहा है उसे क्षमा कीजिये। यह चक्र का अपराध है, और साधु क्षमाशील होते हैं।'

ततस्तौ मुनिशार्दूलौ मायां तस्यावबुध्य च ॥ ५८ ॥
ददतुश्च ततः शापं विष्णुमुद्दिश्य कोपनौ ।
श्रीमतीहरणं विष्णो यत्कृतं छद्मना त्वया ॥ ५९ ॥
यया मूर्त्या तथैव त्वं जायेथा मधुसूदन ।
अम्बरीषस्यान्ववाये राज्ञो दशरथस्य हि ॥ ६० ॥
पुत्रस्त्वं भविता पुत्री श्रीमती धरणी प्रजा ।
भविष्यति विदेहश्च प्राप्य तां पालयिष्यति ॥ ६१ ॥
राक्षसापदः कश्चित्तां ते भार्यां हरिष्यति ।

तब वे दोनों मुनिशार्दूल उनकी माया को जानकर क्रोधपूर्वक विष्णु को शाप देते हुये बोले : 'हे विष्णो ! आपने छलपूर्वक श्रीमती का हरण किया है। हे मधुसूदन ! आप जिस मूर्ति से उत्पन्न हुये हैं उसी मूर्ति से अम्बरीष के कुल में राजा दशरथ के यहाँ पुत्र रूप से जन्म लें। यह श्रीमती धरणी की पुत्री होगी और विदेह इसे प्राप्त करके इसका पालन करेंगे। एक नीच राक्षस वहाँ आपकी भार्या का उसी प्रकार हरण करेगा।

यतो राक्षसधर्मेण हृता च श्रीमती शुभा ॥ ६२ ॥
अतस्ते राक्षसा भार्या हर्तव्या छद्मनाऽच्युत ।
यथा प्राप्तं महद्दुःखमावाभ्यां श्रीमतीकृते ॥ ६३ ॥
हाहेति रुदता लक्ष्यं तथा दुःखं च तत्कृते ।

आपने जिस प्रकार राक्षस धर्म से श्रीमती का हरण किया है उसी प्रकार छलपूर्वक राक्षस भी आपकी भार्या का हरण करेगा। जिस प्रकार हम दोनों को श्रीमती के कारण महान दुःख प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार आप भी उसके (भार्या के) कारण वन में हा-हाकार करते हुये रोते फिरेंगे।'

इत्युक्तवन्तौ तौ विप्रौ प्रोवाच मधुसूदनः ॥ ६४ ॥
अम्बरीषस्यान्ववाये भविष्यति महायशाः ।
श्रीमान्दशरथो नाम भूमिपालोऽतिधार्मिकः ॥ ६५ ॥

उन दोनों ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर मधुसूदन ने कहा : 'अम्बरीष के वंश में अवश्य ही महायशस्वी, अत्यन्त धार्मिक दशरथ नामक राजा होंगे।

तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम भवाम्यहम् ।
तत्र मे दक्षिणो बाहुर्भरतो भविता किल ॥ ६६ ॥

उनके यहाँ मैं ज्येष्ठ पुत्र राम होऊँगा। वहाँ भरत मेरी दाहिनी भुजा होंगे।

शत्रुघ्नो वामबाहुश्च शेषोऽसौ लक्ष्मणः स्वयम् ।
ऋषिशापो न चैव स्यादन्यथा चक्र गम्यताम् ॥ ६७ ॥

ऋषिशापतमोराशे यदा रामो भवाम्यहम् ।
तत्र मां समुपागच्छ गच्छेदानीं नृपं विना ॥ ६८ ॥

शत्रुघ्न बांई भुजा होंगे और स्वयं शेष लक्ष्मण होंगे । इस प्रकार ऋषि का शाप अन्यथा नहीं होगा । हे चक्र! जिस समय ऋषिशाप रूपी तमोराशि से मैं राम होऊँगा तब तुम मेरे पास आओ। इस समय इन्हें छोड़कर राजा के पास जाओ ।

त्यक्त्वापि च मुनिश्रेष्ठाविति स्म प्राह माधवः ।
एवमुक्ते तमोनाशं तत्क्षणाच्च जगाम वै ॥ ६९ ॥
आत्मार्थं सञ्चितं तेन प्रभुणा भक्तरक्षिणा ।
निवारितं हरेश्चक्रं यथापूर्वमतिष्ठत ॥ ७० ॥

उन मुनिश्रेष्ठों से त्यक्त हो इस प्रकार विस्मित माधव बोले । तब उनके यह कहते ही तत्क्षण तम का नाश हो गया । भक्तों की रक्षा करनेवाले उन प्रभु ने अपने निमित्त उसे सञ्चित किया । निवारित हरि का चक्र भी यथापूर्व स्थित हुआ ।

मुनिश्रेष्ठौ भयान्मुक्तौ प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
निर्गतौ शोकसन्तप्तावूचतुस्तौ परस्परम् ॥ ७१ ॥
अद्यप्रभृति देहान्तमावां कन्यापरिग्रहम् ।
न करिष्याव इत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तावृषी ॥ ७२ ॥

भय से युक्त हुये दोनों मुनिश्रेष्ठ जनार्दन को प्रणाम कर शोकसंतप्त हो चले और परस्पर कहने लगे : 'आज से लेकर जीवनपर्यन्त हम कन्या का स्वीकार नहीं करेंगे ।' दोनों ऋषियों ने इस प्रकार प्रतिज्ञा की ।

मौनध्यानपरौ शुद्धौ यथापूर्वं व्यवस्थितौ ।
अम्बरीषोऽपि राजासौ परिपाल्य च मेदिनीम् ॥ ७३ ॥
सभृत्यज्ञातिसम्बन्धो विष्णुलोकं जगाम वै ।

वे दोनों मौन ध्यान में शुद्धरूप से यथापूर्व स्थित हो गये । राजा अम्बरीष भी यथायोग्य पृथिवी का पालन करते हुये भृत्य-ज्ञातियों के सम्बन्धियों सहित विष्णुलोक गये ।

मानार्थमम्बरीषस्य तथैव मुनिसिंहयोः ।। ७४ ।।

रामो दाशरथिर्भूत्वा तमसा लुप्तबुद्धिकः ।

कदाचित्कार्यवशतः स्मृतिः स्यादात्मनः प्रभोः ।। ७५ ।।

अम्बरीष तथा दोनों श्रेष्ठ मुनियों के मानार्थ, वह (विष्णु) दशरथ के पुत्र राम होकर तम से आच्छादित और लुप्त बुद्धि हुये । उन प्रभु को कभी-कभी कार्यवशात् अपनी स्मृति हो जाती थी ।

पूर्णार्थोऽपि महाबाहुरपूर्णार्थ इव प्रभु ।

अनुग्रहाय भक्तानां प्रभूणामीदृशी गतिः ।। ७६ ।।

वह महाबाहु प्रभु पूर्णार्थ होकर भी अपूर्ण अर्थ के समान दिखाई पड़ते थे । भक्तों के अनुग्रहार्थ ही स्वामियों की ऐसी गति होती है ।

मायां कृत्वा महेशस्य प्रोत्थिता मानुषी तनुः ।

तस्मान्माया न कर्तव्या विद्वद्भिर्दोषदर्शिभिः ।। ७७ ।।

वे महेश माया करने के कारण मानुषी शरीर को प्राप्त हुये थे, इस कारण दोषों को जाननेवाले विद्वज्जनों को माया करना उचित नहीं है ।

एतत्ते कथितं सर्वं रामजन्मकथाश्रयम् ।

अम्बरीषस्य माहात्म्यं मायावित्वं च वै हरेः ।। ७८ ।।

इस प्रकार रामजन्म की कथा का सम्पूर्ण आशय, और साथ ही अम्बरीष-माहात्म्य तथा हरि का मायावतार भी कहा ।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि मायावित्वं हरेर्विभोः ।

मायां विसृज्य पुण्यात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ।। ७९ ।।

दशरथसुतजन्मकारणं यः पठति

शृणोत्यनुमोदते द्विजेन्द्रः ।

व्रजति सभगवद्गृहातिथित्वं नहि

शमनस्य भयं कुतश्चिदस्य ।। ८० ।।

जो हरिके इस चरित्र को पढ़ता या सुनता है वह पुण्यात्मा माया त्याग

कर विष्णुलोक को जाता है। जो दशरथ के पुत्र के जन्म का कारण पढ़ता-सुनता या अनुमोदन करता है वह भगवान् के गृह का अतिथि होता है और उसे यम का भय नहीं रहता।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे श्रीरामजन्मोपक्रमश्चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचम सर्ग

सीताजी के जन्म लेने का कारण-कथन

भरद्वाज शृणुष्वाथ सीताजन्मनि कारणम् ।
पुरा त्रेतायुगे कश्चित्कौशिको नाम वै द्विजः ॥ १ ॥

हे भरद्वाज ! अब सीता के जन्म का कारण सुनो। प्राचीन काल में त्रेतायुग में एक कौशिक नामक ब्राह्मण था।

वासुदेवपरो नित्यं नामगानरतः सदा ।
भोजनाशनशय्यासु सदा तद्गतमानसः ।
उदारचरितं विष्णोर्गायमानः पुनः पुनः ॥ २ ॥

वह नित्य वासुदेवपरायण, सदैव नामगान में रत तथा भोजन और अशन शय्या के समय भी उन्हीं में सदा अपना मन लगाये रहता था। वह विष्णु के उदारचरित्र का पुनः पुनः गायन करता रहता था।

विष्णुस्थलं समासाद्य हरेः क्षेत्रमनुत्तमम् ।
अगायत हरिं तत्र तालवल्गुलयान्वितम् ॥ ३ ॥
मूर्च्छनामूर्च्छायोगेन श्रुतिमण्डलवेदितम् ।
भक्तियोगसमापन्नो भिक्षामश्नाति तत्र वै ॥ ४ ॥

विष्णु के स्थल तथा हरि के उत्तम क्षेत्र में आकर वह सुन्दर ताल-

लयादि से हरि के चरित्र को गाता रहता था। मूर्च्छना और मूर्च्छा के योग से और श्रुतिमण्डल से वेदित भक्तियोग को प्राप्त हो वह केवल भिक्षा का ही भोजन करता था।

तत्रैनं गायमानं च दृष्ट्वा कश्चिद्द्विजस्तदा।

पद्माक्ष इत विख्यातस्तस्मै चान्नं ददौ सदा॥ ५॥

एक ब्राह्मण ने, जो पद्माक्ष नाम से विख्यात था, उसे (कौशिक को) इस प्रकार गाते देखकर बहुत-सा अन्न दिया।

सकुटुम्बो महातेज अश्नन्नन्नं च तस्य वै।

कौशिको तदा हृष्टो गायन्नास्ते हरिं प्रभुम्॥ ६॥

वहाँ वह तेजस्वी कौशिक कुटुम्ब सहित उनका अन्न खाते हुये प्रसन्नता से प्रभु श्रीहरि का गायन करता था।

शृण्वन्नास्ते स पद्माक्षः काले काले च भक्तितः।

कालयोगेन संप्राप्ताः शिष्या वै कौशिकस्य च॥ ७॥

वह पद्माक्ष समय-समय पर भक्तिपूर्वक उसको श्रवण करता था और कुछ समय के बाद वह कौशिक का शिष्य हो गया।

सप्तराजन्यवैश्यानां विप्राणां कुलसम्भवाः।

ज्ञानविद्याधिका शुद्धा वासुदेवपरायणाः॥ ८॥

तेषामपि तथान्नाद्यं पद्माक्षः प्रददौ स्वयम्।

शिष्यैश्च सहितो नित्यं कौशिको हृष्टमानसः॥ ९॥

सात क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हुये ज्ञानविद्या में अधिक शुद्ध वासुदेवपरायण हुये। पद्माक्ष उनको भी स्वयं अन्न प्रदान करता था। शिष्य सहित कौशिक नित्य प्रसन्न-मन रहता था।

विष्णुस्थले हरिं तत्र आस्ते गायन्यथाविधि।

तत्रैव मालवो नाम वैश्यो विष्णुपरायणः॥ १०॥

दीपमालां हरेर्नित्यं करोति प्रीतमानसः।

मालतीनाम भार्यासीत्तस्य नित्यं पतिव्रता॥ ११॥

गोमयेन समालिप्य हरेः क्षेत्रं समन्ततः।

भर्त्रा सहास्ते संप्रीता शृण्वती गानमुत्तमम् ॥ १२ ॥

विष्णु के स्थल पर एक मालव नामक विष्णुपरायण वैद्य भी यथाविधि हरिनाम का गायन करता था। वह हरि के मन्दिर में प्रेमपूर्वक दीपमाला जलाता था। उसकी नित्य पतिव्रता मालती नामक एक भार्या थी। वह हरिक्षेत्र को सब ओर से गोवर से लीपकर अपने पति के साथ गायन सुनती हुई प्रसन्नमन से रहती थी।

कुशस्थलीसमुत्पन्ना ब्राह्मणाः शंसितव्रताः।
पञ्चाशद्वै समापन्ना हरेर्गानार्थमुत्तमाः ॥ १३ ॥

कुशस्थली में उत्पन्न हुये शोभन व्रत वाले पचास ब्राह्मण वहाँ हरिगान करने के लिये आये।

साधयन्तो हि कार्याणि कौशिकस्य महात्मनः।
गानविद्यार्थतत्त्वज्ञाः शृण्वन्तो ह्यवसंस्तु ते ॥ १४ ॥

वे महात्मा कौशिक का कार्य सिद्ध करते हुये वे गानविद्या के तत्वज्ञ गायन सुनते हुये वहीं स्थित हुये।

ख्यातमासीत्तदा तस्य गानं वै कौशिकस्य च।
श्रुत्वा राजा समभ्येत्य कालिङ्गो वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥
कौशिकाद्यगणैः सार्धं गायस्वेह च मां पुनः।
शृणुध्वं च तथा यूयं कुशस्थलजना अपि ॥ १६ ॥

इस प्रकार कौशिक के गायन की ख्याति चारों ओर फैल गई जिसे सुनकर कलिङ्गराज ने कहा : अपने गणों सहित कौशिक मेरा गान करे तथा तुम कुशस्थलीवासी ब्राह्मण उसीका श्रवण करो।'

तच्छ्रुत्वा कौशिकः प्राह राजानं सां त्वयन्गिरा।
न जिह्वाग्रे महाराज वाणी च मम सर्वदा ॥ १७ ॥
हरेरन्यमपीन्द्रं वा स्तौति नापि न वक्ति च।

उसे सुनकर कौशिक वाणी से राजा को सन्त्वना देता हुआ बोला : मेरी जिह्वा के आगे 'महाराज' की वाणी स्फुरित नहीं होती। और तो और हरि को छोड़कर इन्द्र की स्तुति में भी मेरी वाणी मुखर नहीं होती।'

एवमुक्ते च तच्छिष्या वसिष्ठो गौतमोऽरुणिः ॥ १८ ॥
सारस्वतस्तथा वैश्यश्चित्रमालस्तथा शिशुः ।
ऊचुस्तं पार्थिवं तत्त्वं यथा प्राह स कौशिकः ॥ १९ ॥

यह कहने पर उनके शिष्य वसिष्ठ, गौतम, अरुणि, सारस्वत वैश्य, चित्रमाल तथा शिशु ने कौशिक की बात को राजा से कहा ।

श्रीकराश्च तथा प्रोचुः पार्थिवं विष्णुतत्पराः ।
श्रोत्राणीमानि शृण्वन्तिहरेरन्यं न पार्थिवम् ॥ २० ॥
मा ते कीर्तिं वयं तस्माच्छृणुमो नैव वा स्तुतिम् ।

विष्णुभक्ति में तत्पर श्रीकर ने भी इसी प्रकार राजा से निवेदन किया कि 'हे राजन ! हमारे कान हरि के गुणगान को ही सुनते हैं अन्य कुछ नहीं । इस कारण हम आपकी कीर्ति या स्तुति को नहीं सुन सकते ।'

तच्छ्रुत्वा पार्थिवो रुष्टो गीयतामिति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥
स्वभृत्यान्ब्राह्मणा ह्येते कीर्तिं शृण्वन्ति वै यथा ।
न शृण्वन्ति कथं तस्माद्गीयमानं समन्ततः ॥ २२ ॥

उनकी यह बात सुनकर राजा रुष्ट हुआ और भृत्यों से गाने के लिये कहा । उसने कहा कि जैसे ये ब्राह्मण अपनी कीर्ति सुनते हैं वैसे ही ये हमारी कीर्ति के गायन कोक्यों नही सुन सकते ।

एवमुक्तास्ततो भृत्या जगुः पार्थिवसत्तमम् ।
निरुद्धकर्णा विप्रास्ते गाने वृत्ते सुदुःखिताः ॥ २३ ॥
काष्ठशंकुभिरन्योन्यं श्रोत्राणि बिभिदुः किल ।
कौशिकाद्यास्तु तां ज्ञात्वा मनोवृत्तिं नृपस्य वै ॥ २४ ॥
निर्बन्धं कुरुते कस्मात्स्वगानेऽसौ नृपः स्थिरम् ।
इत्युक्त्वा ते सुनियता जिह्वाग्रं चिच्छिदुः स्वकम् ॥ २५ ॥

राजा के ऐसा कहने पर उनके भृत्य गायन करने लगे । तब विप्रों ने दुःखी होकर इस गान के प्रति अपने कान बन्द कर लिये । राजा ने तब

उनके कानों को लोहे की कीलों से भेदन करने की इच्छा की। राजा की यह मनोवृत्ति जानकर कौशिकादि ने कहा कि यह राजा स्वगान का हठ क्यों कर रहा है। ऐसा कहकर उन लोगों ने स्वयं ही अपनी जिह्वाग्रों में छेद कर लिया।

ततो राजा सुसंक्रुद्धः स्वदेशात्तान्व्यवासयत् ।
आदाय वित्तं सर्वेषां ततस्ते जग्मुरुत्तराम् ॥ २६ ॥

इस पर राजा ने क्रुद्ध होकर उन सब को अपने देश से निष्कासित करते हुये सब का धन भी ले लिया। तब वे सब उत्तर दिशा को चले गये।

दिशामासाद्य कालेन कालधर्मेण योजिताः ।
तानागतान्यमो दृष्ट्वा किंकर्तव्यमिति स्म ह ॥ २७ ॥

समय पर कालधर्म से योजित उन सब को उस दिशा में आता देख कर यम ने विचार किया कि 'अब हमारा क्या कर्तव्य है।'

विस्मितस्तत्क्षणे विप्र ब्रह्मा प्राह सुराधिपान् ।
कौशिकादीन्द्विजानद्य वासुदेवपरायणान् ॥ २८ ॥
गानयोगेन ये नित्यं पूजयन्ति जनार्दनम् ।
तानादाय भद्रं वो यदि देवत्वमिच्छथ ॥ २९ ॥

उस समय उनको विस्मित देखकर ब्रह्मा जी ने देवाधिपतियों से कहा : 'वासुदेवपरायण कौशिकादि ब्राह्मण, जो नित्य गानयोग से जनार्दन की पूजा करते हैं, वे यदि देवत्य की इच्छा करें तो उनको हमारे पास ले आओ।'

इत्युक्ता लोकपालास्ते कौशिकेति पुनः पुनः ।
मालतीति तथा केचित्पद्माक्षीति तथापरे ॥ ३० ॥
क्रोशमानाः समभ्येत्य तानादाय विहायसा ।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं मुहूर्तार्द्धेन वै सुराः ॥ ३१ ॥

उनके ऐसा कहने पर लोकपाल बार-बार 'हे कौशिक, हे मालती, हे पद्माक्ष' कहने लगे 'और इस प्रकार उन्हें सम्बोधित करके वे उन लोगों

को आधे मुहूर्त मात्र में ब्रह्मलोक में ले आये।

कौशिकादींस्तथा दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रत्यागम्य यथान्यायं स्वागतेनाभ्यपूजयत् ॥ ३२ ॥

कौशिक आदि को देखकर लोकपितामह ब्रह्मा ने उन सबका यथा-योग्य स्वागत और पूजन किया।

ततः कोलाहलश्चाभूदतिगौरवमुल्बणम्।
ब्रह्मणा च कृतं दृष्ट्वा देवानां द्विजसत्तम ॥ ३३ ॥

उन ब्राह्मण श्रेष्ठों का ब्रह्मा जी द्वारा सत्कार देखकर वहाँ देवों में बहुत भारी कोलाहल होने लगा।

हिरण्यगर्भो भगवांस्तान्निवार्य सुरोत्तमान्।
कौशिकादींस्तदादाय मुनिर्देवैः समावृत्तः ॥ ३४ ॥
विष्णुलोकं ययौ शीघ्रं वासुदेव परायणः।

भगवान् हिरण्यगर्भ ने उन सब श्रेष्ठ देवताओं का निवारण किया। कौशिक आदि को लेकर मुनिदेवताओं से घिरे हुये वे वासुदेवपरायण शीघ्र विष्णुलोक को चले गये।

तत्र नारायणो देवः श्वेतद्वीपनिवासिभिः ॥ ३५ ॥
ज्ञानयोगेश्वरैः सिद्धैर्विष्णुभक्तिपरायणैः।
नारायणसमैर्दिव्यैश्चतुर्बाहुधरैः शुभैः ॥ ३६ ॥

वहाँ नारायण देव श्वेतद्वीप निवासियों, ज्ञानयोगेश्वरों, सिद्धों और विष्णुभक्तिपरायणों तथा नारायण के समान दिव्य चार भुजा धारण किये,

विष्णुचिह्नसमापन्नैर्दीप्यमानैरकल्मषैः।
अष्टाशीतिसहस्रैस्तु सेव्यमानो मनोजवैः ॥ ३७ ॥
अस्माभिर्नारदाद्यैश्च सनकाद्यैरकल्मषैः।
भूतैर्नानाविधैश्चैव दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः ॥ ३८ ॥
सेव्यमानोऽथ मध्ये वै सहस्रद्वारसंवृत्ते।

सहस्रयोजनायामे दिव्ये मणिमये शुभे ॥ ३९ ॥

विमाने विमले चित्रे भद्रपीठासने हरिः ।

लोककार्यप्रसक्तानां दत्त्वा दृष्टिं समास्थितः ॥ ४० ॥

विष्णुचिह्नों से युक्त (अर्थात शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि लिये हुये) दीप्तिमान अट्ठासी सहस्र मनोगामी महात्माओं से सेवित, हमारे जैसे तथा नारद और सनक आदि से, तथा पापरहित अनेक प्रकार के भूतों, दिव्यस्त्रियों से सब ओर से व्याप्त और सेव्यमान, सहस्रद्वारों से युक्त सहस्रयोजन आयामवाले, दिव्य मणि जटित, सुन्दर, विमलचित्र विमान में भद्रपीठ के आसन पर, लोककार्य में लगे पुरुषों पर दृष्टि देकर श्रीहरि स्थित थे।

तस्मिन्कालेऽथ भगवान्कौशिकाद्यैश्च संवृतः ।

आगस्य प्रणिपत्याग्रे तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥ ४१ ॥

उस समय कौशिक आदि को साथ लिये भगवान् ब्रह्मा आकर गरुडध्वज के आगे प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

ततोऽवलोक्य भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः

कौशिकेत्याह सम्प्रीत्या तान्सर्वांश्च यथाक्रमम् ॥ ४२ ॥

तब भगवान नारायण श्रीहरि उनको देखकर प्रेमपूर्वक कौशिकादि के प्रति प्रीति प्रकट करते हुये सबसे यथाक्रम कहने लगे।

जयघोषो महानासीन्महाश्चर्ये समागते ।

ब्रह्माणमाह विश्वात्मा शृणु ब्रह्मन्यथोदितम् ॥ ४३ ॥

कौशिकस्य च ये विप्राः साध्यसाधनतत्पराः ।

हिताय संप्रवृत्ता वै कुशस्थलनिवासिनः ॥ ४४ ॥

चारों ओर जयघोष और महान आश्चर्य होने लगा। तब विश्वात्मा ने ब्रह्मा से कहा कि 'हे ब्रह्मन् यह वृत्तान्त सुनो। ये जो ब्राह्मण कौशिक के साध्य-साधन में तत्पर हैं ओर जा कुशस्थल निवासी उनके हित में संवृत्त हुये हैं।

मत्कीर्तिश्रवणे युक्ता गानतत्त्वार्थकोविदाः ।

अनन्यदेवता भक्ताः साध्या देवा भवन्त्विमे ॥ ४५ ॥
मत्समीपे तथा ह्यस्य प्रवेशं देहि सर्वदा ।

मेरे कीर्तिश्रवण में युक्त गानतत्त्व को जाननेवाले ये सभी अनन्य-देवताभक्त और साध्यदेव कहे जायेंगे। इनका हमारे समीप सदा प्रवेश रहेगा।'

एवमुक्त्वा पुनर्देवः कौशिकं प्राह माधवः ॥ ४६ ॥
स्वशिष्यैस्त्वं महाप्राज्ञ दिग्वलो नाम वै सदा ।
गणाधिपत्यमापन्नो यत्राहं तत्समास्व वै ॥ ४७ ॥

ऐसा कहकर माधवदेव ने पुनः कौशिक से कहा : 'हे महाबुद्धिमान ! तुम अपने शिष्यों सहित दिग्वल नामवाले होकर गणाधिपत्य को प्राप्त कर जहाँ मैं स्थित हूँ वहाँ सदा निवास करो।'

मलतीमालवं चेति प्राह दामोदरो वचः ।
मम लोके यथाकामं भार्यया सह मालव ॥ ४८ ॥
दिव्यरूपधरः श्रीमाञ्छृण्वन्गानमिहानुगैः ।
आस्व नित्यं यथाकामं यावल्लोका भवन्ति वै ॥ ४९ ॥

और फिर मालती सहित मालव से दामोदर ने कहा : हे मालव ! तुम अपनी भार्या के साथ मेरे लोक में दिव्य रूप धारण करके अनुचरों सहित गान श्रवण करो, तथा जब तक यह लोक है तब तक इच्छानुसार यहाँ नित्य निवास करो।'

पद्माक्षमाह भगवान् धनदो भव मानद ।
धनानामीश्वरो भूत्वा विहरस्व यथासुखम् ॥ ५० ॥

भगवान् ने पद्माक्ष से कहा : 'हे मानद ! तुम धनद होओ। धन के अधिपति होकर यहाँ सुखपूर्वक विहार करो।'

ब्रह्माणं च ततः प्राह कौशिकोऽभूद्गणाधिपः ।
गणाः स्तोष्यन्ति तं चाशु प्राप्तो मेऽस्ति सलोकताम् ॥ ५१ ॥

और फिर ब्रह्मा से कहा : 'यह कौशिक गणपति हो, दूसरे गण इसे सन्तुष्ट करें और यह मेरी सलोकता प्राप्त करे।

एते च विप्रा नियतं मम भक्ता यशस्विनः ।
श्रोत्रच्छिद्रं यथाहत्य शंकुभिर्वै परस्परम् ॥ ५२ ॥
श्रोष्यामो नैव चान्यद्धै हरेः कीर्तिं विनेति ये ।
महाव्रतधरा विप्रा मम भक्तिपरायणाः ॥ ५३ ॥
एते प्राप्ताश्च देवत्वं मम सान्निध्यमेव च ।
मालवो भार्यया सार्धं मत्क्षेत्रं परिगृह्य वै ॥ ५४ ॥

ये यशस्वी ब्राह्मण मेरे भक्त हैं। इन्होंने परस्पर अपने कानों में शंकुओं से छिद्र करते हुये यह प्रतिज्ञा की थी कि हरि की कीर्ति के अतिरिक्त ये दूसरों को कीर्ति का श्रवण नहीं करेंगे। इस कारण मेरे भक्तिपरायण महाव्रतधारी ये ब्राह्मण देवत्व को और हमारे सान्निध्य को प्राप्त करके मालव और उसकी भार्या सहित मेरे क्षेत्र को ग्रहण करें।

मानमानादिभिर्नित्यमभ्यर्च्य सततं हि माम् ।
गानं शृणोति नियतो मत्कीर्तिचरितान्वितम् ॥ ५५ ॥
तेनासौ प्राप्तवाँल्लोकं मम ब्रह्मन् सनातनम् ।

सतत मान आदि से मेरी अर्चना करते हुये और मेरा कीर्ति-चरित्र-युक्त गान करते हुये स्थित रहें। हे ब्रह्मन्! इसी कारण इन्हें हमारा सनातन लोक प्राप्त हुआ है।

पद्माक्षोऽसौ महाभागः कौशिकस्य महात्मनः ॥ ५६ ॥
धनेशत्वमवाप्तोऽसौ मम सान्निध्यमेवच ।

यह महात्मा कौशिक का पद्माक्ष नामक भाग्यवान शिष्य है। यह धनेशत्व प्राप्त करके हमारे निकट निवास करता रहे।'

एवमुक्त्वा हरिस्तत्र समास्ते लोकपूजितः ॥ ५७ ॥
ततो हरिर्भक्तजनैः समावृतः
सुखेन तस्थौ कनकासने शुभे ।
भक्तैकगम्यो निजभक्तलोकान्स

लालयन्पाणिसरोरुहेण ॥ ५८ ॥

इस प्रकार कहकर समस्त लोकों द्वारा पूजित श्रीहरि हरिभक्तों के साथ सुवर्ण आसन पर स्थित होकर भक्तों के दर्शन योग्य अपने हस्त कमल से उन सब का लालन करने लगे।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
कौशिकादि वैकुण्ठगमनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

हरिमित्रोपाख्यान

तस्मिन्क्षणे समारब्धो मधुराक्षरपेशलैः ॥
महामहोत्सवस्तत्र कौशिकप्रीतयेऽद्भुतः ॥ १ ॥

उसी क्षण कौशिक की प्रीती के लिये वहाँ मधुराक्षरों से युक्त अद्भुत महामहोतसव आरम्भ हुआ।

विपंचीगुणतत्त्वज्ञैर्वाद्यविद्याविशारदैः ॥
ततस्तच्छ्रवणायालं चेटीकोटिसमावृत्ता ॥ २ ॥

वीणा के गुण और तत्त्व को जाननेवाले वाद्यविद्या के विशारदों को श्रवण करने के लिये वहाँ करोड़ों दासियाँ आकर एकत्र हुईं।

गायमाना समायाता लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहः ॥
वृता सहस्रकोटिभिर्वेत्रपाणिभिराशुगैः ॥ ३ ॥

उस समय विष्णु परिग्रहा लक्ष्मी गान करती हुई सहस्र कोटि वेत्रपाणि दासियों के साथ आईं।

ब्रह्मादिसुरसंघानां घनं दृष्ट्वा समागमम् ॥
चेटीगणाधिपा रुष्टा भुशुण्डीपरिघान्विताः ॥ ४ ॥

ब्रह्मादि देवताओं के घने समागम को देखकर भुशुण्डी और परिघ हाथ में लिये हुये चेटीगणों के अधिपति रुष्ट हुये।

ब्रह्मादींस्तर्जयन्त्यस्तान्मुनींश्चापि समन्ततः ॥
उत्सार्यदूरं संहृष्टा विष्ठिताः पर्वतोपमाः ॥ ५ ॥
सर्वे बहिर्विनिर्याताः सार्द्धं वै ब्रह्मणा सुराः ॥
युक्तमित्येव भाषन्तः प्रभोरग्रे वयं तु के ॥ ६ ॥

वे ब्रह्मा आदि और मुनियों आदि से वहाँ बैठने का निषेध करने लगे तथा उन लोगों को वहाँ से दूर ले जाकर बैठा दिया। वहाँ से बाहर करके दूसरे स्थान पर बैठा दिये गये ब्रह्मा और देवताओं ने कहा कि यह उचित ही है क्योंकि प्रभु के आगे हम क्या हैं।

तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे त्रिदशागत मन्यवः ॥
तस्मिन्क्षणे समाहूतस्तुम्बुरुर्मानपूर्वकम् ॥ ७ ॥

इस कारण क्रोधरहित हो सब देवता हाथ जोड़कर स्थित हुये। उसी क्षण तुम्बुरु को मानपूर्वक बुलाया गया।

प्रविवेश समीपं वै देव्या देवस्य चैव हि ॥
तत्रासीनो यथायोगं नानामूर्च्छाक्षरान्वितम् ॥ ८ ॥
जगौ कलपदं हृष्टो विपंचीं चाप्यवादयत् ॥
विष्णुना कौशिकप्रीत्यै प्रत्युक्तो गायकोत्तमः ॥ ९ ॥

वह देवी और देव के समीप आया। वहाँ यथायोग्य आसन पर बैठ कर वह पुलकित हो अनेक प्रकार की मूर्च्छनाओं आदि सहित वीणा बजाने लगा। विष्णु ने कौशिक के प्रीत्यार्थ ही इस उत्तम गायक को निर्धारित किया था।

नानारत्नसमायुक्तैर्दिव्यैराभरणोत्तमैः ॥
दिव्यमाल्यैश्च वसनैः पूजितो विष्णुमन्दिरात् ॥ १० ॥
निर्गतस्तुम्बुरुर्हृष्टो जगाम सयथागतम् ॥
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे मुनयश्च यथागतम् ॥ ११ ॥
जग्मुर्विष्णुं प्रणम्योच्चैर्जयेति भाषिणस्ततः ।

नानारत्नों से समायुक्त और दिव्य आभरणों से सुसज्जित दिव्य

माला और वस्त्रों से पूजित विष्णु के मन्दिर से तुम्बुरु प्रसन्न होकर निकला और यथास्थान चला गया। ब्रह्मा आदि सभी देवता और मुनिजन भी, विष्णु को प्रणाम करके जय-भाषण करते हुये यथास्थान गये।

नारदोऽथ मुनिर्दृष्ट्वा तुम्बुरोः सत्क्रियां हरेः ॥ १२ ॥
शोकाविष्टेन मनसा संतप्तहृदयेक्षणः।
चिन्तामापेदिवांस्तत्र शोकमूर्च्छाकुलान्तरः ॥ १३ ॥

हरि के द्वारा तुम्बुरु के इस सत्कार को देखकर नारदजी शोकाविष्ट और सन्तप्त हृदय से शोकमूर्च्छित हो मन ही मन चिन्ता करने लगे।

ततः क्रोधेन महता जज्वाल मुनिपुङ्गवः।
लक्ष्मीं शशाप सहसा तद्दासीभिस्तिरस्कृतः ॥ १४ ॥

तदनन्तर वे मुनिपुङ्गव महाक्रोध से प्रज्वलित हो उठे और उनकी दासियों द्वारा तिरस्कृत होने के कारण उन्होंने सहसा लक्ष्मी को शाप दे दिया।

यदहं राक्षसं भावं गृहीत्वा विष्णु कान्तया ॥
चेटीभिर्वारितो दूरं वेत्राघातेन ताडितः ॥ १५ ॥
तस्मात्संजायतां लक्ष्मी राक्षसां गर्भसंभवा ॥
यतोऽहं बहिराक्षिप्तश्चेटीभिः सावहेलनम् ॥ १६ ॥
हेलया राक्षसी च त्वां बहिः क्षेप्स्यति भूतले ॥

यतः विष्णुप्रिया ने मुझे राक्षसभाव से ग्रहण किया है, और चेटियों द्वारा दूर हटवा कर वेत्रघात से ताडित किया है, अतः यह लक्ष्मी राक्षस गर्भ से उत्पन्न होंगी। और जिस प्रकार दासियों ने अवहेलना करते हुये मुझे बाहर निकाल दिया है उसी प्रकार अवहेलना करके वह राक्षसी तुम्हें बाहर भूतल पर फेंक देगी।

इत्युक्ते नारदेनाथ चकम्पे भुवनत्रयम् ॥ १७ ॥
हाहाकारं ततश्चक्रुर्देवगन्धर्वदानवाः ॥
नारदो विललापाथ धिग्धिङ् मामिति च ब्रुवन् ॥ १८ ॥

नारद के ऐसा कहने पर तीनों लोक कम्पित होने लगे। देव, गन्धर्व, दानव सभी हा-हाकार करने लगे। तब विलाप करते हुये नारदजी अपने को धिक्कारते हुये कहने लगे :

नारायणसमायोगो महालक्ष्मीसमीपतः ॥
अहो तुम्बुरुणा प्राप्तोधिङ्मां मूढमचेतनम् ॥ १९ ॥
योऽयं हरेः सन्निकासाद्दूतैर्निर्वासितः कथम् ॥
जीवन्यास्यामि कुत्राहं किं मे तुम्बुरुणाकृतम् ॥ २० ॥
रोदमानो मुहुर्विद्वान्धिङ्मामिति च चिन्तयन् ॥

नारायण के और महालक्ष्मी के समीप, तुम्बुरु के सामने मेरा तिरस्कार हुआ इसके लिये मुझ मूढमतिको धिक्कार है। श्रीहरि के सामने दूतों से निकाला गया मैं अब जीवित कहाँ जाऊँ। तुम्बुरु ने मुझे यह क्या कर दिया। वह विद्वान् बार-बार रुदन करते हुये अपने को धिक्कारने और चिन्तन करने लगे।

ततो नारायणो लक्ष्म्याः शापं श्रुत्वा सुदारुणम् ॥ २१ ॥
लक्ष्म्या सह हृषीकेश आजगाम यतो मुनिः ॥
रमां प्रसाद्य तं विप्रं प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ॥ २२ ॥

इधर नारायण ने लक्ष्मी को दिये गये दारुण शाप को सुना। तब लक्ष्मी सहित हृषीकेश (नारद) मुनि के समीप आये। लक्ष्मी ने उन विप्र (नारदजी) को प्रसन्न करते हुये हाथ जोड़ कर कहा :

यदुक्तं भवता मह्यं तत्तथा न तदन्यथा ॥
तत्र किञ्चित्प्रार्थयामि मुने तत्कृपया कुरु ॥ २३ ॥
आरण्यानां मुनीनां वै स्तोकं स्तोकं च शोणितम् ॥
कलशापूरितं भक्षेद्राक्षसी या च कामतः ॥ २४ ॥
तस्या गर्भे भविष्यामि तच्छोणितसमुद्भवा ॥

आपने मेरे प्रति जो कहा है वह अन्यथा नहीं होगा। फिर भी हे मुने ! मैं आप से प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझ पर कृपा कीजिये वन।

के मुनियों का एक एक बूँद रक्त एक कलश में भर कर रक्खा जाय। जो राक्षसी अपनी इच्छापूर्वक उसका भक्षण कर ले उसी के गर्भ से उस रक्त द्वारा मैं उत्पन्न होऊँ।'

इत्युक्तं रमयाचिन्त्यासम्भवाज्ञो भवेदिति ॥ २५ ॥
नारदस्तु तथेत्याह अस्याः सर्वं हि दारुणम् ।

जब लक्ष्मी ने इस प्रकार अपने उत्पन्न होने की बात कही तब नारद ने कहा : 'तुम्हारे निमित्त यह सब कठोरता होगी।'

ततो नारायणो देवः प्रोक्तवान्नारदं मुनिम् ॥ २६ ॥
नाहं दानेन तपसा नेज्यया नापि तीर्थतः ।
संतुष्यामि द्विजश्रेष्ठ यथा नाम्नां प्रकीर्तनात् ॥ २७ ॥
गानेन नामगुणयोर्मम सायुज्यमाप्नुयात् ।
निदर्शनं कौशिकोऽत्र गानान्मल्लोकमाप्तवान् ॥ २८ ॥

तब नारायणदेव ने नारद मुनि से कहा : 'हे द्विजश्रेष्ठ! मैं दान, तप, इज्या, और तीर्थ से भी इतना सतुष्ट नहीं होता जितना नामकीर्तन से होता हूँ। जो मेरे नामगुण का गान करता है वह मेरे लोक और सायुज्य को प्राप्त करता है। इसका ही उदाहरण कोशिक है जिसने गान द्वारा मेरे लोक को प्राप्त किया है।

मूर्च्छनादियुतं गानं नाम्नामति मम प्रियम् ।
तुम्बुरुस्तत्प्रभावेण प्रियस्त्वत्तोपि मे द्विज ॥ २९ ॥

मूर्च्छनाओं आदि सहित जो मेरे नाम का गान करता है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसी कारण से, हे द्विज! तुम्बुरु मुझे तुमसे अधिक प्रिय है।

मूर्च्छनातालयोगेन गानेन त्वं तथा भव ।
उलूकं पश्य गत्वा त्वं यदि गाने मतिस्तव ॥ ३० ॥

मूर्च्छना के ताल योग से गायन करके तुम भी इस प्रकार होओ। यदि गान के प्रति तुम्हारी प्रवृत्ति है तो जाकर उलूक को देखो।

मानसोत्तरशैले तु गानबन्धुरिति स्मृतः ।
तद्गच्छ शीघ्रं शैलेन्द्रं गानवांस्त्वं भविष्यसि ॥ ३१ ॥

वह मानस के उत्तर पर्वत पर गानबन्धु के रूप में विख्यात है। शीघ्र उस पर्वत पर उसके पास जाने से तुम भी गायक हो जाओगे।'

इत्युक्तो विस्मयाविष्टो नारदो वाग्विदां वरः ।
मानसोत्तरशैले तु गानबन्धुं जगाम वै ॥ ३२ ॥

उनके ऐसा कहने पर विस्मयाविष्ट हो वाक्पटुओं में श्रेष्ठ नारद मानस के उत्तर पर्वत पर गानबन्धु के पास गये।

गन्धर्वाः किन्नरा यक्षास्तथा चाप्सरसां गणाः ।
समासीनास्तु परितो गानबन्धुश्च मध्यतः ॥ ३३ ॥

उसके चारों ओर गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और अप्सराओं के समूह थे और गानबन्धु उन सबके मध्य में आसीन थे।

गानशिक्षासमापन्नाः शिक्षिता स्तेन पक्षिणा ।
स्निग्धकण्ठस्वरास्तत्र समासीना मुदान्विताः ॥ ३४ ॥

गानशिक्षा से सम्पन्न उसने अनेक पक्षियों को भी शिक्षित कर दिया था। स्निग्ध कण्ठवाले अनेक पक्षी वहाँ प्रसन्नतापूर्वक स्थित थे।

ततो नारदमालोक्य गानबन्धुरुवाच ह ।
प्रणिपत्य यथा न्याय्यं स्वागतेनाभ्यपूजयत् ॥ ३५ ॥
किमर्थं भगवन्नत्र चागतोऽसि महाद्युते ।
किं कार्यं हि महाब्रह्मन्ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ३६ ॥

नारदजी को आता देखकर वह गानबन्धु यथोचित रूप से प्रणाम और स्वागत-पूजन करके बोला 'हे महातेजस्वी भगवन् ! आप यहाँ किस प्रयोजन से आये हैं ? हे महाब्रह्मन् ! आपका क्या कर्म है, बताइये मैं क्या करूँ।

तच्छ्रुत्वा नारदो धीमान्प्रत्युवाच सपक्षिणम् ।
उलूकेन्द्र महाप्राज्ञ शृणु सर्वं यथातथम् ॥ ३७ ॥
मम वृत्तं प्रवक्ष्यामि तच्च सूतं महाद्भुतम् ।

यह सुन कर बुद्धिमान नारदजी ने उस पक्षिराज से कहा : 'हे महा-

के मुनियों का एक एक बूँद रक्त एक कलश में भर कर रक्खा जाय। जो राक्षसी अपनी इच्छापूर्वक उसका भक्षण कर ले उसी के गर्भ से उस रक्त द्वारा मैं उत्पन्न होऊँ।'

इत्युक्तं रमयाचिन्त्यासम्भवाज्ञो भवेदिति ॥ २५ ॥

नारदस्तु तथेत्याह अस्याः सर्वं हि दारुणम् ।

जब लक्ष्मी ने इस प्रकार अपने उत्पन्न होने की बात कही तब नारद ने कहा : 'तुम्हारे निमित्त यह सब कठोरता होगी।'

ततो नारायणो देवः प्रोक्तवान्नारदं मुनिम् ॥ २६ ॥

नाहं दानेन तपसा नेज्यया नापि तीर्थतः ।

संतुष्यामि द्विजश्रेष्ठ यथा नाम्नां प्रकीर्तनात् ॥ २७ ॥

गानेन नामगुणयोर्मम सायुज्यमाप्नुयात् ।

निदर्शनं कौशिकोऽत्र गानान्मल्लोकमाप्तवान् ॥ २८ ॥

तब नारायणदेव ने नारद मुनि से कहा : 'हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं दान, तप, इज्या, और तीर्थ से भी इतना संतुष्ट नहीं होता जितना नामकीर्तन से होता हूँ। जो मेरे नामगुण का गान करता है वह मेरे लोक और सायुज्य को प्राप्त करता है। इसका ही उदाहरण कौशिक है जिसने गान द्वारा मेरे लोक को प्राप्त किया है।

मूर्च्छनादियुतं गानं नाम्नामति मम प्रियम् ।

तुम्बुरुस्तत्प्रभावेण प्रियस्त्वत्तोपि मे द्विज ॥ २९ ॥

मूर्च्छनाओं आदि सहित जो मेरे नाम का गान करता है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसी कारण से, हे द्विज ! तुम्बुरु मुझे तुमसे अधिक प्रिय है।

मूर्च्छनातालयोगेन गानेन त्वं तथा भव ।

उलूकं पश्य गत्वा त्वं यदि गाने मतिस्तव ॥ ३० ॥

मूर्च्छना के ताल योग से गायन करके तुम भी इस प्रकार होओ। यदि गान के प्रति तुम्हारी प्रवृत्ति है तो जाकर उलूक को देखो।

मानसोत्तरशैले तु गानबन्धुरिति स्मृतः ।

तद्गच्छ शीघ्रं शैलेंद्रं गानवांस्त्वं भविष्यसि ॥ ३१ ॥

वह मानस के उत्तर पर्वत पर गानबन्धु के रूप में विख्यात है। शीघ्र उस पर्वत पर उसके पास जाने से तुम भी गायक हो जाओगे।'

इत्युक्तो विस्मयाविष्टो नारदो वाग्विदां वरः ।
मानसोत्तरशैले तु गानबन्धुं जगाम वै ॥ ३२ ॥

उनके ऐसा कहने पर विस्मयाविष्ट हो वाक्पटुओं में श्रेष्ठ नारद मानस के उत्तर पर्वत पर गानबन्धु के पास गये।

गन्धर्वाः किन्नरा यक्षास्तथा चाप्सरसां गणाः ।
समासीनास्तु परितो गानबन्धुश्च मध्यतः ॥ ३३ ॥

उसके चारों ओर गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और अप्सराओं के समूह थे और गानबन्धु उन सबके मध्य में आसीन थे।

गानशिक्षासमापन्नाः शिक्षिता स्तेन पक्षिणा ।
स्निग्धकण्ठस्वरास्तत्र समासीना मुदान्विताः ॥ ३४ ॥

गानशिक्षा से सम्पन्न उसने अनेक पक्षियों को भी शिक्षित कर दिया था। स्निग्ध कण्ठवाले अनेक पक्षी वहाँ प्रसन्नतापूर्वक स्थित थे।

ततो नारदमालोक्य गानबन्धुरुवाच ह ।
प्रणिपत्य यथा न्याय्यं स्वागतेनाभ्यपूजयत् ॥ ३५ ॥
किमर्थं भगवन्नत्र चागतोऽसि महद्युते ।
किं कार्यं हि महाब्रह्मन्ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ३६ ॥

नारदजी को आता देखकर वह गानबन्धु यथोचित रूप से प्रणाम और स्वागत-पूजन करके बोला 'हे महातेजस्वी भगवन्! आप यहाँ किस प्रयोजन से आये हैं? हे महाब्रह्मन्! आपका क्या कर्म है, बताइये मैं क्या करूँ।

तच्छ्रुत्वा नारदो धीमान्प्रत्युवाच सपक्षिणम् ।
उलूकेन्द्र महाप्राज्ञ शृणु सर्वं यथातथम् ॥ ३७ ॥
मम वृत्तं प्रवक्ष्यामि तच्च भूतं महाद्भुतम् ।

यह सुन कर बुद्धिमान नारदजी ने उस पक्षिराज से कहा : 'हे महा-

प्राज्ञ उलूकेन्द्र ! आप सब कुछ यथावत् श्रवण कीजिये। मैं अपना पिछला महाद्भुत वृत्तान्त कहता हूँ।

वैकुण्ठनगरेब्रह्मन्नारायणसमीपगम् ॥ ३८ ॥
मां विनिर्धूय संहृष्टं समाहूय च तुम्बुरुम् ।
लक्ष्मीसमन्वितो विष्णुरशृणोद्गानमुत्तमम् ॥ ३९ ॥
ब्रह्माद्यो वयं सर्वे निरस्ताः स्थानतश्च्युताः ।
कौशिकाद्याः समासीना गानयोगेन वै हरिम् ॥ ४० ॥

वैकुण्ठ नगर में श्री नारायण ब्रह्म के समीप मेरा तिरस्कार करके तुम्बुरू को आमन्त्रित किया गया। लक्ष्मीसहित विष्णु ने उसका श्रेष्ठगान श्रवण किया। ब्रह्मा आदि हम सब देवता उस स्थान से बाहर कर दिये गये, और कौशिक आदि गानयोग से उन हरि के समीप बैठे रहे।

समाराध्यैव संप्राप्ता गाणपत्यं यथासुखम् ।
तेनाहमतिदुःखार्तो यत्तप्तं तु मया तपः ॥ ४१ ॥
यद्दत्तं यद्धुतं चैव यच्चापि श्रुतमेव हि ।
यदधीतं च गानस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ४२ ॥

उनकी (श्रीहरि की) आराधना से उनको सुखपूर्वक गाणपत्य प्राप्त हुआ। इससे मैं अत्यन्त दुखित हूँ। मैंने जो कुछ तप किया है, जो दिया है, जो हवन किया है, जो सुना है, और जो कुछ अध्ययन किया है वह सब गानविद्या की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है।

विष्णोर्माहात्म्ययुक्तस्य गानयोगस्य वै ततः ।
पश्चात्तापं च मे दृष्ट्वा मां च नारायणोऽब्रवीत् ॥ ४३ ॥
उलूकं गच्छ देवर्षे गानबन्धुं मतिर्यदि ।
गाने च वर्तते ब्रह्मंस्तत्र त्वं गानमाप्स्यसि ॥ ४४ ॥

विष्णु के माहात्म्य से युक्त उस गानयोग की श्रेष्ठता देख कर पश्चाताप करने पर मुझसे नारायण ने कहा : हे देवर्षि ! गान में यदि तुम्हारी प्रवृत्ति है तो उलूक के पास जाओ। वह गानका आचार्य है, वहाँ तुम्हें गायन की प्राप्ति होगी।

इत्यहंप्रेषितस्तेन त्वत्समीपमिहागतः ।

किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयाव्यय ॥ ४५ ॥

इस प्रकार उनके द्वारा भेजा हुआ मैं तुम्हारे पास आया हूँ। हे अविनाशी ! तुम मुझे अपना शिष्य बना कर मेरा पालन करो।

नारदं प्राह धर्मात्मा गानबन्धुर्महायशाः ।

शृणु नारद यद्वृत्तं पुरा मम महामते ॥ ४६ ॥

अत्याश्चर्यसमायुक्तं सर्वपापहरं शुभम् ।

महायशस्वी धर्मात्मा गानबन्धु ने नारद से कहा : हे महामति नारद ! हमारा जो पूर्ववृत्तान्त है उसे सुनो। वह अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण, शुभ और सभी पापों का हरण करने वाला है।

भुवनेशइति ख्यातो राजाभूद्धार्मिकः पुरा ॥ ४७ ॥

अश्वमेधसहस्रेश्च वाजपेया युतेन च ।

अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरिष्टवान्भूरिदक्षिणैः ॥ ४८ ॥

पूर्वकाल में भुवनेश नाम से विख्यात एक धर्मात्मा राजा था। उसने एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ, दश सहस्र वाजपेय तथा अनेक अन्य प्रभूत दक्षिणा वाले यज्ञ किये थे।

गवां कोटयर्बुदं चैव सुवर्णस्य तथैव च ।

वाससां रथनागानां कन्या श्वानां तथैव च ॥ ४९ ॥

दत्त्वा स राजा विप्रेभ्यो मेदिनीं पर्यपालयत् ।

न्यवारयत्स्वके राज्ये गानयोगेन केशवम् ॥ ५० ॥

करोड़ों गायें, और अरबों सुवर्ण, वस्त्र, रथ, नागकन्यायें, तथा अश्व उस राजा ने ब्राह्मणों को दिया और पृथिवी का पालन करता रहा। उसने गानयोग से केशव को वर्जित किया।

अन्यं वा गानयोगेन गायेद्यदि स मे भवेत् ।

वध्यः सर्वात्मना तस्माद्वैरीद्ध्यः परः पुमान् ॥ ५१ ॥

न ब्राह्मणैश्च गातव्यं वहद्भिर्वेदमुत्तमम् ।

गानयोगेन सर्वत्र स्त्रियो गायन्तु मां सदा ॥ ५२ ॥

(उसने कहा) कि 'जो कोई गानयोग से गायन करेगा वह मेरा वध्य होगा क्योंकि उन परम पवित्र सर्वात्मा की स्तुति वेद वचनों से होती है। उत्तम वेदधारी ब्राह्मणों को गाना नहीं चाहिये। गानयोग से सर्वत्र स्त्रियाँ सदा मेरा गायन करें।

सूतमागधसंघाश्च गीतं मे कारयन्तु वै ।
इत्याज्ञाप्य महातेजा राज्यं वै पर्यपालयत् ॥ ५३ ॥

सूत-मागध भी मेरा ही गायन करें। इस प्रकार कह कर वह महातेजस्वी राज्यपालन करने लगा।

तस्य राज्ञः पुराभ्याशे हरिमित्र इति स्मृतः ।
ब्राह्मणो विष्णुभक्तश्च सर्वद्वन्द्वविवर्जिता ॥ ५४ ॥

उस राजा के समीप एक हरिमित्र नामक व्यक्ति रहता था जो विष्णुभक्त और सभी द्वन्द्वों से रहित था।

नदीपुलिनमासाद्य प्रतिमाञ्च हरेः शुभाम् ।
समभ्यर्च्य यथाशास्त्रं घृतदध्युत्तरं बहु ॥ ५५ ॥
मिष्टान्नं पायसं दत्त्वा हरेरावेद्य धूपकम् ।
प्रणिपत्य यथान्यायं तत्र विन्यस्तमानसः ॥ ५६ ॥
अगायत हरिं तत्र तालवीणालयान्वितम् ।
अतीव स्नेहसंयुक्तस्तद्गीतेनान्तरात्मना ॥ ५७ ॥

वह नदीतट पर जाकर श्रीहरि की सुन्दर प्रतिमा की शास्त्रानुसार अर्चना कर घृत, दही, मिष्ठान्न और खीर आदि तथा धूपादि से हरि को निवेदित कर यथाविधि प्रणाम करता और उन्हीं में मन लगा कर ताल और लय सहित वीणा पर हरि का गान करता तथा उस गीत से अपनी अन्तरात्मा को अतीव स्नेह से संयुक्त करता था।

ततो राज्ञः समादेशाद्भटास्तस्य समागताः ।
तदर्चनादि सकलं निर्धूय च समन्ततः ॥ ५८ ॥
ब्राह्मणं च गृहीत्वा ते राज्ञे सम्यङ्न्यवेदयन् ।

तब उस राजा के आदेश से योद्धा वहाँ आये। उन्होंने अर्चनादि की सब सामग्री नष्ट कर दी और ब्राह्मण को पकड़ कर राजा के पास ले आये।

ततो राजा द्विजश्रेष्ठं परिभर्त्स्य सुदुर्मनाः ॥ ५९ ॥
राज्यान्निर्वासयामास हृत्वा सर्वधनादिकम् ।
प्रतिमां च हरेश्चैव नापश्यत्स यदृच्छया ॥ ६० ॥

तब राजा ने दुःखी होकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ की बहुत भर्त्सना की; उसका सब धन आदि लेकर उसे राज्य से निष्कासित कर दिया और कभी भी अपनी इच्छा से हरि की प्रतिमा का दर्शन नहीं किया।

ततः कालेन महता कालधर्ममुपेयिवान् ।
लोकान्तरमनुप्राप्य उलूकं देहमाश्रितः ॥ ६१ ॥

फिर दीर्घकाल के बाद वह कालधर्म के अनुसार लोकान्तर को प्राप्त होकर उलूक हो गया।

सर्वत्र गच्छमानोपि भक्ष्यं किञ्चिन्न चाप्तवान् ।
क्षुधार्तश्च सदा खिन्नो यममाह सुदुःखितः ॥ ६२ ॥

सर्वत्र जाने पर भी उसे कहीं कुछ भी भक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ और सदा क्षुधा से खिन्न होकर उसने अत्यन्त दुःखी हो यमराज से कहा :

क्षुत्पीडा वर्तते देव दुर्गतस्य सदा मम ।
मया पापं कृतं किंवा किं करिष्यामि वै यम ॥ ६३ ॥

हे देव ! मैं क्षुधा से पीड़ित हूँ और मेरी सदा दुर्गति हो रहीहै। हे यम ! मैंने कौन से पाप किये हैं, और अब मैं क्या करूँ।

ततस्तं धर्मराट् प्राह धर्माधर्मप्रदर्शकः ।
त्वया हि सुमहत्पापं कृतमज्ञानतो नृप ॥ ६४ ॥

तब धर्म-अधर्म के प्रदर्शक धर्मराज ने उससे कहा : 'हे राजन् ! तुमने अज्ञान से बहुत बड़े पाप किये हैं।

हरिमित्रं प्रति तदा वासुदेवपरायणम् ।

हरिमित्रे कृतं पापं वासुदेवार्चनादिषु ॥ ६५ ॥
तेन पापेन संप्राप्तः क्षुद्बोधस्त्वां सदा नृप ।
दानयज्ञादिकं सर्वं प्रनष्टं ते नराधिप ॥ ६६ ॥

हरिमित्र, उस समय वासुदेव परायण था । उस हरिमित्र की वासुदेव की अर्चना आदि के प्रति तुमने पाप किया है । हे राजन् ! उसी पाप के कारण आपको सदा क्षुधा की प्राप्ति हुई है । हे नराधिप तुम्हारे दान-यज्ञ आदि सब नष्ट हो गये हैं ।

गीतनाट्यलयोपेतं गायमानं सदा हरिम् ।
हरिमित्रं समाहूय हृतवानसि तद्धनम् ॥ ६७ ॥
उपहारादिकं सर्वं वासुदेवस्य सन्निधौ ।
तव भृत्याः समाहृत्य पापं चक्रुतवाज्ञया ॥ ६८ ॥

गीत-नाट्य-लय से युक्त सदा हरि का गान करने वाले हरिमित्र को बुला कर तुमने उसके धन का हरण कर लिया । जो कुछ भी उपहार आदि वासुदेव के समीप था उसका भी तुम्हारे भृत्यों ने हरण कर तुम्हारी आज्ञा से फेंक दिया ।

हरेः कीर्तिं विना चान्यद्ब्राह्मणेन नृपोत्तम ।
न गेययोगे मन्तव्यं तस्मात्पापं त्वया कृतम् ॥ ६९ ॥
नष्टं ते स्वर्गलोकाद्यंगच्छ पर्वतकोटरम् ।
पूर्वोत्सृष्टं स्वदेहं ते खाद नित्यं निकृत्य वै ॥ ७० ॥

हे नृपोत्तम ! हरि की कीर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी के लिये ब्राह्मण को गानयोग नहीं करना चाहिये, यह पाप तुमने किया है । तुम्हारे स्वर्ग-लोक आदि इसी कर्म से नष्ट हो गये हैं । अब तुम पर्वत की कोटर में जाकर पहले के छोड़े हुये अपने ही देह को नित्य नोच-नोच कर भक्षण करो ।

तस्मिन्क्षीणे त्विमं देहं खाद नित्यं क्षुधान्वितः ।
महानिरययसंस्थस्त्वं यावंन्मन्वंतरं भवेत् ॥ ७१ ॥
मन्वंतरे ततोऽतीते भूम्यां त्वं श्वा भविष्यसि ।

ततःकालेन कियता मानुष्यमनुलप्स्यसे ॥ ७२ ॥

एवमुक्त्वा यमो विद्वांस्तत्रैवान्तरधीयत ।

क्षुधा से व्याकुल होकर तुम उसी क्षीण होते हुये देह को नित्य भक्षण करो और इस प्रकार एक मन्वन्तर तक महा नरक में निवास करो। उस मन्वन्तर के व्यतीत होने पर तू भूमि पर कुत्ता होगा। फिर बहुत काल व्यतीत होने पर तुझे मनुष्य शरीर प्राप्त होगा। इस प्रकार कह कर विद्वान् यमराज वहीं अन्तर्धान हो गये।

सोऽहं नारद भूपालः पुरेदानीमुलूकताम् ॥ ७३ ॥

लब्धवान्कर्मदोषेण हरिमित्रकृतेन वै ।

ततो मानसशैलेऽहं कोटरे ह्यवसं मुने ॥ ७४ ॥

हे नारद ! मैं वही पूर्वकाल का राजा उलूकता को प्राप्त हुआ हूं। हरिमित्र के प्रति किये क्षुद्र कर्म का दोष मुझको प्राप्त हुआ है। हे मुने ! तब मैं इस मानस पर्वत के कोटर में निवास करने लगा।

पूर्वो मृतकदेहो मे भक्षणाय ह्युपस्थितः ।

क्षुधान्वितोऽहंतंदेहं खादितुं ह्युपचक्रमे ॥ ७५ ॥

तत्क्षणं दैवयोगेन हरिमित्रो महायशाः ।

विमानेनार्कवर्णेन स्तूयमानोऽप्सरोगणैः ॥ ७६ ॥

मेरा पूर्व मृतक देह मेरे भक्षण के निमित्त उपस्थित हुआ। क्षुधायुक्त हो जब मैं उस देह को खाने की इच्छा करने लगा तब उसी क्षण दैवयोग से महायशस्वी हरिमित्र सूर्य के समान विमान पर स्थित और अप्सराओं से स्तूयमान हो,

विष्णुदूतैः परिवृतः पथा तेनागतो नृप ।

विष्णुभक्तो महातेजाः पथि मां दृष्टवान्प्रभु ॥ ७७ ॥

भुवनेशशरीरन्तद्ददर्शोलूक सन्निधौ ।

पृष्टोऽहं तेन दयया शवसन्निधिसंस्थितः ॥ ७८ ॥

विष्णु के दूतों से घिरे हुये उस पथ से आ गये। उन महातेजस्वी विष्णुभक्त ने मार्ग में राजा भुवनेश के शरीर को उलूक के समीप देखा तब

शव के निकट खड़े होकर उन्होंने दया से पूछा :

भुवनेशस्य नृपतेर्देहोऽयं दृश्यते खग ।

उलूक त्वं च किमिदं खादितुं चोद्यतो भवान् ॥ ७९ ॥

'हे पक्षी ! यह तो राजा भुवनेश का देह दिखाई पड़ता है और उलूक तू उसको कैसे भक्षण करने के लिये उद्यत हुआ है ।'

तच्छ्रुत्वा हरिमित्राय प्रणम्य विनयान्वितः ।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा बहुमानपुरःसरम् ॥ ८० ॥

तत्सर्वं पूर्ववृत्तान्तं नारदास्मै न्यवेदयम् ।

पुरापराधं त्वयि यत्तस्य पाकोऽयमागतः ॥ ८१ ॥

यह वचन सुन कर उसने हरिमित्र को प्रणाम कर विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर आदरपूर्वक उनसे पहले का सब वृत्तान्त वर्णन करते हुये कहा: पूर्व समय में तुम्हारा जो अपराध किया था उसी का मुझे यह फल प्राप्त हुआ है ।

यावन्मन्वन्तरं विप्रखादिष्यामि शवं त्विमम् ।

ततः श्वाहं भविष्यामि भविष्यामि ततो नरः ॥ ८२ ॥

हे विप्र ! मुझे एक मन्वन्तर तक इस शव को खाना पड़ेगा । तब मैं कुत्ता होऊँगा और उसके बाद मनुष्य की योनि मिलेगी ।

एतदाकर्ण्य करुणो हरिमित्रमहायशाः।

कृपया मां समाचष्ट शृणुलूक महीपते ॥ ८३ ॥

मयि त्वयापराधं यत्तत्सर्वं क्षान्तवानहम् ।

शवो ह्यदर्शनं यातु न च श्वा त्वं भविष्यसि ॥ ८४ ॥

महायशस्वी दयालु हरिमित्र इस बात को सुनकर कृपापूर्वक मुझसे बोले : हे महाबुद्धिमान उलूक तुम सुनो । तुमने मेरा जो कुछ अपराध किया है उस सबको मैं क्षमा करता हूँ । यह शव अन्तर्धान हो जाय और तुम्हें कुत्ता भी नहीं बनना पड़ेगा ।

त्वामद्य गानयोगश्च प्राप्नोतु मत्प्रसादतः ।

स्तुहि विष्णुं च गानेन जिह्वा स्पष्टा च जायताम् ॥ ८५ ॥

सुरविद्याधराणां च गंधर्वाप्सरसां तथा ।
गानाचार्यो भवेथास्त्वं भक्ष्यभोज्यसमन्वितः ॥ ८६ ॥
ततः कतिपयाहोभिः सर्वं भद्रं भविष्यति ।

मेरे प्रसाद से तुमको गानयोग की प्राप्ति होगी और विष्णु के स्तुति-गान के लिये तुम्हारी जिह्वा स्पष्ट हो जायगी। देवताओं और विद्याधरों तथा गन्धर्वों और अप्सराओं का तू गायनाचार्य और अनेक प्रकार के भक्ष्य-भोग्य से समन्वित होगा। तब फिर कुछ दिनों में सभी कुछ मंगलमय हो जायगा।'

हरिमित्रवचस्तच्च विष्णुदूतोपबृंहितम् ॥ ८७ ॥
सर्वं निरयसंज्ञंमेक्षणादेव व्यनाशयत् ।
प्रकृत्या विष्णुभक्तानामीदृशो करुणा द्विज ॥ ८८ ॥

विष्णु के दूतों के समक्ष जब हरिमित्र ने ये वचन कहे तब क्षणमात्र में नरकसंज्ञक सब कुछ नष्ट हो गया। हे द्विज! विष्णु भक्तों की ऐसी ही दयालु प्रकृति होती है।

कृतापराधलोकानामपि दुखं व्यपोहति ।
अमृतस्यन्दि वचनमुक्त्वा स प्रययौ हरिम् ॥ ८९ ॥

वे अपराधीजनों के भी दुःख दूर कर देते हैं। इस प्रकार अमृत तुल्य वचन कह कर वह हरि के लोक को चले गये।

सर्वं ते कथितं येन गानाचार्योहमुत्तमः ।
प्राप्स्यामि हरिमेतेन हरिमित्रप्रसादतः ॥ ९० ॥

मैंने जिस प्रकार गायनाचार्य के उत्तम पद को प्राप्त किया है वह सब आपसे कह दिया। हरिमित्र के प्रसाद से ही मैं हरि को प्राप्त होऊँगा।

नारदैतदनुवर्णितं मयापूर्वजन्म-
चरितं महाद्भुतम् ।
यः श्रृणोति हरिमेत्य चेतसा स
प्रयाति भवनं गदाभृतः ॥ ९१ ॥

हे नारद ! मैंने आपसे इस पूर्वजन्म के महाद्भुत चरित्र का वर्णन किया। जो हरि में चित्त लगा कर इसे सुनता है वह विष्णुलोक को प्राप्त होता है।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
नारदोलूकसंवादे हरिमित्रोपाख्यानं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

नारद को गानविद्या की प्राप्ति

गानबन्धुः पुनः प्राह नारदं मुनिसत्तमम् ।
एते किन्नरसंघा वै विद्याध्राप्सरसां गणाः ॥ १ ॥
गानाचार्यमुलूकं मां गानशिक्षार्थमागताः ।
तपसा नैव शक्त्या वा गान विद्या तपोधन ॥ २ ॥
तस्माच्छ्रमणे युक्तश्च मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि ।

गानबन्धु ने मुनिश्रेष्ठ नारद से पुनः कहा : यह किन्नरों का समूह और विद्याधर तथा अप्सरायें मुझ गायनाचार्य उलूक के पास गायनशिक्षा के लिये आते हैं। हे तपोधन ! गानविद्या तप से नहीं आती। अतः तुम श्रम-पूर्वक मुझसे गायन सीखो।

एवमुक्तो मुनिस्तस्मै प्रणिपत्य जगौ यथा ॥ ३ ॥
तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ वासुदेवं नमस्य च ।

उनके इस प्रकार कहने पर मुनि उन्हें प्रणाम कर जैसे गान करने लगे, हे मुनिश्रेष्ठ (यहाँ सम्भवतः भरद्वाज जी का तात्पर्य है) उसे सुने।

उलूकेनैवमुक्तस्तु नारदो मुनिसत्तमः ॥ ४ ॥
शिक्षाक्रमेण संयुक्तस्तत्र गानमशिक्षत ।

वासुदेव को नमस्कार करके मुनिश्रेष्ठ नारद उलूक के वचन को मान कर शिक्षाक्रम से गायन सीखने लगे।

गानबन्धुस्तमाहेदं त्यक्तलज्जो भवाधुना ॥ ५ ॥

स्त्रीसंगमे तथा गीतेक्षुतेऽन्वाख्यानसंगमे ।
व्यवहारे च धान्यानामर्थानां च तथैव च ॥ ६ ॥

गानबन्धु ने उनसे (नारद से) कहा कि अब लज्जा त्याग देनी चाहिये । स्त्री संगम, गीत, छींक, अन्वाख्यान, धान्य और अर्थ के व्यवहार में,

आयेव्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत् ।
न कुण्ठितेन गूढेन नित्यं प्रावरणादिभिः ॥ ७ ॥
हस्तविक्षेपभावेन व्यादितास्येन चैव हि ।
निर्यातजिह्वायोगेन न गेयं च कथञ्चन ॥ ८ ॥

आय और व्यय में कभी भी लज्जा नहीं करनी चाहिये । कुण्ठित, गूढ़, अत्यन्त ढके स्थान में, तथा हाथ फैलाकर अथवा मुख को बहुत फैलाकर, या जिह्वा को निकाल कर कभी भी गान नहीं करना चाहिये ।

स्वांगं निरीक्षमाणेन परमप्रेक्षता तथा ।
न गायेदूर्ध्वबाहुश्च नोर्ध्वदृष्टिः कथञ्चन ॥ ९ ॥
हासो भयं क्षुधा कंपः शोकोऽन्यस्य स्मृतिस्तृषा ।
नैतानि सप्तरूपाणि गानयोगे महामते ॥ १० ॥

केवल अपने अङ्गों को देखते हुये, बाहुओं को ऊपर उठाकर अथवा केवल ऊर्ध्वदृष्टि से, हँसते हुये, भय से, क्षुधा से काँपते हुये, शोक में, किसी अन्य की स्मृति में, या प्यास में गान करना कदापि उचित नहीं है ।

नैकहस्तेन शस्येत तालसंघट्टनं मुने ।
क्षुधार्तेन भयार्तेन तृषार्तेन तथैव च ॥ ११ ॥
गानयोगो न कर्तव्यो नान्धकारे कथञ्चन ।
एवमादीनि योग्यानि कर्तव्यानि महामुने ॥ १२ ॥

हे मुने ! एक हाथ से ताल देकर गान करना उचित नहीं है । क्षुधा से आर्त, भय से आर्त अथवा प्यास से आर्त के लिये गानयोग किसी भी प्रकार कर्तव्य नहीं है । इसी प्रकार अन्धकार में भी कदापि गान न करे । हे महामुने ! इस प्रकार योग्य-अयोग्य कर्तव्यों का विचार करे ।

एवमुक्तः स भगवान्नारदो विधिरक्षणे ।
अशिक्षत तथा गीतं दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ १३ ॥
ततः समस्तसम्पन्नो गीतप्रस्तावकादिषु ।
विपंच्यादिषु सम्पन्नः सर्वस्वरविभागवित् ॥ १४ ॥

उनके इस प्रकार कहने पर भगवान् नारद नियमानुसार दिव्य सहस्र वर्षों तक गीत सीखते रहे। तब वे गीत की प्रस्तावना आदि समस्त बातों से सम्पन्न हुये तथा वीणा के सब स्वरों का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया।

अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ।
स्वराणां भेदयोगेन ज्ञातवान्मुनिसत्तमः ॥ १५ ॥
ततो गन्धर्वसंघाश्च किन्नराणां तथा गणाः ।
मुनिना सह संयुक्ताः प्रीतियुक्तास्तु तेऽभवन् ॥ १६ ॥

उन मुनिश्रेष्ठ ने स्वरों के ४६,००० भेदों का ज्ञान भलीप्रकार प्राप्त कर लिया। तब गन्धर्वों के समूह और किन्नरगण मुनि के साथ रहकर अत्यन्त प्रीतियुक्त हुये।

गानबन्धुं मुनिः प्राह प्राप्य गानमनुत्तमम् ।
त्वां समासाद्य सम्पन्नं त्वं हि गीतविशारदः ॥ १७ ॥
ध्वांक्षशत्रो महाप्राज्ञ किमवाप्यं करोमि ते ।

गानबन्धु से मुनि ने कहा : तुम्हारे पास आकर मैंने श्रेष्ठ गानयोग को प्राप्त किया है। तुम सम्पन्न और गीतविशारद हो। हे महाबुद्धिमान उलूकराज ! मैं अब तुम्हारा क्या प्रिय करूँ।

गानबन्धुस्ततः प्राह नारदं मुनि पुङ्गवम् ॥ १८ ॥
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवः स्युश्चतुर्दश ।
ततस्त्रैलोक्यसम्प्लावो भविष्यति महामुने ॥ १९ ॥
तावन्मे स्याद्यशोभागस्तावन्मे परमं शुभम् ।
मनसाध्यापितं मे स्याद्दाक्षिण्यान्मुनिसत्तमः ॥ २० ॥

तब गानबन्धु ने मुनि पुङ्गव नारदजी से कहा : हे महामुने ! जब

ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु बीत जाने पर तीनों लोक आप्लावित हो नष्ट हो जायेंगे तब तक मेरा परम शुभ यश बना रहे। हे मुनिश्रेष्ठ! मुझे स्वत: ही चतुरता की प्राप्ति हो जाय।'

उलूकं प्राह देवर्षिः सर्वं तेऽस्तु मनोगतम्।
अतीते कल्पसंयोगे गरुडस्त्वं भविष्यसि ॥ २१ ॥
गुणगानादच्युतस्य सायुज्यं तस्य लप्स्यसे।
स्वस्ति तेस्तु महाप्राज्ञ गमिष्यामि प्रसीद मे ॥ २२ ॥
एवमुक्त्वा ययौ विप्रो जेतुं तुम्बुरुमुत्तमम्।

देवर्षि ने उलूक से कहा : जो तुम्हारी इच्छा है वह सब हो जायगा। एक कल्प व्यतीत होने पर तुम गरुड़ हो जाओगे। अच्युत का गुणगान करने के कारण तुम्हें उनका सायुज्य प्राप्त होगा। हे महाप्राज्ञ! आप का मंगल हो। मैं जाता हूँ, आप प्रसन्न रहो। यह कह कर नारदजी तुम्बुरु को जीतने के लिये गये।

तुम्बुरोश्च गृहाभ्याशे ददर्श विकृताकृतीन् ॥ २३ ॥
कृत्तबाहूरुपादांश्च कृतनासाक्षिवक्षसः।
कृतोत्तमांगांगुलींश्च छिन्नभिन्नकलेवरान् ॥ २४ ॥
पुंसः स्त्रियश्च विकृतान्ददर्शायुतशो बहून्।
नारदेन च ते प्रोक्ताः के यूयं कृतविग्रहाः ॥ २५ ॥

तुम्बुरु के घर के निकट आकर उन्होंने विकृत आकार वाले, हाथ, पाँव, जाँघ कटे, नासिका-वक्ष कटे, छिन्न सर, किसी की अंगुली कटी और छिन्न-भिन्न कलेवर वाले बहुत से विकृत पुरुषों और स्त्रियों को देखकर नारद ने उनसे पूछा : 'तुम्हारे शरीरों को किसने विकृत कर दिया है।'

नारदं प्रोचुरपि ते त्वया कृताङ्का वयम्।
वयं रागाश्च रागिण्योगानेन भिन्नसन्धिना ॥ २६ ॥
भवता गीयते यर्हि तर्ह्यवस्थेदृशी हि नः।
पुनस्तुम्बुरुगानेनच्छिन्नभिन्नप्रोहणम् ॥ २७ ॥

तुम्बुरुर्जीवयत्येष त्वं मारयसि नारद ।

नारदजी के यह पूछने पर उन सबने कहा : 'आपने ही हमें अंगहीन किया है। हम राग-रागिनियाँ हैं। जिस समय आप भिन्न सन्धान से गायन करते हैं तब हमारी यह दशा हो जाती है। पुनः जब तुम्बुरु गायन करते हैं तब हमारे छिन्न-भिन्न शरीर फिर से ठीक हो जाते हैं। हे नारद ! तुम मारते हो और तुम्बुरु जीवित करते हैं।

तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा श्रुत्वा च विस्मयान्वितः ॥ २८ ॥

धिग्धिगुक्त्वा जगामाथ नारदोऽपि जनार्दनम् ।

तब इस महान आश्चर्य को देख-सुन कर (नारदजी) विस्मित हुये। अपने को धिक्कारते हुये नारदजी जनार्दन के पास गये।

श्वेतद्वीपे स भगवान्नारदं प्राह माधवः ॥ २९ ॥

गानबन्धौ च यद्गानं न चैतेनासि पारगः ।

तुम्बुरोः सदृशो नासि गानेगानेन नारद ॥ ३० ॥

श्वेतद्वीप में नारदजी से भगवान् ने कहा : 'गानबन्धु से गायन सीख कर अभी तुम पारङ्गत नहीं हुये हो। हे नारद ! गानविद्या में अभी तुम तुम्बुरु के समान नहीं हुये हो।

मनोर्वैवस्वतस्याहमष्टाविंशतिमे युगे ।

द्वापरान्ते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः ॥ ३१ ॥

देवक्यां वसुदेवस्य कृष्णनाम्ना महामुने ।

तदानीं मां समागम्य स्मारयैतद्यथातथम् ॥ ३२ ॥

वैवस्वत मनु के अट्ठाईसवें युग में, द्वापर के अन्त में यदुकुल में मैं अवतार लूंगा। देवकी-वसुदेव से जन्म लेने से मेरा नाम कृष्ण होगा। उस समय आकर तुम हमें इस बात का स्मरण कराना।

तत्र त्वां गानसम्पन्नं करिष्यामि महाव्रत ।

तुम्बुरोश्च समं चैव तथातिशयसंयुतम् ॥ ३३ ॥

तावत्कालं यथायोगं देवगन्धर्वयोनिषु ।

शिक्ष त्वं हि यथान्यायमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ३४ ॥

हे महाव्रती ! उस समय मैं तुम्हें गान-सम्पन्न कर दूँगा और तुम्बुरु के समान तथा उससे भी अधिक कर दूँगा। तब तक देवगन्धर्व की योनि में तुम यथाविधि शिक्षा दो।' यह कह कर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

ततो मुनिः प्रणम्यैनं वीणावादन तत्परः।

देवर्षिर्देवसंकाशः सर्वाभरणभूषितः॥ ३५॥

तपसां निधिरत्यर्थं वासुदेवपरायणः।

स्कन्धे विपञ्चीमाधाय सर्वलोकांश्चचार सः॥ ३६॥

तब मुनि उन्हें प्रणाम कर वीणावादन में तत्पर हुये। देवों के समान सम्पूर्ण आभरणों से विभूषित हो, वासुदेवपरायण वे तपस्यानिधि देवर्षि वीणा को धारण किये हुये सब लोकों में विचरण करते थे।

वारुणं याम्यमाग्नेयमैंद्रं कौबेरमेव च।

वायव्यं च तथैशानं संशंश प्राप्य धर्मवित्॥ ३७॥

गायमानो हरिं सम्यग्वीणा वादविचक्षणः।

गन्धर्वाप्सरसां सन्घैः पूज्यमानस्ततस्ततः॥ ३८॥

संशय को प्राप्त होकर वे धर्मवित ओर वादनिपुण वारुण, याम्य, आग्नेय, ऐन्द्र, कौबेर, वायव्य, तथा ईशान दिशाओं में वीणा बजाकर हरि का गुणगान करने हुये गन्धर्वों और अप्सराओं के समूह द्वारा पूजित होने लगे।

ब्रह्मलोकं समासाद्य कस्मिंश्चित्कालपर्यये।

हाहा हूहूश्च गन्धर्वो गीतवाद्यविशारदौ॥ ३९॥

ब्रह्मणो गायकौ दिव्यौ नित्यं गन्धर्वसत्तमौ।

तत्र ताभ्यां समासाद्य गायमानो हरिं विभुम्॥ ४०॥

ब्रह्मलोक में आकर कुछ काल के पश्चात्, वहाँ गायन और वादन के विशारद ब्रह्माजी के नित्य गायक हाहा हूहू नामक दिव्य गन्धर्वश्रेष्ठ के साथ मिलकर हरि के वैभव का गायन करने लगे।

ब्रह्मणा च महातेजाः पूजितो मुनिसत्तमः।

तं प्रणम्य महात्मानं सर्वलोकपितामहम्॥ ४१॥

चचार च यथाकामं सर्वलोकेषु नारदः ।

और महातेजस्वी ब्रह्माजी से पूजित होकर उन सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम करके नारद जी सब लोकों में यथेच्छ विचरण करने लगे ।

पुनः कालेन महता गृहं प्राप्य च तुम्बुरोः ।। ४२ ।।
वीणामादाय तत्रस्थस्तत्रस्थैरप्यलक्षितः ।
सुरकन्याश्च तत्रस्थाः षजाद्याः सहधैवताः ।। ४३ ।।
व्रीडितो भगवान्दृष्ट्वा निर्गतश्च सत्वरम् ।
शिक्षयामास बहुशस्तत्र तत्र महामुनिः ।। ४४ ।।

फिर बहुत काल के बाद तुम्बुरु के घर में प्राप्त हो, अन्यों से अलक्षित हो वीणा लेकर आये । वहाँ धैवत सहित षडज आदि देवकन्यायें स्थित थीं । उनको देखकर लज्जित हो नारदजी वहाँ से शीघ्रता से चले गये और उन मुनि ने जहाँ-तहाँ बहुत शिक्षा दी ।

कालेऽतीते ततो विष्णुरवतीर्णो जगन्मयः ।
देवक्यां वसुदेवस्य यादवोऽसौ महाद्युतिः ।। ४५ ।।
सप्तस्वराङ्गना द्रष्टुं गानविद्याविशारदः ।
ययौ रैवतके कृष्ण प्रणिपत्य महामुनिः ।। ४६ ।।

बहुत समय व्यतीत होने पर वसुदेव नामक यादव के घर देवकी से जगत्प्रभु महाद्युतिमान विष्णु का अवतार हुआ । सात स्वरों और उनके अङ्गों को देखकर वे गानविद्या विशारद रैवतक पर्वत पर श्रीकृष्ण को प्रणाम करने गये ।

व्यज्ञापयदशेयं तच्छ्वेतद्वीपे त्वया पुरा ।
नारायणेन कथितं गानयोगार्थमुत्तमम् ।। ४७ ।।

और उन्होंने श्वेतद्वीप की वार्ता का स्मरण कराया कि 'नारायणरूप में आपने श्रेष्ठ गानयोग की बात कहा था ।'

तच्छ्रुत्वा प्रहसन्कृष्णः प्राह जाम्बवतीं मुदा ।

एनं मुनिवरं भद्रे शिक्षयस्व यथाविधि ॥ ४८ ॥
वीणागानसमायोगे तथेत्याह च सा पतिम् ।
प्रहसन्ती यथायोगं शिक्षयामास तं मुनिम् ॥ ४९ ॥

यह सुन कर श्रीकृष्ण ने हँस कर जाम्बवती से कहा : 'हे भद्रे ! इन मुनिवर का यथायोग्य शिक्षा दो। वीणागान का योग सिखाओ।' तब अपने पति की बात को स्वीकार करके हँसते-हँसते उन मुनि को यथायोग्य शिक्षा देनी प्रारम्भ की।

ततः संवत्सरे पूर्णे नारदं प्राह केशवः ।
सत्याः समीपमागच्छ शिक्षस्व तथा पुनः ॥ ५० ॥

तब संवत्सर पूरा हो जाने पर केशव ने नारद से कहा : 'अब सत्या के समीप जाकर शिक्षा ग्रहण करो।'

तथेत्युक्त्वा सत्यभामां प्रणिपत्य ययौ मुनिः ।
तया स शिक्षितो विद्वान्पूर्णे संवत्सरे ततः ॥ ५१ ॥

'बहुत अच्छा' यह कह कर मुनि सत्यभामा को प्रणाम करने गये। उन्होंने भी पूरे एक संवत्सर तक नारद को शिक्षा दी।

वासुदेवनियुक्तोऽसौ रुक्मिण्याः सदनं गतः ।
अङ्गनाभिस्तत्रत्याभिर्दासीभिर्मुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥

फिर श्रीकृष्ण की आज्ञा से नारदजी रुक्मिणी के भवन में गये। वहाँ बहुत सी श्रेष्ठ दासियाँ विद्यमान थीं।

उक्तोऽसौ गायमानोऽपि न स्वरं वेत्सि वै मुने ।
ततः श्रमेण महता यावत्संवत्सरद्वयम् ॥ ५३ ॥
शिक्षितोऽसौ तदा देव्या रुक्मिण्याधिजगौ मुनिः ।
न तु स्वराङ्गनाः प्राप तन्त्रीयोगे महामुनिः ॥ ५४ ॥

जब वह गाना सिखाती थीं तब उन मुनि को उनके स्वर का ज्ञान भी नहीं होता था। तब वह बहुत परिश्रमपूर्वक दो संवत्सरों तक सिखाती रहीं। रुक्मिणी के इस प्रकार सिखाने पर मुनि गाने लगे। परन्तु वे स्वराङ्गनाओं के तन्त्रीयोग को प्राप्त नहीं कर सके।

आहूय कृष्णो भगवान्स्वयमेव महामुनिम् ।
अशिक्षदमेयात्मा गानयोगमनुत्तमम् ॥ ५५ ॥

तब श्रीकृष्ण भगवान स्वयं ही महामुनि को बुलाकर वह असीम गानयोग सिखाने लगे ।

कृष्णदत्तेन गानेन तस्यायाताः स्वराङ्गनाः ।
ब्रह्मानन्दः समभवन्नारदस्य च चेतसि ॥ ५६ ॥

तब श्रीकृष्ण द्वारा गान सिखाने पर स्वरांगनायें आकर प्राप्त हुईं और नारदजी के चित्त में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हुई ।

ततो द्वेषादयो दोषाः सर्वे अस्तं गता द्विज ।
ईर्ष्या च तुम्बुरौ यासीन्नारदस्य च सा गता ॥ ५७ ॥

तब नारदजी के द्वेष आदि सब दोष अस्त हो गये और तुम्बुरु के प्रति जो ईर्ष्या थी वह भी समाप्त हो गई ।

ततो ननर्त देवर्षिः प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
उवाच च हृषीकेशः सर्वज्ञस्त्वं महामुने ॥ ५८ ॥

तब जनार्दन को प्रणाम करके देवर्षि नृत्य करने लगे और हृषीकेश ने कहा : 'हे महामुनि ! अब तुम सर्वज्ञ हो गये ।

प्राचीनगानयोगेन गायस्व मम सन्निधौ ।
एतत्ते प्रार्थितं प्राप्तं मम लोके तथैव च ॥ ५९ ॥
नित्यं तुम्बुरुणा सार्द्धं गायस्व च यथातथम् ।
एवमुक्तो मुनिस्तत्र यथायोगं चचार सः ॥ ६० ॥

मेरे सान्निध्य में प्राचीन गानयोग से गाओ । यह मैंने आपसे अपने लोक की प्राप्ति (का उपाय) कहा है । आप तुम्बुरु के साथ नित्य यथा-योग्य गान करिये । इस प्रकार कहने पर मुनि वहाँ योगयुक्त हो विचरण करने लगे ।

तथा सम्पूजयत्कृष्णं रुद्रं भुवननायकम् ।
तदा जगौ हरेस्तत्र नियोगाच्छंकरालये ॥ ६१ ॥
रुक्मिण्या सत्यया सार्द्धं जाम्बवत्या महामुनिः ।

कृष्णेन च द्विजश्रेष्ठ श्रुतिजातिविशारदः ॥ ६२ ॥

और रुद्र, भुवननायक श्रीकृष्ण का पूजन किया। हे द्विजश्रेष्ठ! तब हरि की आज्ञा से रुक्मिणी, सत्या, जाम्बवती और गानस्वर विशारद महामुनि (नारद) श्रीकृष्ण के साथ शंकर के स्थान में (गान के लिये) गये।

एवं ते मुनिशार्दूल प्रोक्तो गीतक्रमो मया।

ब्राह्मणो वासुदेवाख्यं गायमानोऽनिशं द्विज ॥ ६३ ॥

हरेः सायुज्यमाप्नोति सर्वयज्ञफलं लभेत्।

अन्यथा नरकं गच्छेद्गायमानोऽन्यदेव हि ॥ ६४ ॥

हे मुनिशार्दूल! यह आपसे मैंने गीतक्रम का वर्णन किया। हे द्विज! जो ब्राह्मण वासुदेव नाम का रातदिन गान करता है वह हरि का सायुज्य प्राप्त कर सर्वयज्ञों के फल का लाभ करता है। अन्यथा किसी अन्य का गान करने से नरक में जाता है।

कर्मणा मनसा वाचा वासुदेवपरायणः।

गायञ्छृण्वंस्तमाप्नोति तस्माच्छ्रेष्ठः प्रियंवदः ॥ ६५ ॥

मन, कर्म वचन से वासुदेवपरायण हो जो गायन और श्रवण करता है उसे उनके पद की प्राप्ति होती है, इस कारण वह प्रियंवद और श्रेष्ठ है।

कथितमिदमपूर्वं जानकीजन्मपूर्वं

श्रुति-सुखमतिगुह्यं स्नेहतस्तेऽतिवाह्यम्।

कलुष कुलविपक्षं भव्यदानैकदक्षं

नृभिर विरतवन्द्यं सर्वदेवाभिनन्द्यम् ॥ ६६ ॥

आपसे यह अपूर्व जानकी जन्म का कारण कहा जो कर्णसुखद और अतिगुह्य है। इसे आपके स्नेह से वर्णन किया है। यह पाप का नाश करने वाला, कल्याण प्रदान करने में एकमात्र दक्ष, वैरागियों को सुखदायक और सब देवताओं को आनन्द देने वाला है।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे

नारदगानप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

सीताजी का जन्मवर्णन

यथा सा शोणितोद्भूता राक्षसीगर्भ सम्भवा ।
यथा भूमितलोत्पन्ना जानकी च यथा हि सा ॥ १ ॥

जिस प्रकार लक्ष्मी रुधिर से राक्षसी के गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर फिर भूमि तल से उत्पन्न हुई वह कथा सुनो ।

सीता तच्छृणु विप्रेन्द्र वर्णयामि तवानघ ।
दशास्यो रावणो नाम तपस्तप्तुं मनो दधे ॥ २ ॥
त्रैलोक्यस्याधिपत्याय अजरामरणाय च ।
बहुवर्षं तपस्तप्त्वा ज्वलनार्कसमोऽज्वलत् ॥ ३ ॥

हे विप्रेन्द्र ! वह कथा मैं आपसे वर्णन करता हूँ : जिस समय दशमुख रावण ने तपस्या करने का मन में निश्चय किया जिससे वह त्रिलोकी का अधिपति और अजर-अमर हो जाय, तब वह बहुत वर्षों तक तपस्या करके अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठा ।

तत्तेजसा जगत्सर्वं दह्यमानं यदाभवत् ।
तमुवाच तदा ब्रह्मा समागत्य सुरैर्वृतः ॥ ४ ॥

जब उसके तेज से सम्पूर्ण जगत् दग्ध होने लगा तब देवताओं के साथ आकर ब्रह्माजी उससे कहने लगे :

पौलस्त्य विरमाद्य त्वं तपसो मम वाक्यतः ।
तपसोग्रेण महता लोका भस्मीकृता इव ॥ ५ ॥
वरं ददामि ते वत्स यत्ते मनसि वर्तते ।
तपोधन लभस्वाद्य वरदान्मत्त ईप्सितम् ॥ ६ ॥

हे पौलस्त्य (रावण) ! मेरे कहने से अब तुम तप से विरत होओ । तुम्हारी उग्र तपस्या से सम्पूर्ण लोक भस्म हुये समान हैं । हे वत्स ! तुम्हारे मन में जो इच्छा है वह वर तुम्हें दूँगा । हे तपोधन ! तुम मुझसे इच्छित वर का लाभ करोगे ।

न्यवारयत चक्षूंषि सूर्यबिम्बावलोकनात् ।
प्रणिप्रत्यजगन्नाथं वरं वव्रे च रावणः ॥ ७ ॥

अब तुम सूर्यविम्ब के अवलोकन से अपने नेत्रों को रोको। तब जगन्नाथ (ब्रह्मा) को प्रणाम करके रावण वर माँगने लगा।

देहि सर्वामरत्वं मे वरदोऽसि यदि प्रभुः ।
तदाकर्ण्य वचो ब्रह्मा पुनः प्राह स रावणम् ॥ ८ ॥

'हे प्रभु ! यदि वर देते हैं तो मुझे सर्व अमरत्व दीजिये।' इसे सुनकर ब्रह्माजी रावण से पुनः बोले :

नहि सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे ।
ततः स रावणः प्राह कूट वादी हि राक्षसः ॥ ९ ॥

'कोई भी सर्वथा अमर नहीं हो सकता, तुम दूसरा वर माँगो।' तब वह कूटवादी राक्षस रावण बोला :

न सुरा नासुरा यक्षाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
विद्याधराः किन्नरा वा तथैवाप्सरसां गणाः ॥ १० ॥
न हन्युर्मां कथं चित्तो देहि मे वरमुत्तमम् ।
अन्यच्च ते वृणे ब्रह्मंस्तच्छृणुष्व पितामह ॥ ११ ॥
आत्मनो दुहिता मोहादत्यर्थं प्रार्थिता भवेत् ।
तदा मृत्युर्मम भवेद्यदि कन्या न कांक्षति ॥ १२ ॥

'सुर, असुर, यक्ष, पिशाच, उरग, राक्षस, विद्याधर, किन्नर, अथवा अप्सराओं के गण मुझे किसी भी प्रकार मार न सकें, यही उत्तम वर मुझे दीजिये। हे पितामह ब्रह्मा ! जो अन्य वर भी माँगता हूँ उसे सुनें। जब मैं मोहवश अपनी ही कन्या से प्रार्थना करूँ और वह कन्या न चाहे तब मेरी मृत्यु हो।'

तथेत्युक्त्वा जगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
नरान्नाजीगणद्रक्षो मत्वा तान्स्तृणवद्द्विज ॥ १३ ॥

'बहुत अच्छा' कह कर लोकपितामह ब्रह्माजी चले गये। हे द्विज !

मनुष्यों को तृण के समान मानकर (उसने) मनुष्यों से अवध्यत्व नहीं माँगा।

ब्रह्मदत्तवरो राजा रावणोवरदर्पितः।

त्रैलोक्यजयसर्वस्वं प्राप्तवान्बाहुवीर्यतः॥ १४॥

ब्रह्माजी के वरदान से मत्त हुये राजा रावण ने अत्यन्त पराक्रम से सम्पूर्ण त्रिलोकी पर विजय प्राप्त कर लिया।

एकदा रावणो राजा दण्डकारण्यमागतः।

तदर्षीनग्निकल्पांश्च दृष्ट्वा मनस्यचिन्तयत्॥ १५॥

एतान जित्वा हि कथं त्रिलोकीजयभागहम्।

एषां वधेन च श्रेयो न पश्यामि महात्मनाम्॥ १६॥

एक समय राजा रावण दण्डकारण्य में आया। वहाँ के अग्नि के समान कान्तिमान ऋषियों को देखकर वह मन में चिन्तन करने लगा: इन लोगों को जीते बिना मैं कैसे त्रिलोकी का जीतने वाला हो सकता हूँ; और इन महात्माओं को मारने में भी मैं किसी प्रकार का श्रेय नहीं देखता।

दुरात्मा स विचिन्त्यैतत्प्राह तान्मुनिपुङ्गवान्।

अहं सर्वस्य जगतः शास्ताः च जयभागहम्॥ १७॥

भवतां जयमाकांक्षे जयं दत्त द्विजर्षभाः।

इत्युक्त्वा स शराग्रेण क्षताच्छोणितमङ्गतः॥ १८॥

बलादाकृष्य तेषां वै कलशेऽस्थापयत्प्रभुः।

यह विचार करके उस दुरात्मा ने उन श्रेष्ठ मुनियों से कहा: 'मैं सम्पूर्ण जगत् का जयभागी और शासन करने वाला हूँ। हे द्विजश्रेष्ठ! आप को जय करने की इच्छा को आकांक्षा है, मुझे जय दो।' यह कहकर उसने बाण के अग्रभाग को चुभा कर उनके शरीर से बलपूर्वक रक्त निकाल कर एक कलश में रक्खा।

तत्र गृत्समदो नाम शतपुत्रपिता द्विजः॥ १९॥

दुहित्रर्थे भार्यया स प्रार्थितो भगवान् मुनिः।

लक्ष्मीर्मे दुहिता भूयादित्यसौ कलशे विभुः॥ २०॥

दुग्धं चाहरहस्तत्र कुशाग्रेण समन्त्रतः ।

स्थापयत्येष नियतस्तदहर्निर्ययौ वनम् ॥ २१ ॥

उनमें एक गृत्समद नामक ब्राह्मण सौ पुत्रों का पिता था । उस मुनि ने भार्या सहित भगवान से एक कन्या की प्रार्थना की थी कि लक्ष्मी मेरी पुत्री हो जांय । इस प्रकार एक कलश में कुश के अग्र भाग से अभिमन्त्रित करके दूध रख कर वह वन को चला गया था ।

तद्दिने दैवयोगेन कलशे तत्र रावणः ।

मुनीनां शोणितं स्थाप्य गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥ २२ ॥

दैवयोग से रावण उस दिन उसी कलश में मुनियों का रक्त भर कर उसे अपने घर ले गया ।

भार्यां मन्दोदरीं प्राह कलशं रक्ष सुन्दरि ।

विषादप्यधिकं विद्धि शोणितं कलशे स्थितम् ॥ २३ ॥

न देयं नापि वा भक्ष्यं मुनीनां शोणितं त्विदम् ।

उसने अपनी भार्या मन्दोदरी से कहा : 'हे सुन्दरी ! इस कलश की रक्षा करो । इस कलश में जो रक्त स्थित है उसको विष से भी तीक्ष्ण जानो । मुनियों के इस रक्त को न किसी को देना चाहिये न भक्षण करना चाहिये ।'

त्रैलोक्यजयलाभेन रावणो लोकरावणः ॥ २४ ॥

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वाणां च कन्यकाः ।

आहृत्य रमयामास मन्दरे सह्यपर्वते ॥ २५ ॥

हिमवन्मेरुविन्ध्याद्रौ रमणीयवने तथा ।

लोकों को रुलाने वाला रावण त्रिलोकी के जयलाभ से देव, दानव, यक्ष और गन्धर्वों की कन्या लाकर मन्दर और सह्य पर्वत पर तथा हिमवत्, मेरु और विन्ध्य पर्वतों के रमणीय वनों में रमण करने लगा ।

मन्दोदरी तथा दृष्ट्वा पतिं सा हि मनस्विनी ॥ २६ ॥

आत्मानं गर्हयामास भर्तुः स्नेहमपश्यती ।

धिग्जीवितं हि नारीणां यौवनं कुलमेव च ॥ २७ ॥

वञ्चिताः पतिना याः स्युस्तस्मान्मे मरणं वरम् ।

मनस्विनी मन्दोदरी ने अपने पति को उस प्रकार देखा। अन्य के प्रति अपने पति के स्नेह को देख कर वह अपनी निन्दा करने लगी कि 'स्त्रियों के जीवन और कुल को धिक्कार है। पति से वंचित होकर मेरा मरना ही अधिक अच्छा है।'

पुरा रावणसन्दिष्टं शोणितं क्ष्वेडतोऽधिकम् ॥ २८ ॥

पपौ मरणमांकांक्ष्य पतिना वञ्चिता सती ।

लक्ष्मीशरणदुग्धेन मिश्रिताच्छोणितादभूत् ॥ २९ ॥

पहले रावण ने कहा था कि यह रुधिर विष से भी अधिक तीक्ष्ण है। पति से वञ्चिता उस सती ने मरने की इच्छा से उसको पी लिया। वह लक्ष्मी के आश्रय वाले अद्भुत दूध से मिला हुआ रुधिर था।

सद्यो रावणकान्ताया गर्भो ज्वलनसन्निभः ।

ततो विस्मयमापन्ना सा हि मन्दोदरी शुभाः ॥ ३० ॥

उसके पान करते ही उस रावणपत्नी को अग्नि के समान प्रकाशमान गर्भ स्थित हो गया। यह देख कर मन्दोदरी विस्मित हुई।

पीतं विषाधिकं रक्तंगर्भस्तेनाभवन्मम ।

इति सञ्चिन्तयामास भर्ता विप्रेषितो मम ॥ ३१ ॥

कामिनीभिः क्रीडतं स कामी भर्ता हि रावणः ।

सम्वत्सरमिमं भर्त्रा सह मे वसतिर्नहि ॥ ३२ ॥

'विष से भी अधिक तीक्ष्ण रक्तपान करने से मुझे गर्भ कैसे स्थित हो गया। मेरे पति भी इस समय मेरे निकट नहीं हैं' इस प्रकार वह अत्यन्त चिन्तित हुई। 'मेरे पति तो कामिनियों के साथ क्रीडा करते हैं। एक वर्ष से पति के साथ मेरा समागम नहीं हुआ।

किं वक्तव्यं मया साध्व्या गर्भिण्या भर्तृ संसदि ।

चिन्तया दग्धगात्रीव तीर्थसेवनछद्मना ॥ ३३ ॥

विमानवरमारुह्य कुरुक्षेत्रं जगाम सा ।

तत्र गर्भं विनिष्कृष्य निचखान भुवस्तले ॥ ३४ ॥

पति के सामने साध्वी गर्भवती क्या कहूँगी।' इस प्रकार चिन्ता कर तीर्थसेवा के बहाने से वह विमान पर चढ़ कर कुरुक्षेत्र गई। वहाँ गर्भपात कर उसे पृथिवीतल में गाड़ दिया।

स्नात्वा सरस्वतीतोये पुनरायात्स्वमालयम् ।

न चोदितं तत्कस्मैजिद्गहः कार्यं सुगोपितम् ॥ ३५ ॥

सरस्वती जल में स्नान कर पुनः अपने घर चली आई। इस सुगोपित कार्य को उसने किसी से भी नहीं कहा।

कालेन कियता ब्रह्मञ्जनकर्षिर्महामनाः ।

कुरुक्षेत्रं समासाद्य जांगले यज्ञमावहन् ॥ ३६ ॥

हे ब्रह्मन ! कुछ समय के बाद महामना जनकजी ने कुरुक्षेत्र में आकर कुरुजाङ्गल में यज्ञ किया।

स्वर्णलाङ्गलमादाय यज्ञभूमिं चखान सः ।

स्वर्णलाङ्गलसीतान्तः कन्यैका प्रोत्थिताभवत् ॥ ३७ ॥

पुष्पवृष्टिश्च महती पपात कन्यकोपरि ।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं राजा विस्मयमागतः ॥ ३८ ॥

उन्होंने स्वर्ण का हल लेकर यज्ञभूमि खोदा। उस सोने के हल के फाल से खोदी भूमि से एक कन्या प्रकट हुई। उस कन्या के ऊपर अत्यधिक पुष्पवर्षा हुई। इस महान आश्चर्य को देख कर राजा को बड़ा विस्मय हुआ।

कर्तव्ये मूढतामाप ततः खेऽभूत्सरस्वती ।

राजन्गृहाण कन्यां त्वं पालयैनां महाप्रभाम् ॥ ३९ ॥

ज्वलनार्कसमां दिव्यां महत्कार्यं तवालये ।

भविष्यति महाभागा च क्षेमं जगतोऽनया ॥ ४० ॥

वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। तब आकाशवाणी हुई कि 'हे राजन् ! इस महाद्युतिमान कन्या को ग्रहण कर तुम इसका पालन करो। अग्नि के समान कान्तिमान इस दिव्या का तुम्हारे घर में महान कार्य होगा। हे महाभाग ! इसके द्वारा जगत का कल्याण होगा।

यज्ञ सम्पाद्यतां राजन्नायं विघ्नस्तवानघ ।
नामास्याः किल सीतेति सीताया उत्थिता यतः ॥ ४१ ॥
कल्पयैनां दुहितरमित्युक्त्वावाक् तिरोहिता ।

हे राजन ! अपने यज्ञ का सम्पादन करो, यह विघ्न नहीं होगा। सीता से उठने के कारण इसका नाम सीता होगा। इसे अपनी पुत्री मानो।' यह कह कर वाणी विलीन हो गई।

तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान्राजा यज्ञं कृत्वा महाधनम् ॥ ४२ ॥
जगाम सीतामादाय महर्षिभ्यश्च तां ददौ ।

यह सुन कर प्रसन्न होकर राजा ने महाधनयुक्त यज्ञ का सम्पादन किया और सीता को लाकर महर्षियों को दिया।

एतत्ते कथितं विप्र सीताजन्मैककारणम् ।
श्रुत्वैतत्सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥ ४३ ॥
जनकदुहितृजन्म श्रावयित्वा तु श्रुत्वा
न पुनरिह जन्म प्राप्नुयात्पुण्यवांश्च ।
दशरथसुतकान्ता तस्य गेहं कदाचिद्विसृजति
नहि सर्वैः पातकैर्मुच्यते च ॥ ४४ ॥

हे विप्र ! यह आपसे सीता के जन्म का कारण कहा। इसको सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। जनकपुत्री के जन्म की कथा सुनने से इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता और प्राणी पुण्यवान् होता है। दशरथपुत्र की भार्या (लक्ष्मी) उसके घर से कभी नहीं जाती और वह सब पातकों से छूट जाता है॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
श्रीसीतोत्पत्तिर्नामऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

श्रीराम का परशुराम को दिव्यरूप दिखाना★

रामः सीतापरिणयं कृत्वा दशरथादिभिः ।
भ्रातृभिश्चापि सहितो भार्यया सह सीतया ॥ १ ॥
अयोध्यां गन्तुमारेभे नानावाद्यपुरःसरम् ।

दशरथजी आदि के सामने सीता से विवाह करने के बाद श्रीराम अपने भ्राताओं सहित और भार्या सीता के साथ नाना प्रकार के वाद्यों को आगे कर अयोध्या जाने की तैयारी करने लगे ।

आर्चीकनन्दनो रामो भार्गवो रेणुकासुतः ॥ २ ॥
तस्य दशरथेः श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
विवाहकौतुकं वीरः पथा तेन समागतम् ॥ ३ ॥

अनायास ही महान् कर्म करने वाले दशरथकुमार श्रीराम के विवाह कौतुक को सुनकर भृगु तथा ऋचीक के वंशज रेणुकासुत परशुराम उन्हें देखने के लिये उत्सुक हो मार्ग में उनसे मिले ।

धनुरादाय तद्दिव्यं क्षत्रियाणां निबर्हणम् ।
जिज्ञासमानो रामस्य वीर्यं दाशरथेस्तथा ॥ ४ ॥

वे क्षत्रियसंहारक दिव्य धनुष लेकर श्रीराम के बल-पराक्रम को जानने की इच्छा से आये ।

सतमभ्यागतं दृष्ट्वा उद्यतास्त्रमवस्थितम् ।
प्रहसन्निव विप्रेन्द्रं रामो वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥
स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ किं कार्यं करवाणि ते ।

शस्त्र उठाये उन्हें (परशुराम) आकर खड़ा देखकर हँसकर श्रीराम ने उन विप्रेन्द्र से कहा : हे मुनिश्रेष्ठ आपका स्वागत है, मैं आपका क्या कार्य करूँ ।

★ इस सर्ग के ३ से ३३ तक के श्लोक महाभारत (वनपर्व, अध्याय ९९) में श्लोक ४२–७० तक यथावत मिलते हैं ।—अनुवादक ।

प्रोवाच भार्गवो वाक्यं स्वागतेन किमस्ति मे ॥ ६ ॥
क्षत्रकालं हि राजेन्द्र धनुरेतन्ममास्ति हि ।
समारोपय यत्नेन यदि शक्तोसि राघव ॥ ७ ॥

तब भार्गव ने कहा : 'मुझे स्वागत से क्या प्रयोजन है। हे राजेन्द्र ! मेरे हाथ में क्षत्रियों का कालस्वरूप धनुष है। यदि तुममें शक्ति हो तो यत्नपूर्वक इसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाओ।'

इत्युक्तस्त्वाह भगवन्स्त्वं नाधिक्षेप्तुमर्हसि ।
नेहि नह्यधमो धर्मः क्षत्रियाणां द्विजातिषु ॥ ८ ॥
इक्ष्वाकूणां विशेषेण बाहुवीर्येण कत्थनम् ।

उनके ऐसा कहने पर श्रीराम ने कहा : 'भगवन् ! आपको इस प्रकार आक्षेप नहीं करना चाहिये। मैं भी समस्त द्विजातियों में क्षत्रियधर्म का पालन करने में अधम नहीं हूँ। विशेषतः इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय अपने बाहु-बल की प्रशंसा नहीं करते।'

तमेवं वादिनं तत्र रामो वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
अलं वागुपदेशेन धनुरायच्छ राघव ।

श्रीराम के ऐसा कहने पर परशुरामजी बोले : 'हे राघव ! वाणी से उपदेश मत दो। यह धनुष लो और इसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाओ।'

ततो जग्राह रोषेण क्षत्रियर्षभसूदनम् ॥ १० ॥
रामो दाशरथिर्दिव्यं हस्ताद्रामस्य कार्मुकम् ।
धनुरारोपयामास सलिलमिव राघवः ॥ ११ ॥

तब दशरथनन्दन श्रीराम ने रोषपूर्वक परशुराम का वह वीरक्षत्रियों का संहारक दिव्य धनुष उनके हाथ से ले लिया। उन्होंने लीलापूर्वक उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी।

ज्याशब्दमकरोत्तत्र स्मयमानः स वीर्यवान् ।
तस्य शब्देन भूतानि वित्रेसुरशनेरिव ॥ १२ ॥

पराक्रमी श्रीराम ने हँसते हुये धनुष की टंकार की। बिजली की गड़गड़ाहट के समान उस शब्द को सुनकर सब प्राणी घबरा उठे।

अथाब्रवीद्वचो रामं रामोदाशरथिस्तदा ।
इदमारोपितं ब्रह्मन्किमन्यत्करवाणि ते ॥ १३ ॥

तब राम दाशरथि ने परशुराम से कहा : 'ब्रह्मन्! यह धनुष तो मैंने चढ़ा दिया अब और आपका कौन-सा कार्य करूँ ?'

तस्य रामो ददौ दिव्यं जामदग्न्यो महाबलः ।
शरमाकर्णदेशान्तमयमाकृष्य तामिति ॥ १४ ॥

तब जमदग्निनन्दन ने महाबली श्रीराम को एक दिव्य बाण दिया और कहा : 'इसे धनुष पर रख कर अपने कान तक खींचिये।'

एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्रामः प्रदीप्त इव मन्युना ।
श्रूयये क्षम्यते चैव दर्पपूर्णोऽसि भार्गव ॥ १५ ॥
त्वया ह्यधिगतं तेजः क्षत्रियेभ्यो विशेषतः ।
पितामहप्रसादेन तेन मां क्षिपसि ध्रुवम् ॥ १६ ॥

इतना सुनते ही श्रीराम क्रोध से प्रदीप्त हो उठे और बोले : 'हे भार्गव! तुम बड़े घमण्डी हो। मैं तुम्हारी कठोर बातें सुनता हूं फिर भी क्षमा कर देता हूँ। तुमने अपने पितामह के प्रभाव से क्षत्रियों को जीतकर विशेष तेज प्राप्त किया है; निश्चय ही, इसी कारण मुझपर आक्षेप करते हो।

पश्य मां स्वेन रूपेण चक्षुस्ते वितराम्यहम् ।
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै रामो दिव्यां दृशं तदा ॥ १७ ॥

तुम मेरा दर्शन करो। मैं तुमको नेत्र प्रदान करता हूँ।' यह कह कर श्रीराम ने उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की।

ततो रामशरीरे वै रामोऽपश्यत्स भार्गवः ।
आदित्यान्सवसूनुद्रान्साध्यांश्च समरुद्गणान् ॥ १८ ॥
पितृन्हुताशनांश्चैव नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
गन्धर्वान्राक्षसान्यक्षान्नदीस्तीर्थानि यानिवै ॥ १९ ॥
ऋषीन्वै निखिलान्यांश्च ब्रह्मभूतान्सनातनान् ।
देवर्षींश्चैव कात्स्न्येन समुद्रान्पर्वतांस्तथा ॥ २० ॥

वेदांश्च सोपनिषदान्वषट्कारान्सहाध्वरैः ।
ऋचो यजूंषि सामानि धनुर्वेदांश्च सर्वशः ॥ २१ ॥
विद्युतो मेघवृन्दानि वर्षाणि च महाव्रत ।

तब भार्गव ने श्रीराम के शरीर में बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, साध्य देवता, उनचास मरुद्गण, पितृगण, अग्निदेव, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, नदियाँ, तीर्थ, सनातन ब्रह्मभूत वालखिल्य ऋषि, देवर्षि, सम्पूर्ण समुद्र, पर्वत, उपनिषदों सहित वेद, वषट्कार, यज्ञ, ऋक्, यजु, साम, सम्पूर्ण धनुर्वेद—इन सभी को चेतन रूप धारण किये हुये प्रत्यक्ष देखा। हे महाव्रत ! मेघों के समूह, वर्षा, और विद्युत का भी उनके भीतर दर्शन हो रहा था।

ततः स भगवान्विष्णुस्तं वै बाणं मुमोच ह ॥ २२ ॥
शुष्काशनिसमाकीर्णं महोल्काभिश्च सुव्रतः ।
पांसुवर्षेण महता मेघसंघैश्च केवलम् ॥ २३ ॥
भूमिकंपैः सनिर्घातैर्नादैश्च विपुलैरपि ।

तब उन भगवान विष्णु रूप श्रीराम ने उस बाण को छोड़ा। हे सुव्रत ! उस समय सारी पृथिवी बिना बादल की बिजली और बडी-बड़ी उल्काओं से व्याप्त-सी हो उठी। बड़े जोर की आँधी उठी और सब ओर धूल की वर्षा होने लगी। फिर मेघों की घटा घिर आई और मूसलाधार वर्षा होने लगी। बार-बार भूकम्प होने लगा। मेघ गर्जन तथा अन्य भयानक उत्पातसूचक शब्द गूँजने लगे।

भार्गवं विह्वलं कृत्वा तेजश्चाक्षिप्य केवलम् ॥ २४ ॥
अगच्छज्ज्वलितो रामं शरो बाहुप्रचोदितः ।

श्रीराम की भुजाओं से प्रेरित हुआ वह प्रज्वलित बाण परशुरामजी को व्याकुल करके केवल उनके तेज को छीन कर पुनः लौट आया।

स तु विह्वलतां गत्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम् ॥ २५ ॥
रामः प्रत्यागतप्राणः प्राणमद्विष्णुतेजसम् ।
विष्णुना सोऽभ्यनुज्ञातो महेन्द्रमगमत्पुनः ॥ २६ ॥
भीतश्च तत्र न्यवसद्विनीतश्च महातपाः ।

एक बार मूर्च्छित होकर परशुराम जब पुनः होश में आये तब मर कर जीवित हो उठे मनुष्य की भांति उन्होंने विष्णु तेज धारण करने वाले श्रीराम को नमस्कार किया। तत्पश्चात भगवान् विष्णु श्रीराम की आज्ञा लेकर वे पुनः महेन्द्र पर्वत पर चले गये और वहाँ भयभीत और लज्जित हो महान तपस्या में संलग्न होकर रहने लगे।

ततः सम्वत्सरेऽतीते हृतौजसमवस्थितम् ॥ २७ ॥
निर्मदं दुःखितं दृष्ट्वा पितरो राममब्रुवन ।

तदनन्तर एक वर्ष व्यतीत होने पर तेजोहीन और अभिमानशून्य होकर रहने वाले परशुराम को दुखी देखकर उनके पितरों ने कहा :

न वै सम्यगिदं पुत्र विष्णुमासाद्य वै कृतम् ॥ २८ ॥
स हि पूज्यश्च मान्यश्च त्रिषु लोकेषु सर्वदा ।

'तुमने भगवान विष्णु के पास जाकर जो व्यवहार किया है वह ठीक नहीं था। वे तीनों लोकों में सर्वदा पूजनीय और माननीय हैं।

गच्छ पुत्र नदीं पुण्यां वधूसरकृतालयाम् ॥ २९ ॥
तत्रोपस्पृश्य तीर्थेषु पुनर्वपुरवाप्स्यसि ।

अब तुम वधूसर नामक पुण्यमयी नदी के तट पर जाओ। वहाँ तीर्थों में स्नान करके पूर्ववत् अपना तेजोमय शरीर पुनः प्राप्त कर लोगे।

दीप्तोदं नाम तत्तीर्थं यत्र ते प्रपितामहः ॥ ३० ॥
भृगुर्देवयुगे राम तप्तवानुत्तमं तपः ।

वह दीप्तोदक नामक तीर्थ है, जहाँ देवयुग में तुम्हारे प्रपितामह भृगु ने उत्तम तपस्या की थी।'

तत्तथा कृतवान्रामो भार्गवो वचनात्पितुः ॥ ३१ ॥
प्राप्तवांश्च पुनस्तेजो भारद्वाज महामुने ।

पितरों के कहने से परशुराम ने वैसा ही किया। हे महामुनि! उस तीर्थ में स्नान कर उन्होंने अपना तेज पुनः प्राप्त कर लिया।

एतद्यः शृणुयाद्वत्स रामचरित्रमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।

हे वत्स ! जो कोई श्रीरामचन्द्र के इस उत्तम चरित्र को सुनता है वह सब पापों से छूट कर विष्णुलोक को जाता है ।

ततो रामो जानकीस्पृष्टपाणिः
सूतैर्भक्त्या मागधैः स्तूयमानः ।
पुष्पासारैरास्तृतो देवसंघैः
स उत्तरान्कोसलानाजगाम ॥ ३३ ॥

तब श्रीराम जानकी का हाथ स्पर्श कर सूत-मागधों, भक्तों से स्तूयमान होकर और देव समूह की पुष्प वर्षा से आच्छादित हो उत्तर कोसल देश में आये ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
जामदग्न्यविश्वरूपदर्शनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशम सर्ग

रामचन्द्र का महावीर को चतुर्भुज रूप दिखाना

अथ सीतालक्ष्मणाभ्यां सह केनापि हेतुना ।
जगाम विपिनं रामो दण्डकारण्यमाश्रितः ॥ १ ॥

फिर सीता ओर लक्ष्मण के साथ श्रीराम किसी कारण से वन गये और दण्डकारण्य में रहने लगे ।

तत्र गोदावरीतीरे पर्णशालां विधाय सः ।
उवाच कञ्चित्कालं वै मृगयामभिकारयन् ॥ २ ॥

वहाँ गोदावरी के तट पर पर्णशाला बनाकर मृगया करते हुये कुछ काल तक वहाँ रहे ।

रावणो राक्षसेन्द्रोऽथ कालपाशनियन्त्रितः ।
रामेण लक्ष्मणेनापि रहितां जानकीं ततः ॥ ३ ॥
कदाचिद्रावणो मोहाल्लङ्कायां तां न्यवासयत् ।

तदनन्तर कालपाश से नियन्त्रित राक्षसराज रावण राम लक्ष्मण से रहित जानकी का मोह से हरण करके उन्हें लंका ले गया।

तामदृष्ट्वा ततो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ ४ ॥

आटतुश्चाटवीं सर्वां सीतादर्शनलालसौ।

रामस्य रुदतस्तस्य वाष्पवारिसमुद्भवा ॥ ५ ॥

उन्हें न देखकर महाबली राम-लक्ष्मण सीता दर्शन की लालसा से वन में इधर-उधर फिरने लगे। रुदन करते हुये श्रीराम के नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली।

नदी वैतरणी चाभूच्चक्षुषोरश्रुवुद्भवा।

वितरत्युश्रु वै यस्मादतो वैतरणीस्मृता ॥ ६ ॥

उनके नेत्रों के उस जल से एक वैतरणी नदी बह गई। उनके अश्रु विपरीत होने से उसे वैतरणी कहा गया।

पितॄणां तरणं यस्मान्मातॄणां स्नानतर्पणात्।

तेनापि कारणेनासौ नदी वैतरणी स्मृता ॥ ७ ॥

जिसमें स्नान-तर्पण करने से मनुष्यों के पितृगण तरते और तृप्त हो जाते हैं इसी कारण उसे वैतरणी कहते हैं।

नेत्रयोर्दूषिकायाश्च ताभिः शैलास्ततोऽभवन्।

सुग्रीवेण वानरेण सख्यं कर्तु महामनाः ॥ ८ ॥

ऋष्यमूकमगाद्रामो लक्ष्मणेनानुजेन च।

उनके नेत्रों के मल से वहाँ पर्वत बन गये। फिर वानर सुग्रीव से मित्रता करने की इच्छा से अनुज लक्ष्मण सहित राम ऋष्यमूक गये।

पञ्चभिर्मन्त्रिभिः सार्द्धं सुग्रीवो नाम वानरः ॥ ९ ॥

यत्रास्ते वालिभयतः सोऽपश्यद्रामलक्ष्मणौ।

चापबाणधरौ वीरौ ग्रसन्ताविव चाम्बरम् ॥ १० ॥

वहाँ पाँच मन्त्रियों के साथ सुग्रीव नामक वानर बालि के भय से त्रस्त होकर रहता था। उसने धनुषबाण धारण किये हुये वीर राम-लक्ष्मण को देखा जो मानो आकाश को ग्रसित करते हुये प्रतीत होते थे।

तौ दृष्ट्वा सुमहत्त्रस्तो वालिपक्षावमन्यत ।
प्रास्थापयद्धनूमन्तं भिक्षुरूपेण वानरम् ॥ ११ ॥

उनको देखकर सुग्रीव उन्हें बालिपक्ष का जान महान त्रास को प्राप्त हुआ । तब उसने वानर हनुमान को भिक्षुरूप से उनके पास भेजा ।

आत्मानं दर्शयामास हनूमान्रामलक्ष्मणौ ।
को भवानिति चोक्तेऽथ चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥ १२ ॥
शङ्खचक्रगदापाणिं वनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवाससमच्युतम् ॥ १३ ॥

हनुमान ने राम-लक्ष्मण को अपना स्वरूप दिखाया । उन्होंने कहा आप कौन हैं । तब उन्होंने देखाः चतुर्बाहु, किरीटधारी, हाथ में शंख, चक्र, गदा लिये हुये, वनमाला से विभूषित, वक्षःस्थल में श्रीवत्स धारण किये हुये, पीतवस्त्रधारी, अच्युत,

लक्ष्मीसरस्वतीभ्यां च संश्रितोभयपार्श्वकम् ।
ब्रह्मपुत्रैः सनन्दाद्यैः स्तूयमानं समन्ततः ॥ १४ ॥
देवर्षिपितृगन्धर्वैः सिद्धविद्याधरोरगैः ।
सेव्यमानं महात्मानं पुण्डरीकविलोचनम् ॥ १५ ॥

दोनों पार्श्वों में लक्ष्मी-सरस्वती से सेवित, ब्रह्मा के पुत्र सनन्दादि से सब ओर से स्तूयमान, देवता, पितर, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, उरग, महात्माओं से सेवित, कमललोचन हैं ।

सहस्रसूर्यसङ्काशं शतचन्द्रशुभाननम् ।
फणासहस्रमतुलं धारयन्तं च लक्ष्मणम् ॥ १६ ॥
अनन्तं रामशिरसि आतपत्रं फणागणैः ।
दधानं सर्वलोकेशनागसंघैश्च संस्तुतम् ॥ १७ ॥

सहस्र सूर्य के समान प्रकाशमान, सौ चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले, अतुलनीय सहस्रफन धारण किये लक्ष्मण, जो अनन्त हैं, राम के सर पर अपने फनों का छत्र लगाये हुये हैं और सर्वलोकेश नागसमूहों से संस्तुत हैं ।

आत्मानं दर्शयामास रामचन्द्रो हनूमते ।
तद्रूपं हनुमन्वीक्ष्य किमेतदिति विस्मितः ॥ १८ ॥

इस प्रकार रामचन्द्र ने हनुमान को अपना स्वरूप दिखाया । उस रूप को देखकर हनुमान विस्मत हुये ' कि यह क्या है ' ।

क्षणं निमील्य नयने पुनः सोऽपश्यदद्भुतम् ।
स्तुत्वा नत्वा च बहुधा सोऽब्रवीद्राघवं वचः ॥ १९ ॥

क्षणमात्र को अपने नेत्र मलकर उन्होंने फिर उस अद्भुत रूप को देखकर और अनेक प्रकार स्तुति करके, नत हो राघव से कहा ।

अहं सुग्रीवसचिवो हनुमान्नाम वानरः ।
सुग्रीवेण प्रेषितोऽहंयुवां कौ ज्ञातुमागतः ॥ २० ॥
दृष्ट्वा युवां च द्विभुजौ चापबाणधरौ परम् ।
आगत्य चान्यथा दृष्टं वद मे को भवानिति ॥ २१ ॥

मैं सुग्रीव का सचिव हनुमान नाम वाला वानर हूँ । सुग्रीव ने यह जानने के लिये मुझे भेजा है कि आप कौन हैं । आपको धनुषबाण धारण किये देखकर उन्होंने आपके आने को कुछ अन्यथा देखा । अतः बताइये आप कौन हैं ?

इति पवनसुतं तं व्याकुलं व्याहरन्तं
किमिति कथमितीदं कम्पमानं प्लवंगम् ।
कृतकरपुटमौलिं संविधेयं ब्रुवन्तं
मधुरतर मुदारं रामचन्द्रोऽब्रवीत्तम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार पवनसुत के व्याकुल व्यवहार को देखकर, 'यह क्या है' इस प्रकार कहते हुये, श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़कर सर झुकाये वचन कहते हनुमान से उदारतापूर्वक बोले ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
चतुर्भुजरूपदर्शनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादश सर्ग

श्रीराम द्वारा सांख्य-योग वर्णन

रामःप्राह हनूमन्तमात्मानं पुरुषोत्तमः ।
वत्स वत्स हनूमन्स्त्वं भक्तोयत्पृष्टवानसि ॥ १ ॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मम ।
अवाच्यमेतद्विज्ञानमात्मगुह्यं सनातनम् ॥ २ ॥

पुरुषोत्तम श्रीराम हनुमान से अपना वर्णन करने लगे : 'हे वत्स हनुमान ! हमारे भक्त, तुम हमसे जो पूछते हो वह मैं कहता हूँ। तुम सावधान होकर सुनो। यह आत्मगुह्य सनातन ज्ञान किसी से कहना नहीं चाहिये।

यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः ।
इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्रह्मभूताद्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥
न संसारं प्रपश्यन्ति पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः ।
गुह्याद्गुह्यतमं साक्षाद्गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ ४ ॥

यत्न करने पर भी जिसको देवता और द्विजातीय भी नहीं जानते उस ज्ञान को प्राप्त कर द्विजोत्तम ब्रह्ममय हो जाते हैं। इसके द्वारा पूर्व ब्रह्मवादी भी संसार को नहीं देखते। यह गुह्य से गुह्यतम ज्ञान प्रयत्नपूर्वक साक्षात गोपनीय रखने योग्य है।

वंशे भक्तिमतो ह्यस्य भवन्ति ब्रह्मवादिनः ।
आत्मा यः केवलः स्वच्छः शान्तः सूक्ष्मः सनातनः ॥ ५ ॥
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ।
सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः ॥ ६ ॥

जो इसे जानता है उसके वं श भक्तिमान और ब्रह्मवादी होते हैं। आत्मा केवल स्वच्छ, शान्त, सूक्ष्म, सनातन है। वह सर्वान्तर, साक्षात् चिन्मात्र, तम से परे है। वही अन्तर्यामी, वही पुरुष, वही प्राण वही महेश्वर है।

स कालाग्निस्तदव्यक्तं सद्यो वेदयति श्रुतिः ।
कस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते ॥ ७ ॥
मायावी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः ।
न चाप्ययं संसरति न च संसारयेत्प्रभुः ॥ ८ ॥

वही कालाग्नि, वही अव्यक्त है, ऐसा वेदश्रुति कहती है। इसी से उत्पन्न होकर संसार इसीमें लय हो जाता है। यही मायावी माया से बद्ध होकर विविध शरीर धारण करता है। न यह चलता है और न कोई इसे चला सकता है।

नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः ।
न प्राणो न मनो व्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च ॥ ९ ॥
न रूपरसगन्धश्च नाहङ्कर्ता न वागपि ।
न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं प्लवङ्गम ॥ १० ॥

न यह पृथिवी है, न जल, न अग्नि, न पवन, न आकाश, न प्राण, न मन, न व्यक्त, न शब्द, और न स्पर्श हैं। न रूप, रस, गन्ध, न अहङ्कार, और न वाणी है। हे महावीर ! न पाणि-पाद, न पायु और न उपस्थ है।

न कर्ता न च भोक्ता च न प्रकृतिपूरुषौ ।
न माया नैव च प्राणश्चैतन्यं परमार्थतः ॥ ११ ॥
तथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धोनोपपद्यते ।
तद्वदेव न सम्बन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः ॥ १२ ॥

न कर्ता है और न भोक्ता है, न प्रकृति है न पुरुष है। न माया है और न प्राण है। यह केवल परमार्थ चैतन्यस्वरूप है। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार में कोई सम्बन्ध नहीं है उसी प्रकार प्रपञ्च से परमात्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है।

छायातरू यथा लोके परस्परविलक्षणौ ।
तद्वत्प्रपञ्चपुरुषो विभिन्नौ परमार्थतः ॥ १३ ॥

जिस प्रकार लोक में छाया और वृक्ष परस्पर विलक्षण है, उसी प्रकार प्रपञ्च और पुरुष परमार्थ से भिन्न हैं।

यद्यात्मा मलिनोऽस्वस्थो विकारी स्यात्स्वभावतः ।
नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि ॥ १४ ॥

जिस आत्मा की अवस्था मलिन है, जो स्वभाव से विकारी है, वह सौ जन्मों में भी मुक्त नहीं हो सकती ।

पश्यन्ति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः ।
विकारहीनं निर्दुःखमानन्दात्मानमव्ययम् ॥ १५ ॥
अहं कर्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः ।
साप्यहंकृतिसम्बन्धादात्मन्यारोप्यते जनैः ॥ १६ ॥

मुनिजन अपने आत्मा को परमार्थ से मुक्त, विकारहीन, दुःखरहित, आनन्दमय और अविनाशी देखते हैं । मैं कर्ता हूँ, सुखी-दुःखी, स्थूल-कृश हूँ-ऐसी बुद्धि प्राणी अहङ्कार के सम्बन्ध से आत्मा में आरोपित करते हैं ।

वदन्ति वेद विद्वान्सः साक्षिणं प्रकृतेः परम् ।
भोक्तारमक्षयं बुद्ध्वा सर्वत्र समवस्थितम् ॥ १७ ॥
तस्मादज्ञान मूलोयं संसारः सर्व देहि नाम् ।
अज्ञानादन्यथा ज्ञातं तच्च प्रकृतिसङ्गतम् ॥ १८ ॥

वेद के जानने वाले उसे साक्षी और प्रकृति से परे कहते हैं । उसे ही भोक्ता, अक्षय और सर्वत्र स्थित मानते हैं । इसका ज्ञान न होने से ही यह संसार सब देहधारियों का मूल प्रतीत होता है । इस अज्ञान से अन्यथा ज्ञान ही प्रकृति-संगत ज्ञान है ।

नित्योदितः स्वयंज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः ।
अहंकाराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते ॥ १९ ॥

वह सर्वान्तर्यामी पुरुष ही नित्य उदित, स्वयंज्योति, सर्वगामी पुरुष पर है । ऐसा जाने बिना यह पुरुष अहङ्कार के विवेक से अपने को कर्ता मानता है ।

पश्यन्ति ऋषयो व्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं बुद्ध्वा कारणं ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥

ऋषिगण उस सदात्मक सर्वगामी चैतन्य को यथार्थ देखते हैं । ब्रह्म-

वादी उस प्रधान प्रकृति कारणब्रह्म को जान कर मुक्त होते हैं।

तेनात्र सङ्गतो ह्यात्मा कूटस्थोऽपि निरञ्जनः ।
आत्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्यन्ति तत्त्वतः ॥ २१ ॥
अनात्मन्यात्मविज्ञानान्तस्माद्दुःखं तथेतरत् ।
रागद्वेषादयो दोषाः सर्वभ्रान्तिनिबन्धनाः ॥ २२ ॥

उससे संगति को प्राप्त हुआ कूटस्थ निरञ्जन पुरुष तत्व से अक्षर ब्रह्मरूप अपने आत्मा को नहीं जानता। अनात्मा में आत्मा को जानकर दुःखी होता है। राग-द्वेष आदि यह सब भ्रान्ति के निबन्धन हैं।

कार्ये ह्यस्य भवेद्देषा पुण्यापुण्यमिति श्रुतिः ।
तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः ॥ २३ ॥

इसी कार्य में यह पुण्य-अपुण्य देखा जाता है, ऐसी श्रुति है। इसीके वश से सभी देहधारियों के देह की उत्पत्ति होती है।

नित्यः सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ।
एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः ॥ २४ ॥

आत्मा नित्य और सर्वत्रगामी है। कूटस्थ दोष से वर्जित एक ही वह अपने माया-स्वभाव से अनेक प्रकार का दिखाई पड़ता है।

तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः ।
भेदोऽव्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया ॥ २५ ॥

इसी कारण मुनिजन उसे परमार्थतः अद्वैत कहते हैं। स्वभाव से जो अव्यक्त का भेद है वही माया है।

यथाहि धूमसम्पर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत् ।
अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्नलिप्यते ॥ २६ ॥

जिस प्रकार धूम के सम्पर्क से आकाश मलिन हो जाता है (किन्तु आकाश में दोष नहीं आता) उसी प्रकार अन्तःकरण के भावों में आत्मा लिप्त नहीं होता।

यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोपलः ।

उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते ॥ २७ ॥

जिस प्रकार स्फटिक मणि स्वयं अपनी प्रभा से शोभा को प्राप्त होती है उसी प्रकार उपाधिहीन होने से वह निर्मल आत्मा प्रकाशित होता है।

ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः।
अर्थस्वरूपमेवाज्ञाः पश्यन्त्यन्ये कुबुद्धयः ॥ २८ ॥

बुद्धिमान इस जगत को ज्ञानरूप कहते हैं और कुबुद्धि अज्ञानी इसको अर्थस्वरूप देखते हैं।

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः।
दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्भ्रान्तदृष्टिभिः ॥ २९ ॥

वह कूटस्थ, निर्गुण, व्यापी आत्मा स्वभावतः चैतन्य है किन्तु भ्रान्त दृष्टि वाले पुरुषों को वह अर्थस्वरूप दिखाई पड़ता है।

यथा संलक्ष्यते व्यक्तः केवलः स्फटिको जनैः।
रक्तिकाव्यवधानेन तद्वत्परम पूरुषः ॥ ३० ॥

जैसे मनुष्यों को केवल स्फटिक प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है किन्तु व्यवधान सहित होने से ही लालिमा आदि दिखाई पड़ती है, वैसे ही परमपुरुष शुद्ध है किन्तु देह में व्याप्त होने से उपाधिमान दिखाई पड़ता है।

तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽव्ययः।
उपासितव्यो मन्तव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः ॥ ३१ ॥

इसी कारण आत्मा अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वगत अविनाशी है, और वही उपासना करने योग्य, मानने योग्य और मुमुक्षुओं के सुनने योग्य है।

यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा।
योगिनोऽव्यवधानेन तदा सम्पद्यते स्वयम् ॥ ३२ ॥

जिस समय मन में सर्वगामी चैतन्य का प्रादुर्भाव होता है उस समय योगी व्यवधानरहित हो उसको प्राप्त होता है।

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभि पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते स्वयम् ॥ ३३ ॥

जो जब सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी आत्मा में देखता है और अपने को सम्पूर्ण प्राणियों में देखता है तब वह उस ब्रह्म को प्राप्त होता है।

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव न पश्यति ।
एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः ॥ ३४ ॥

जब सब भूतों को अपने में देखता है तब यह एक एकीभूत केवल ब्रह्म को प्राप्त होता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः ।
तदासावमृतीभूतः क्षेमं गच्छति पण्डितः ॥ ३५ ॥

जब हृदय की सब कामना छूट जाती है तब यह पण्डित अमृतीभूत होकर क्षेम को प्राप्त होता है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३६ ॥

जब भूतों के पृथग्भाव को एक स्थान में देखता है, उसी समय ब्रह्म विचार के विस्तार को प्राप्त होता है।

यदा पश्यति चात्मायं केवलं परमार्थतः ।
मायामात्रं जगत्कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतः ॥ ३७ ॥

जब अपने को परमार्थतः केवल एक देखता है और जगत को मायामात्र देखता है तब निवृत्ति हो जाती है।

यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेकभेषजम् ।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः ॥ ३८ ॥

जिस समय जन्म, जरा, दुःख, व्याधियों की एक ही औषधि केवल ब्रह्मज्ञान होता है तब यह शिव होता है।

यथा नदी नदा लोके सागरेणैकतां ययुः ।
तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत् ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार नदी-नद समुद्र में जाकर एकता को प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार यह निष्कल आत्मा अक्षर में मिल कर एकता को प्राप्त होता है।

तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः ।
अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति ॥ ४० ॥

इस प्रकार विज्ञान ही प्रपञ्च है अन्य स्थिति नहीं है। लोक अज्ञान से आवृत्त होकर विज्ञान से देखता है।

तज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम् ।
अज्ञानमिति तत्सर्वं विज्ञानमिति मे मतम् ॥ ४१ ॥
एतत्ते परमं सांख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम् ।
सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रैक चित्तता ॥ ४२ ॥

उसका ज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प, अविनाशी है, वह अज्ञान से ही सब होता है, वह विज्ञान है ऐसा मेरा निश्चय है। यह परम सांख्य उत्तम ज्ञान है। सब वेदान्त का सारयोग यही एक चित्तता है।

योगात्सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रजायते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित् ॥ ४३ ॥
यदेव योगिनो यान्ति सांख्यं तदभिगम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स तत्त्ववित् ॥ ४४ ॥

योग से ज्ञान होता है, ज्ञान से योग प्रवृत्त होता है। ज्ञानयोग से युक्त पुरुषों के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जिस मार्ग से योगी चलते हैं उसी मार्ग से सांख्य भी चलता है। सांख्य और योग में जो एकता देखता है वही तत्त्वविद् है।

अन्ये च योगिनो वत्स ऐश्वर्यासक्तचेतसः ।
मज्जन्ति तत्र तत्रैव सत्त्वात्मैक्यमिति श्रुतिः ॥ ४५ ॥
यत्तत्सर्वगतं दिव्यमैश्वर्यमचलं महत् ।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

हे वत्स ! ऐश्वर्य में आसक्त जो अन्य योगी हैं वे उन स्थानों में निमज्जित होते हैं। सत्त्वात्मा एक है यह श्रुति है। जो सर्वगत दिव्य अचल ऐश्वर्य है उसे ज्ञानयोग में युक्त प्राणी देहान्त में प्राप्त हो जाते हैं।

एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः ।

कीर्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः ॥ ४७ ॥

सर्वकामः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोमरः ।

सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः ॥ ४८ ॥

यह मैं अव्यक्त आतमा मायावी परमेश्वर हूं, सब वेदों में सर्वातमा सर्वतोमुख स्थित हो रहा हूँ। सर्वकामयुक्त, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर, सब ओर से पाणि-पादयुक्त मैं अन्तर्यामी सनातन हूं।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः ।

अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्णः शृणोम्यहम् ॥ ४९ ॥

वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन ।

प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः ॥ ५० ॥

अपाणि-पाद वाला, वेगवान, सब कुछ ग्रहण करने वाला हृदय में स्थित हूँ। बिना नेत्र देखता हूँ और बिना कान के सुनता हूँ। मैं इस सबको जानता हूँ और मुझे कोई नहीं जानता। तत्वदर्शी मुझको एक महान पुरुष कहते हैं।

निर्गुणामलरूपस्य यत्तदैश्वर्यमुत्तमम् ।

यन्न देवा विजानन्ति मोहिता मायया मम ॥ ५१ ॥

यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः ।

प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम् ॥ ५२ ॥

निर्गुण अमलरूप जो उत्तम ऐश्वर्य है, जिसको मेरी माया से मोहित हुये देवता भी नहीं जानते, जो मेरा गुह्यरूप सर्वगामी देह है उसमें तत्वदर्शी प्रवेश करके मेरे सायुज्य को प्राप्त होते हैं।

येषां हि न समापन्न माया वै विश्वरूपिणी ।

लभन्ते परमं शुद्धं निर्वाणं ते मया सह ॥ ५३ ॥

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।

प्रसादान्मम ते वत्स एतद्वेदानुशासनम् ॥ ५४ ॥

जो इस विश्वरूपिणी माया से लिप्त नहीं हैं वे मेरे साथ परम शुद्ध निर्वाण को प्राप्त होते हैं। सौ कोटि कल्प में भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं

होती। हे वत्स ! मेरी कृपा से ऐसा होता है—यही वेद का अनुशासन है।

नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्य हनुमन्कचित् ।
यदुक्तमेतद्विज्ञानं सांख्ययोगसमाश्रयम् ॥ ५५ ॥

मैंने जो यह सांख्य योग मिश्रित ज्ञान का तुमसे वर्णन किया है उसे हे हनुमत् ! अपुत्र, अशिष्य, अयोगी को नहीं देना चाहिये।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
सांख्ययोगो नामैकादश: सर्ग: ॥ ११ ॥

द्वादश सर्ग

उपनिषद् कथन

पुनः रामः प्रवचनमुवाच द्विजपुङ्गवः ।
अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः ॥ १ ॥
तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्मात्सर्वमिदं जगत् ।
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्र पुनः कहने लगे कि हे द्विजश्रेष्ठ ! अव्यक्त से काल हुआ; उससे पर प्रधान पुरुष हुआ। उसी से यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है। वह सब ओर से पाणिपाद, शिर, मुख वाला है।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥ ३ ॥
सर्वाधारं स्थिरानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम् ।
सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम् ॥ ४ ॥

वह सब ओर से कर्णवान और सब ओर से आवृत्त हुआ स्थित है। सब इन्द्रियगुणों का आभास रूप, सब इन्द्रियों से वर्जित; सर्वाधार, स्थिरानन्द, अव्यक्त, द्वैतवर्जित, सब उपमानों से रहित, प्रमाणातीत और अगोचर;

निर्विकल्पं निराभासं सर्वाभासं परामृतम् ।
अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥ ५ ॥
निर्गुणं परमं व्योम तज्ज्ञानं सूरयो विदुः ।
स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यन्तरात्परः ॥ ६ ॥

निर्विकल्प, निराभास, सर्वाभास, परामृत, अभिन्न, भिन्न संस्थान वाला, शाश्वत, ध्रुव, अविनाशी, निर्गुण, परम व्योम, जिसके ज्ञान को कवि कहते हैं, वही सब भूतों का आत्मा बाह्य-अभ्यन्तर से परे है।

सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ।
मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तरूपिणा ॥ ७ ॥

वह मैं सर्वत्रगामी, शान्त, ज्ञानात्मा, परमेश्वर हूँ। मुझ अव्यक्त रूपवाले ने ही इस जगत का विस्तार कर रक्खा है।

मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित् ।
प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम् ॥ ८ ॥

सब प्राणी मेरे स्थान में हैं—जो इसको जानता है वह वेद का जानने वाला कहा जाता है। प्रधान और पुरुष यही दो तत्त्व कहे जाते हैं।

तयोरनादिर्निर्दिष्टः कालः संयोजकः परः ।
त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्तं समवस्थितम् ॥ ९ ॥

इनका संयोग करने वाला अनादि निर्दिष्ट काल है। ये तीनों अनादि अनन्त अव्यक्त में स्थित हैं।

तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं विदुः ।
महदाद्यं विशेषान्तं सम्प्रसूतेऽखिलं जगत् ॥ १० ॥

तदात्मक अन्य दो स्यात वह मेरा रूप ही महत आदि से लेकर विशेष पर्यन्त सब जगत का निर्माण करता है।

या सा प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्व देहिनाम् ।
पुरुषः प्रकृतिस्थितोऽपिभुंक्ते यः प्राकृतान्गुणान ॥ ११ ॥
अहङ्कारो विविक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशकः ।
आद्यो विकारः प्रकृतिर्महानात्मेति कथ्यते ॥ १२ ॥

यह प्रकृति सब प्राणियों को मोहित करने वाली कही गई है और पुरुष प्रकृति में स्थित हुआ प्रकृति के गुणों को भोगता है। अहङ्कार से विविक्त होने से उसे पच्चीस तत्वों वाला कहा जाता है। आद्य विकार को प्रकृति और महान आत्मा कहा जाता है।

विज्ञानशक्तिर्विज्ञानादहङ्कारस्तदुत्थितः।
एक एव महानात्मा सोहङ्कारोऽभिधीयते॥ १३॥
स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्व चिन्तकैः।
तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु॥ १४॥

विज्ञान से विज्ञानशक्ति और उससे अहङ्कार उत्पन्न होता है। महानात्मा एक है, उसे ही अहङ्कार कहते हैं। जो जीव है वही आन्तरात्मा है ऐसा तत्वज्ञानी कहते हैं। उसको जानने से जन्मों का सुख-दुःख जाना जाता है।

स विज्ञानात्मकस्तस्य मनःस्यादुपकारकम्।
तेनाविवेकतस्तस्मात् संसारः पुरुषस्य तु॥ १५॥
स चाविवेकः प्रकृतौ सङ्गात्कालेन सोऽभवत्।
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः॥ १६॥

वही विज्ञानात्मक है, मन उसका उपकारी है। उसको अविवेक होने से संसार उत्पन्न हुआ है। वह अविवेक प्रकृति के संयोग से काल द्वारा प्रकट हुआ है। काल ही भूतों को प्रकट करता है, काल ही प्रजा का संहार करता है।

सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे।
सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः॥ १७॥
प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञः पुरुषः परः।
सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मनः प्राहुर्मनीषिणः॥ १८॥

सब काल के वश में है, काल किसी के वश में नहीं है। वह सनातन सब के अन्तर में स्थित हुआ सबका नियमन करता है। उसे ही भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ कहते हैं। विद्वान मन को सब इन्द्रियों से परे कहते हैं।

मनसश्चाप्यहङ्कारमहङ्कारान्महान् परः ।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥ १९ ॥

मन से परे अहङ्कार, अहङ्कार से परे महान्, उससे परे अव्यक्त और अव्यक्त से परे पुरुष है ।

पुरुषाद्भगवान्प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत् ।

प्राणात्परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः ॥ २० ॥

पुरुष से परे भगवान् प्राण और उसके वशीभूत यह सब जगत है । प्राण से परे व्योम और व्योम से परे ईश्वर है ।

सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ।

नास्ति मत्परमं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते ॥ २१ ॥

मैं वही सर्वत्रगामी शान्त ज्ञानात्मा परमेश्वर हूँ । मुझसे परे और कुछ नहीं है । मुझे ही जानकर प्राणी मुक्त हो जाता है ।

नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम् ।

ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम् ॥ २२ ॥

यह स्थावर जङ्गम भूतजगत नित्य नहीं है । केवल एक अव्यक्त व्योम-रूप महेश्वर मैं ही स्थित हूँ ।

सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत् ।

मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः ॥ २३ ॥

मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत् ।

नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम् ॥ २४ ॥

वह मैं ही सकल सृष्टि करके सदा जगत का संहार करता हूँ । मैं मायामय देव काल के संयोग से सब कुछ करता हूँ । मेरे ही सन्निधान में काल सकल जगत का सृजन करता है और अनन्तात्मा का इसमें नियोजन करता है--यही वेद का अनुशासन है ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
उपनिषत्कथनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदश सर्ग

श्रीराम द्वारा भक्तियोग कथन

वक्ष्ये समाहितमनाश्शृणुष्व पवनात्मज ।
येनेदं लभ्यते रूपं येनेदं सम्प्रवर्तते ॥ १ ॥
नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन च चेज्यया ।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥ २ ॥

हे पवनपुत्र ! जो मैं कहता हूँ उसे सावधान मन होकर सुनो । जिससे यह सब रूप प्राप्त होकर प्रवर्तित होता है वह मैं न तो अनेक प्रकार के तप से, न दान से, और न यज्ञ से पुरुषों के द्वारा जाना जाता हूँ । केवल जो मेरी भक्ति करते हैं वही मुझको प्राप्त होते हैं ।

अहं हि सर्वभावानामन्तस्तिष्ठामि सर्वगः ।
मां सर्वसाक्षिणं लोका न जानन्ति प्लवङ्गम ॥ ३ ॥

मैं सर्वगामी सब भावों के अन्त में स्थित रहता हूँ । हे वानर ! मुझ सर्वसाक्षी को लोक जानने में समर्थ नहीं होते ।

यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तर परः ।
सोऽहं धाता विधाता च लोकेऽस्मिन्विश्वतोमुखः ॥ ४ ॥

जिसके अन्तर में यह सब है और जो सर्वान्तर्यामी परे से परे है वह मैं धाता-विधाता इस लोक में स्थित हूँ ।

न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः ।
ब्राह्मणा मनवः शक्रा ये चान्ये प्रथितौजसः ॥ ५ ॥

सब देवता और मुनि मुझे देखने में समर्थ नहीं होते और न ये ब्राह्मण, मनु, इन्द्र अथवा अन्य देवता हो ।

गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम् ।
जयन्ति विविधैरग्निं ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः ॥ ६ ॥

सब वेद मुझ एक परमेश्वर का ही निरन्तर यजन करते हैं और कहते हैं कि ब्राह्मण अनेक यज्ञों से मेरा यजन करते हैं ।

सर्वे लोका नमस्यन्ति ब्रह्मलोके पितामहम् ।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम् ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण लोक ब्रह्मलोक में पितामह को नमस्कार करते हैं। योगी, भूताधिपति ईश्वर का नित्य ध्यान करते हैं।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता चैव फलप्रदः ।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्व संस्तुतः ॥ ८ ॥

मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता और फल का देनेवाला हूँ, सर्वदेव का शरीर होकर सर्वात्मा सबसे स्तुति को प्राप्त होता हूँ।

मां पश्यन्तीह विद्वान्सो धार्मिका वेदवादिनः ।
तेषां सन्निहितो नित्यं ये भक्ता मामुपासते ॥ ९ ॥

धर्मात्मा वेदवादी विद्वान मुझको देखते हैं। जो भक्त मेरी उपासना करते हैं मैं सदा उनके निकट निवास करता हूं।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते ।
तेषां ददामि तत्स्थानमानन्दं परमं पदम् ॥ १० ॥

जो धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मेरी उपासना करते हैं उनको मैं आनन्दमय परम पद का स्थान देता हूँ।

अन्येऽपि ये विकर्मस्थाः शूद्राद्या नीच जातयः ।
भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते कालेन मयि सङ्गताः ॥ ११ ॥

और भी जो शूद्रादि निम्नजातियाँ विकर्म में स्थित हैं वे भक्तिसम्मत होने पर मेरे निकट प्राप्त होकर मुक्त हो जाती हैं।

न मद्भक्ता विनश्यन्ते मद्भक्ता वीतकल्मषाः ।
आदावेतत्प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ १२ ॥

मेरे भक्त पापरहित हो जाते हैं, उनका नाश नहीं होता। पहले से ही मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्त नाश को नहीं प्राप्त होते।

यो वा निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति ।
यो हि तं पूजयेद्भक्त्या स पूजयति मां सदा ॥ १३ ॥

जो मूढ़ मेरे भक्त की निन्दा करता है वह देव-देव की निन्दा करता है तथा जो भक्ति से उनका पूजन करता है वह मेरा पूजन करता है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात् ।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः ॥ १४ ॥

जो मेरी आराधना के लिये पत्र, पुष्प, फल, जल प्रदान करता है वह मेरा भक्त और मेरा प्रिय है।

निधाय दत्तवान्वेदानशेषानास्य निःसृतान् ॥ १५ ॥

मैं सृष्टि के आदि में परमेष्ठी ब्रह्मा का निर्माण करके उन्हें सम्पूर्ण वेदों को, जो मेरे मुख से निःसृत हैं, प्रदान करता हूँ।

अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः ।
धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेद विद्विषाम् ॥ १६ ॥

मैं ही सम्पूर्ण योगियों का अविनाशी गुरु हूँ, धर्मात्माओं का रक्षक और वेदविद्वेषियों का हन्ता हूँ।

अहं वै सर्व संसारान्मोचको योगिनामिह ।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः ॥ १७ ॥

मैं ही योगियों के साथ सब संसार का मोचक हूँ। मैं ही सर्वसंसार वर्जित सर्वसंसार का हेतु हूं।

अहमेव हि संहर्ता स्रष्टाहं परिपालकः ।
मायावी मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी ॥ १८ ॥

मैं ही संहारक, स्रष्टा और परिपालक हूँ। मेरी मायावी शक्ति सब लोकों को मोहित करती है।

ममैव च पराशक्ति या सा विद्येति गीयते ।
नाशयामि तया मायां योगिनां हृदि संस्थितः ॥ १९ ॥

उस मेरी ही पराशक्ति का विद्या के नाम से गायन किया जाता है। योगियों के हृदय में स्थित हो मैं उस माया का नाश करता हूँ।

अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः ।
आधारभूतः सर्वेषां निधानममृतस्य च ॥ २० ॥

मैं ही सब शक्तियों का प्रवर्तक हूँ, सबका आधारभूत हो अमृत का निधान हूँ।

एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत् ।
भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मयः ॥ २१ ॥

एक ही सर्वान्तरा शक्ति जगत को विविध करती है। वह नारायण, अनन्त जगन्नाथ और जगन्मय है।

तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलं जगत् ।
तामसी मे समाख्याता कालात्मा रुद्ररूपिणी ॥ २२ ॥

तृतीय महान् शक्ति सकल जगत का संहार करती है--उसे तामसी, कालात्मा रुद्ररूपिणी कहते हैं।

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे ।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे ।
सर्वेषामेव भक्तानामेष प्रियतरो मम ॥ २३ ॥

कोई मुझे ध्यान से देखते हैं और कोई ज्ञान से देखते हैं। कोई भक्ति-योग से और कोई कर्मयोग से मुझको देखते हैं। इन सब में से भक्त मुझे सबसे प्रिय हैं।

यो विज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ।
अन्येच ये त्रयो भक्ता मदाराधनकांक्षिणः ॥ २४ ॥
तेऽपि मां प्राप्नुवन्त्येव नावर्तंते च वै पुनः ।
मया ततमिदं कृत्स्नेमेतद्यो वेद सोऽमृतः ॥ २५ ॥

जो ज्ञान से मेरी नित्य आराधना करते हैं, अन्यथा नहीं, और जो अन्य तीन प्रकार के मेरी आराधनाकांक्षी भक्त हैं वे भी मुझको प्राप्त होकर संसार में लौट कर पुनः नहीं आते। मैंने ही इस जगत् का विस्तार कर रक्खा है--जो इसे जानता है वह अमृत होता है।

पश्याम्यशेषमेवेदं वर्तमानं स्वभावतः ।
करोति काले भगवान्महायोगेश्वरः स्वयम् ॥ २६ ॥

मैं स्वभावतः इस जगत् को वर्तमान के समान देखता हूँ। समय पर स्वयं भगवान् महायोगेश्वर इसको करते हैं।

योगं सम्प्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभिः ।
योगेश्वरोऽसौ भगवान्महादेवो महाप्रभुः ॥ २७ ॥

योगी मायी शास्त्रों में उसे ही विद्वज्जन योग कहते हैं। भगवान् महादेव महाप्रभु ही योगेश्वर हैं।

महत्वात्सर्वसत्त्वानां परत्वात्परमेश्वरः ।
प्रोच्यते भगवान्ब्रह्मा महान्ब्रह्ममयो यतः ॥ २८ ॥

वह सब सत्त्वों के महत्तत्व हैं और सब जीवों से पर होने से परमेश्वर हैं। वह महान् ब्रह्ममय हाने से ब्रह्मा कहलाते हैं।

यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम् ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ २९ ॥

मुझको जो इस प्रकार महायोगेश्वर जानता है वह अविकम्पयोग से युक्त होता है इसमें सन्देह नहीं है।

सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रिताः ।
तिष्ठामि योगी सततं यस्तद्वेद स वेदवित् ॥ ३० ॥

वह मैं परमानन्दरूप से प्रेरित सबके आश्रित नित्य योग में स्थित रहता हूँ--जो इसको जानता है वह वेद को जानता है।

इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निश्चितम् ।
प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये ॥ ३१ ॥

यह गुह्यतम ज्ञान सर्ववेदों द्वारा निश्चित किया गया है। इसे अग्निहोत्र करने वाले प्रसन्नचित्त धर्मात्माओं का ही देना चाहिये।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
भक्तियोगो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दश सर्ग

श्रीरामचन्द्र और हनुमान का संवाद

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता ।
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्माहं सनातनः ॥ १ ॥

सब लोकों का निर्माता, सब लोकों का रक्षक, सब लोकों का संहारकर्त्ता, सर्वात्मा सनातन मैं हूँ ।

सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी पिता ह्यहम् ।
मय्येवान्तःस्थितं सर्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः ॥ २ ॥

में सब वस्तुओं का अन्तर्यामी पिता हूँ । मेरे अन्तःकरण में सब स्थित हैं मैं नहीं ।

भवता चाद्भुते दृष्टं यत्स्वरूपं तु मामकम् ।
ममैषा ह्युपमा वत्स मायया दर्शिता मया ॥ ३ ॥

तुमने जो मेरा अद्भुत रूप देखा है, उस रूप का, हे वत्स ! मैंने ही माया द्वारा निर्माण किया है ।

सर्वेषामेव भावानामन्तरा समवस्थितः ।
प्रेरयामि जगत्सर्वं क्रियाशक्तिरियं मम ॥ ४ ॥

सब भावों के अन्तर में मैं ही स्थित हूँ, मैं ही सब जगत को प्रेरित करता हूँ, यह मेरी क्रियाशक्ति है ।

ययेदं चेष्टते विश्वं मत्स्वभावनुवर्ति च ।
सोऽहं काले जगत्कृत्स्नं करोमि हनुमन् किल ॥ ५ ॥

यह विश्व मेरे द्वारा ही चेष्टित और मेरे ही स्वभाव का अनुवर्ती है । हे हनुमान् ! वह मैं ही समय पर इस जगत् का निर्माण करता हूँ ।

संहराम्येकरूपेण द्विधावस्था ममैव तु ।
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्त्व प्रवर्तकः ॥ ६ ॥

एक रूप से मैं संहार करता हूँ । यह मेरी दो प्रकार की द्वैध अवस्था

है। आदि, अन्त, मध्य, अन्तर से रहित माया तत्त्व का प्रवर्तक मैं ही हूँ।

क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ ।

ताभ्यां सञ्जायते सर्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम् ॥ ७ ॥

सृष्टि के आदि में मैं प्रधान और पुरुष दोनों को क्षोभित करता हूँ। उनके परस्पर संयुक्त होने से यह सर्वजगत् उत्पन्न होता है।

महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृम्भितम् ।

यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्तकः ॥ ८ ॥

महत् आदि के, क्रम से यह मेरा ही तेज फैल रहा है जो सब जगत् का साक्षी और काल चक्र का प्रवर्तक है।

हिरण्यगर्भो मार्तण्डः सोऽपि मद्देहसम्भवः ।

तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम् ॥ ९ ॥

दत्तवानात्मजावेदान् कल्पादौ चतुरः किल ।

स मन्नियोगतो ब्रह्मा सदा मद्भाव भावितः ॥ १० ॥

हिरण्य गर्भ मार्तण्ड है, वह मेरे देह से प्रकट हुआ है। उसे मैंने अपना दिव्य ऐश्वर्य, सनातन ज्ञानयोग, और कल्प के आदि में चारों वेदों को दिया है। वह ब्रह्मा मेरे नियोग से सदा मेरे भाव से भावित रहता है।

दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदा वहति स्वयम् ।

स सर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेन सर्ववित् ॥ ११ ॥

भूत्वा चतुर्मुखः सर्वं सृजत्येवात्मसंभवः ।

वे मेरे उस दिव्य ऐश्वर्य को सदा धारण करते हैं। वह सब लोकों के निर्माता मेरी आज्ञा से चतुर्मुख होकर अपने से सृष्टि का सृजन करते हैं।

योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवाव्ययः ॥ १२ ॥

ममैव परमा मूर्तिः करोति परिपालनम् ।

जो नारायण, अनन्त, लोकों के प्रभु, अविनाशी हैं वे मेरी परमामूर्ति होकर जगत् का पालन करते हैं।

योऽन्तकः सर्वभूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः ॥ १३ ॥

मदाज्ञयाऽसौ सततं संहारत्येव मे तनुः ।

जो सब भूतों का अन्तक रुद्र कालात्मा प्रभु है वह मेरा शरीर मेरी आज्ञा से हो यह सब संहार करता है ।

हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ॥ १४ ॥

पाकं च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिचोदितः ।

देवताओं के निमित्त हव्य और कव्याशिनों के लिये कव्य वहन करता हुआ अग्नि जो पाक करता है वह भी मेरी शक्ति से ही प्रेरित हुआ करता है ।

भुक्तमाहारजातं यत्पचत्येतदहर्निशम् ॥ १५ ॥

वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः ।

जो कुछ भोजन किया गया आहार है उसे मेरे बल से जठराग्नि अहर्निश पचाती है । भगवान् वैश्वानर अग्नि मेरी आज्ञा से यह करता है ।

यो हि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुङ्गवः ॥ १६ ॥

स संजीवयते सर्वमीशस्यैव नियोगतः ।

जो सम्पूर्ण जलों को योनि वरुण देवता हैं वह ईश के नियोग से ही सबको संजीवित करते हैं ।

योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिर्देवो निरंजनः ॥ १७ ॥

मदाज्ञयासौ भूतानां शरीराणि बिभर्ति हि ।

जो निरञ्जनदेव जीवों के बाहर-भीतर स्थित है, वह मेरी आज्ञा से ही प्राणियों के शरीर का भरणपोषण करता है ।

योऽपि संजीवनो नृणां देवानाममृताकरः ॥ १८ ॥

सोमः स मन्नियोगेन चोदितः किल वर्तते ।

जो देवताओं के संजीवन में अमृत रूप है वह सोम (चन्द्रमा) मेरी ही आज्ञा से कार्य करता है ।

यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रकाशयति सर्वदा ॥ १९ ॥

सूर्यो वृष्टिं वितनुते शास्त्रेणैव स्वयंभुवः ।

जो स्वभाव से सारे जगत को सर्वदा प्रकाशित करता है, वह सूर्य ब्रह्मा की आज्ञा से वृष्टि करता है।

योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः ॥ २० ॥

यज्ञानां फलदो देवो वर्ततेऽसौ मदाज्ञया ।

यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्तते नियमादिह ॥ २१ ॥

जो सम्पूर्ण जगत का शास्ता, सब देवताओं का अधिपति शक्र है, वह देवयज्ञों का फल देने वाला मेरी आज्ञा से वर्तता है, और असाधुओं का शास्ता भी नियमादि से वर्तता है।

यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः ।

योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायकः ॥ २२ ॥

सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्तते सदा ।

यः सर्व रक्षसां नाथस्तापसानां फलप्रदः ॥ २३ ॥

वैवस्वत यमदेव मेरी आज्ञा से ही वर्तता है। जो सम्पूर्ण धनाध्यक्ष और धनों का देने वाला है वह कुबेर भी मुझ ईश्वर की आज्ञा से ही वर्तता है। वह सम्पूर्ण राक्षसों का नाथ और तपस्वियों को फल देने वाला है।

मन्नियोगादसौ देवो वर्तते निर्ऋतिः सदा ।

वैतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रदः ॥ २४ ॥

वह निर्ऋति भी सदा मेरी आज्ञा से वर्तता है। वह वेतालगण और भूतों का स्वामी भोगफल देने वाला है।

ईशानः सर्वभक्तानां सोऽपि तिष्ठेन्ममाज्ञया ।

यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः ॥ २५ ॥

रक्षको योगिनां नित्यं वर्ततेऽसौ मदाज्ञया ।

सब भक्तों के ईशान भी मेरी आज्ञा से ही प्रतिष्ठित हैं। जो रुद्रगणों के शिष्य वामदेव आङ्गिरस हैं वह नित्य योगियों के रक्षक हैं और मेरी आज्ञा से वर्तते हैं।

यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्तते विघ्नकारकः ॥ २६ ॥

विनायको धर्मनेता सोऽपि मद्वचनात्किल ।

योऽपि वेदविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः ॥ २७ ॥
स्कन्दोऽसौ वर्तते नित्यं स्वयम्भूप्रतिचोदितः ।

जो सर्व जगत् का पूज्य विघ्नकारक विनायक धर्मनेता है वह भी मेरी आज्ञा से ही वर्तता है। जो वेदविद श्रेष्ठ देवसेनापति प्रभु है वह स्कन्द भी स्वयं प्रभु से प्रेरित होकर वर्तते हैं।

ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षयः ॥ २८ ॥
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः ।

जो प्रजाओं के पति मरीच्यादि महर्षि हैं वे नारायण की आज्ञा से ही विविध लोकों का सृजन करते हैं।

या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम् ॥ २९ ॥
पत्नी नारायणस्यासौ वर्तते मदनुग्रहात् ।

ये जो लक्ष्मी सब भूतों को विपुल श्री प्रदान करती हैं वह नारायण की पत्नी मेरी आज्ञा से ही वर्तती हैं।

वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती ॥ ३० ॥
सापीश्वरनियोगेन चोदिता सम्प्रवर्तते ।

जो देवी सरस्वती विपुलवाणी देती हैं वह भी ईश्वर के नियोग से प्रेरित होकर संप्रवर्तित होती हैं।

याऽशेष पुरुषान्घोरान्नरकात्तारयत्यपि ॥ ३१ ॥
सावित्री संस्मृता देवी देवाज्ञानुविधायिनी ।

जो अनेक पुरुषों को घोर नरक से तारती हैं वह सावित्री के रूप में स्मरण की जाने वाली देवी देव की आज्ञा की ही विधायिनी हैं।

पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी ॥ ३२ ॥
यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा ।

ब्रह्मविद्या का विधान करने वाली परमा देवी पार्वती मेरी आज्ञा से ही ध्यान करने वालों को फल प्रदान करती हैं।

योऽनन्तो महिमानन्तः शेषोऽशेषाऽमरप्रभुः ॥ ३३ ॥
दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः ।

जो अनन्त महिमा वाले अनन्त अशेष शेष देवों के प्रभु हैं वह भी देव के नियोग से ही शिर पर पृथिवी को धारण करते हैं।

योऽग्निः संवर्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः ॥ ३४ ॥
पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगत ।

जो नित्य संवर्तक अग्नि वडवा रूप से स्थित हैं वह भी ईश्वर की आज्ञा से ही सब सागर का पान करते हैं।

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ ॥ ३५ ॥
अन्याश्च देवताः सर्वा मच्छासनमधिष्ठिताः ।

आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार तथा और भी सब देवता मेरे शासन में ही स्थित रहते हैं।

गन्धर्वा उरगा यक्षाः सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ॥ ३६ ॥
भूतरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रे स्वयंभुवः ।

गन्धर्व, उरग, यक्ष, सिद्ध, साध्य, चारण, भूत, राक्षस, पिशाच, सब स्वयंभू की आज्ञा में स्थित हैं।

कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षणाः ॥ ३७ ॥
ऋत्वब्दमासपक्षाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापते ।
युगमन्वन्तराण्येव ममतिष्ठन्ति शासने ॥ ३८ ॥

कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त, दिवस, ऋतु, वर्ष, मास, पक्ष, युग, मन्वन्तर सब परमात्मा प्रजापति के शासन में स्थित हैं।

पराश्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथापरे ।
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ३९ ॥
नियोगादेव वर्तते सर्वाण्येव स्वयम्भुवः ।
पत्तनानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ॥ ४० ॥

परा और परार्द्ध ये जितने काल के भेद हैं तथा चार प्रकार के भूत और स्थावर-जङ्गम सब स्वयंभू के नियोग से वर्तते हैं। सब पत्तन और सब भुवन उसी के शासन में हैं।

ब्रह्माण्डानि च वर्तंते देवस्य परमात्मनः ।

अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि महाज्ञया ॥ ४१ ॥

प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समं ततः ।

ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मगैः ॥ ४२ ॥

असंख्य ब्रह्माण्ड भी उस परमात्मा की आज्ञा से वर्तने हैं। सब प्रवृत्त हुये पदार्थ समूहों के साथ ब्रह्माण्ड अपनी-अपनी वस्तुओं के साथ होते हैं।

हरिष्यन्ति सहैवाज्ञां परस्य परमात्मनः ।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥ ४३ ॥

भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगान्मम वर्तते ।

वे सब परमात्मा की आज्ञा को वहन करते हैं। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश मन बुद्धि, भूतादि आदि प्रकृति—ये सब मेरी आज्ञा से ही वर्तते हैं।

याऽशेषसर्वजगतां मोहिनी सर्वदेहिनाम् ॥ ४४ ॥

मायापि वर्तते नित्यं साऽपीश्वरनियोगतः ।

सम्पूर्ण जगत और देहधारियों की जो मोहिनी माया है वह भी नित्य ईश्वर की आज्ञा से वर्तती है।

विधूय मोहकलिलं यथा पश्यति तत्पदम् ॥ ४५ ॥

सापि विद्या महेशस्य नियोगाद्वशवर्तिनी ।

बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् ॥ ४६ ॥

जिसके द्वारा मोह को दूर करके तत्पद को देखा जाता है वह विद्या महेश के नियोग से वशर्वतिनी है। बहुत कहने से क्या, यह जगत् मेरा ही शक्त्यात्मक है।

मयैव पूर्यते विश्वं मय्यैव प्रलयं व्रजेत् ।

अहंहि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ॥ ४७ ॥

परमात्मा परंब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते ।

इत्येतत्परमं ज्ञानं भवते कथितं मया ॥ ४८ ॥

मुझसे ही यह जगत पूर्ण होकर अन्त में मुझमें ही लय हो जाता हैं। मैं ही भगवान् ईश, स्वयंज्योति, सनातन हूँ। मैं ही परमात्मा परब्रह्म हूँ। मुझसे अधिक कोई नहीं हैं। यह मैंने तुमसे परज्ञान कहा हैं।

ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्म संसारबन्धनात्।
मायामाश्रित्य जातोऽहं गृहे दशरथस्य हि॥ ४९॥

इसके ज्ञान से प्राणी संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है। माया के आश्रित हो मैंने दशरथ के गृह में जन्म लिया हैं।

रामोऽहं लक्ष्मणो ह्येष शत्रुघ्नो भरतोऽपि च।
चतुर्धा सम्प्रभूतोऽहं कथितं तेऽनिलात्मज॥ ५०॥
मायास्वरूपं च तव कथितं यत्प्लवङ्गम।
कृपया तद्धृदा धार्यं न विस्मर्तव्यमेव हि॥ ५१॥

मैं ही राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न--इन चार प्रकार से अपने रूपों का प्रकट कर स्थित हूँ। हे अनिलात्मज! मैंने यह जो तुमसे कहा है उसे श्रद्धा से हृदय में धारण करना मत भूलना।

येनायं पठ्यते नित्यं संवादो भवतो मम।
जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५२॥

जो हमारे इस संवाद को नित्य पढ़ेंगे वे जीवनमुक्त होकर समस्त पापों से छूट जायेंगे।

श्रावयेद्वा द्विजाञ्छुद्धान्ब्रह्मचर्यपरायणान्।
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम्॥ ५३॥

जो इसे शुद्ध ब्रह्मचर्यपरायण ब्राह्मणों को सुनायेंगे अथवा जो इसके अर्थ का विचार करेंगे वे परम गति को प्राप्त होंगे।

यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्म लोके महीयते॥ ५४॥

जो भक्तियुक्त और दृढ़व्रत हो इसे नित्य सुनेंगे वह सब पापरहित हो ब्रह्मलोक को प्राप्त करेंगे।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः ।
श्रोतव्यश्चापि मन्तव्यो विशेषाद्ब्राह्मणैः सदा ॥ ५५ ॥

इस कारण सब प्रयत्नों से विद्वानों को इसे पढ़ना और मनन करना चाहिये—विशेषरूप से ब्राह्मणों को इसे विचराना चाहिये ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
भगवद्धनुमत्संवादो नाम चतुर्दश: सर्ग: ॥ १४ ॥

पञ्चदश सर्ग

हनुमानजी द्वारा श्रीरामचन्द्र की स्तुति

ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्ना बद्धाञ्जलिर्वायुसुतो महात्मा ।
ओंकारमुच्चार्य विलोक्य देवमन्तः शरीरे निहितं गुहायाम् ॥ १ ॥
रामं महात्मानम कुण्ठशक्तिं सनन्दमुख्यैः स्तुतमप्रमेयम् ।
पुष्टाव च ब्रह्ममयैर्वचोभिरानन्दपूर्णायितमानसः सन् ॥ २ ॥

वह महात्मा महावीर हृदय में ध्यान कर, शिर से प्रणाम कर, हाथ जोड़ कर, ओंकार का उच्चारण कर, और उन देव को देख कर जो प्राणियों के हृदय-गुहा में स्थित हैं, अकुण्ठ शक्ति सनन्दादि मुख्यों से स्तुति को प्राप्त अप्रमेय हैं उन महात्मा राम को आनन्द से पूर्ण और तन्मय होकर ब्रह्ममय वचनों से स्तुति करने लगे ।

त्वामेकमीशं पुराणं प्राणेश्वरं राममनन्तयोगम् ।
नमामि सर्वान्तरसन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥ ३ ॥
पश्यन्ति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनिं दान्ताः शान्ता विमलं रुक्मवर्णम् ।
ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे कविं परेभ्यः परमं परं च ॥ ४ ॥

आप ही एक ईश, पुराण प्राणेश्वर अनन्तयोग श्रीराम सबके अन्तर में स्थित हो । प्रचेतस पवित्र ब्रह्ममय को मैं नमस्कार करता हूँ । ब्रह्मयोनि आपको मुनिजन देखते हैं । आप दान्त, शान्त, विमल, रुक्मवर्ण हैं । आत्मा में स्थित, परे से परे आपका कविगण ध्यान करते हैं ।

त्वत्तःप्रसूता जगतःप्रसूतिः सर्वात्मसृष्टेः परमाणुभूतः ।
अणोरणीयान्महतोमहीयांस्त्वामेव सर्वे प्रवदन्ति सन्तः ॥ ५ ॥

आपसे सारा जगत उत्पन्न होता है। आप सर्वात्मा, सृष्टि के परमाणु-भूत हैं। आपको सन्त-महात्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान कहते हैं।

हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा त्वत्तोऽधिजातः पुरुषः पुराणः ।
स जायमानो भवता विसृष्टो यथाविधानं सकलं ससर्ज ॥ ६ ॥

हिरण्यगर्भ, जगत के अन्तरात्मा, आप पुराणपुरुष से ही सम्पूर्ण जगत उत्पन्न होता है। आपसे ही उत्पन्न होकर विराट ने सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करके सब विधानों को उत्पन्न किया है।

त्वत्तो वेदाः सकलाः सम्प्रवृत्तास्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते ।
पश्यामि त्वां जगतो हेतुभूतं नृत्यं तं स्वे हृदये सन्निविष्टम् ॥ ७ ॥

आपसे ही सब वेद उत्पन्न हुये हैं, आप ही में सब अन्त स्थिति को प्राप्त होते हैं। मैं आपको जगत का हेतुभूत देखता हूं। मेरे हृदय में आप सदैव स्थित हों।

त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्म चक्रं मायावी त्वं जगतामेकनाथः ।
नमामि त्वां शरण सम्प्रपद्ये योगात्मानं चित्पतिं दिव्यनृत्यम् ॥८॥

आपसे ही सब ब्रह्माण्डचक्र घुमाया जाता है। आप ही जगत के एक नाथ हैं। मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ। आप योगात्मा, चित्पति, दिव्य नृत्य रूप हैं।

पश्यामि त्वां परमाकाशमध्ये नृत्यन्तं ते महिमानं स्मरामि ।
सर्वात्मानं बहुधा सन्निविष्टं ब्रह्मानन्दमनुभूयानुभूय ॥ ९ ॥

मैं आपको परमाकाश के मध्य में विराजमान देखता हूं। आप सर्वात्मा, अनेक प्रकार से सन्निविष्ट ब्रह्मानन्द का अनुभव करके मैं आपको स्मरण करता हूं।

ओंकारस्ते वाचको मुक्तिबीजं त्वामक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम् ।
त्वं त्वां सत्यंप्रवदन्तीह सन्तः स्वयंप्रभं भवतो यत्प्रकाशम् ॥१०॥

ओंकार आपका वाचक मुक्ति बीज है। आप अक्षर प्रकृति में गूढ़ रूप हैं। सन्त उसे आपका सत्य रूप कहते हैं। आप स्वयंरूप प्रकाशमान हैं।

स्तुवन्ति त्वां सततं सर्वदेवा नमन्ति त्वामृषयाः क्षीणदोषाः ।
शान्तात्मानः सत्यसन्धं वरिष्ठं विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः ॥११॥

सब देवता आपकी निरन्तर स्तुति करते हैं। क्षीण दोष ऋषि आपको नमस्कार करते हैं। शान्तात्मा, सत्यसन्ध वरिष्ठ आपमें ब्रह्मनिष्ठ यति प्रवेश करते हैं।

एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्तस्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम् ।
संवेद्यं त्वां शरणं ये प्रसन्नास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१२॥

एक ही वेद बहुशाखा वाला अनन्त है और आपको एकरूप बोधित करते हैं। जो जानने योग्य आपकी शरण प्राप्त करते हैं उन्हीं को सदा शान्ति मिलती हैं, अन्य को नहीं।

भवानीशोऽणिमादिमां स्तेजोराशिर्ब्रह्मविश्वं परमेष्ठी वरिष्ठः ।
आत्मानन्दं चानुसूयानुशेते स्वयंज्योतिर्वचनो नित्यमुक्तः ॥१३॥

भवानीपति, अणिमादिमान तेजराशि, विश्व परमेष्ठी वरिष्ठ आत्मानन्द का अनुभव करता स्वयंज्योति वचन नित्य सत्र में स्थित है।

एको देवस्त्वं करोषीह विश्वं त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपः ।
त्वय्येवास्ते विलयं विन्दतीदं नमामि त्वां शरणं त्वां प्रपन्नः ॥१४॥

आप एक ही देव सब विश्व को व्याप्त करते हैं। आप अखिल विश्व-रूप का पालन करने हैं। अन्त में विश्व आप ही में लीन हो जाता है। आपकी शरण में प्राप्त हुआ मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

त्वामेकमाहुः परमं च रामं प्राणं वहन्तं हरिमित्रमीशम् ।
इन्दुं मृत्युमनलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम् ॥ १५ ॥

हे राम ! आपको हो परम प्राणदाता, हरिमित्र ईश कहते हैं। आप ही चन्द्रमा, मृत्यु, अनल, चेकितान, धाता, आदित्य, अनेक रूप हैं।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतो धर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ॥१६॥

आप ही परम् अक्षर जानने योग्य हैं, आप ही जगत् के परम निधान हैं। आप ही अविनाशी, शाश्वत, धर्म के गोप्ता, सनातन, उतम पुरुष हैं।

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीशः ।
त्वं विश्वनाभिः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥१७॥

आप ही विष्णु, चतुरानन हैं। आप रुद्र, भगवान ईश हैं। आप विश्व की नाभि, प्रकृति, प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर परमेश्वर हैं।

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
चिन्मात्रमव्यक्तमचिन्त्यरूपं खं ब्रह्मशून्यं प्रकृतिं निर्गुणं च ॥१८॥

आप ही पुराणपुरुष, एक, सूर्यवर्ण और तम से परे, चिन्मात्र, अव्यक्त, अचिन्त्यरूप, ख, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति और निर्गुण हैं।

यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमेकं यन्दतरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम् ॥१९॥

जिसके अन्तर में यह सब जगत् प्रकाशित होता है, जो अविनाशी, निर्मल, एकरूप है वह आपका रूप अचिन्त्य तत्ववाला और प्रकाशमान् है।

योगेश्वरं रूपमनन्तशक्तिं परायणं ब्रह्मतनुं पवित्रम् ।
नमाम सर्वे शरणार्थिनस्त्वां प्रसीद भूताधिपते प्रसीद ॥ २० ॥

योगेश्वर, अनन्त शक्तिपरायण ब्रह्मतनु पवित्र को, शरण की इच्छा वाले हम सब नमस्कार करते हैं। हे भूताधिपते ! प्रसन्न होइये।

त्वत्पादपद्मस्मरणादशेषं संसारबीजं विलयं प्रयाति ।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं प्रसादयाम्येकरसं भवन्तम् ॥ २१ ॥

आपके चरणकमल के स्मरण से सब संसार के बीज जन्ममरण नष्ट हो जाते हैं। मन को संयमित कर काया का प्रणिधान कर, एक रस हो मैं आपको प्रसन्न करता हूँ।

नमोऽस्तु रामाय भवोद्भवाय कालाय सर्वैकहराय तुभ्यम् ।
नमोऽस्तु रामाय कपर्दिने ते नमोऽग्नये दर्शय रूपमग्र्यम् ॥ २२ ॥

संसार की उत्पत्ति के कारण, सबको उत्पन्न करने वाले, कालरूप,

सर्व एक को हरने वाले, आपको प्रणाम है। राम, कपर्दिन, अग्निरूप आपको प्रणाम है। आप अनन्य रूप हैं।

ततः स भगवान्नामो लक्ष्मणेन सह प्रभुः ।
संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवत्स्वयम् ॥ २३ ॥

तब भगवान् राम अपना लक्ष्मणसहित रूप छिपा कर प्रकृति में स्थित हुये।

स तस्य स्तवमाकर्ण्य वायुपुत्रस्य धीमतः ।
प्राह गम्भीरया वाचा हनूमन्तं रघूत्तमः ॥ २४ ॥

वायुपुत्र का यह वचन सुनकर रघुश्रेष्ठ राम ने गम्भीर वचन से कहा :

स्तोष्यन्ति येऽनया स्तुत्या ते यास्यन्ति परां गतिम् ।
स्थिरो भव हनूमंस्त्वं कार्यमौपायिकं कुरु ॥ २५ ॥

जो इस स्तोत्र से स्तुति करेंगे वे परम गति को प्राप्त होंगे। हे हनुमान! आप स्थिर होकर उपाययुक्त कार्य करो।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
हनुमत्कृतस्तवराजे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडश सर्ग

रावणवध करके श्रीराम की राज्य प्राप्ति

रामः प्रत्याह च पुनर्हनूमन्तं महाद्युतिः ।
रक्षसा मे हृता भार्या रावणेन दुरात्मना ॥ १ ॥
सुग्रीवेण समं सख्यं कारयाद्य प्लवङ्गम ।

तब श्रीराम ने हनुमान से पुनः कहा कि 'हे महावीर! दुरात्मा रावण ने हमारी भार्या का हरण कर लिया है। हे वानरश्रेष्ठ! सुग्रीव के साथ हमारी मित्रता करा दो।'

हसित्वा मधुरं वीरो हनूमानब्रवीद्वचः ॥ २ ॥

तव भार्या महाभाग रावणेन हृतेति यत् ।
विश्वं यथेदमाभाति तथेदं प्रतिभाति मे ॥ ३ ॥
तथापि प्रभुणादिष्टं कार्यमेव हि किंकरैः ।

तब वीर हनुमान ने मधुर हँसी हँसकर कहा : 'हे महाभाग ! आपकी भार्या का रावण ने हरण कर लिया है; जैसा यह विश्वविदित होता है उससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी, आपने जो आज्ञा दी है वह दासों का अवश्य पालन करना चाहिये।'

इत्युक्त्वा हनुमांस्तूर्णं प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ४ ॥
आरोप्य स्कन्धयोर्वीरौ सुग्रीवान्तिकमानयत् ।

ऐसा कहकर अन्तरात्मा से प्रसन्न हनुमान शीघ्रता से उन वीरों को कन्धे पर चढ़ाकर सुग्रीव के समीप ले आये।

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीवो वानरोत्तमः ॥ ५ ॥
वालिनं तं जितं मेने प्राप्तं मेने रुमां स्त्रियम् ।
सख्यं चकाररामेण दिष्ट्यादिष्ट्येति चा ब्रवीत् ॥ ६ ॥

उन दोनों पुरुषसिंहों को देखकर वानरोत्तम सुग्रीव अपनी स्त्री रुमा को प्राप्त और बाली को जीता गया मानने लगे। उन्होंने अपने भाग्य की सराहना करते हुये राम के साथ मित्रता की।

वालिनो विलयं कृत्वाराज्यं चास्मै निवेद्य च ।
ननादेश्यान्वा नरांश्च आनाय्य रघुनन्दनौ ॥ ७ ॥

बाली का मार कर और सुग्रीव को राज्य देकर, फिर देश-देशान्तरों से वानरों को रघुनन्दन के समीप बुलाया गया।

हनूमदङ्गदारूढौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सिन्धोस्तटं तौ ययतुः सुग्रीवेण सह प्रभुः ॥ ८ ॥

हनुमान और अङ्गद के ऊपर आरुढ़ होकर राम-लक्ष्मण सुग्रीव के साथ सागर के तट पर गये।

पारेसमुद्रं लङ्कां च निरूप्याह रघूत्तमः ।
वानरा हि यथा यान्ति लङ्कांलक्ष्मण तत्कुरु ॥ ९ ॥

सागर के पार लङ्का को देख कर रामचन्द्र ने कहा : 'हे लक्ष्मण ! जिस प्रकार हम लङ्का के निकट पहुंचे वैसा उपाय करो।'

रामस्य वचनं श्रुत्वा समुद्रं प्राह लक्ष्मणः ।
सिन्धो त्वं स्तम्भयात्मानं यथा यास्यन्ति वानराः ॥ १० ॥

राम के वचन को सुन कर लक्ष्मण ने समुद्र से कहा : 'हे सिन्धु ! अपनी आत्मा को स्तम्भित कर लो जिससे तुम्हार ऊपर से वानर चले जाँय।'

सिन्धुस्तु प्रभुणादिष्टं न सुश्राव यदा ।
तदा लक्ष्मणः क्रोधसंदीप्तः पपाताब्धेर्जलान्तरे ॥ ११ ॥
तद्देहवह्निशिखाया शुशोष जलधेर्जलम् ।
यादांसि स्थलभाजीनि देवा भीता दिशोऽद्रवन् ॥ १२ ॥

जब सागर ने प्रभु के आदेश को नहीं सुना तब लक्ष्मणजी क्रोध करके सागर के जल में कूद पड़े और अपनी देह की ज्वाला से सागर का जल सोखने लगे। तब सब जल-जन्तु व्याकुल हो गये और देवता भी भयभीत हो दिशाओं के अन्त में पलायन कर गये।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं वानरा विस्मयं गताः ।
हाहाकारं प्रचक्रुस्ते सर्वे लोकांश्चराचराः ॥ १३ ॥

उस महान आश्चर्य को देख कर वानर आश्चर्य को प्राप्त हुये और सम्पूर्ण चराचर लोक हाहाकार करने लगा।

ऋषयो भूतसङ्घाश्च स्वस्तिस्वस्तीति चाब्रुवन् ।
राघवो लक्ष्मणं प्राह नैतद्युक्तं त्वया कृतम् ॥ १४ ॥
पुनरेनं पूरयामि सीताविरहयेन वै ।
अश्रुणेति प्रतिज्ञाय तं तथापूरयत्प्रभुः ॥ १५ ॥

ऋषि और भूतसमूह स्वस्ति-स्वस्ति कहने लगे। तब राम ने लक्ष्मण से कहा : 'तुमने यह उचित नहीं किया। अब सीता के वियोग से उत्पन्न अश्रुओं से मैं इसे पुनः पूर्ण करूँगा।' ऐसा कह कर प्रभु ने उसको (सागर को) पूर्ण कर दिया।

रामोपरि तदाकाशात्पुष्पवृष्टिः पपात ह
लोकाश्च सुस्थिता आसंश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥ १६ ॥

तब आकाश से श्रीराम के ऊपर पुष्पवर्षा होने लगी। सम्पूर्ण लोक भी स्वस्थ हो गये और बारम्बार विचार करने लगे।

सिन्धुना संस्तुतो रामः सेतुं सिन्धौ बबन्ध ह।
लङ्कायां रावणं हत्वा सगणं मधुसूदनः ॥ १७ ॥
आरोप्य पुष्पके सीतां विभीषणसहायवान्।
अयोध्यामागमद्रामः सुग्रीवहनूमदादिभिः ॥ १८ ॥

फिर सिन्धु द्वारा स्तुति को प्राप्त हो श्रीराम ने सागर पर सेतु बांधा और लङ्कापुरी जाकर गणों सहित रावण को मार डाला। विभीषण को साथ लेकर पुष्पक विमान में सीता को बैठाया और सुग्रीव, हनुमानादि के साथ राम अयोध्या को चले।

आनन्दैर्योजयामास भ्रातॄन्मातृश्च बान्धवान्।
राजा सर्वस्य लोकस्य प्रजानामनुरञ्जनः ॥ १९ ॥

भ्राता, माता और बान्धवों को उन्होंने आनन्द से युक्त किया। वे सब लोकों को, राजा और प्रजा को आनन्द प्रदान करने वाले हुये।

रामं राजानमासाद्य तिर्यञ्चोऽपि ययुर्मुदम्।
देवदुन्दुभयो नेदुः सर्वदा हि नभस्तले।
ववृषुर्जलदाः काले पुष्पवृष्टिः पपात च ॥ २० ॥

श्रीराम को राजा के रूप में प्राप्त कर पशु-पक्षी भी प्रसन्न हुये। आकाश में सर्वदा देव दुन्दुभी बजने और समय पर मेघ वर्षा और पुष्पवृष्टि होने लगी।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
रामराज्योपलम्भनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदश सर्ग

सीताभाषण, सहस्रमुख रावण का वृत्तान्त

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां क्षये कृते।
आजग्मुर्मुनयस्तत्र राघवं प्रति नन्दितुम्॥ १॥

जब राक्षसों का वध हो चुका और श्रीराम को राज्य प्राप्त हो गया तब रामचन्द्र का अभिनन्दन करने के निमित्त मुनिजन वहाँ आये।

विश्वामित्रो यवक्रीतो रैभ्यश्च्यवन एव च।
कण्वश्च मुनिशार्दूलो ये पूर्वां दिशमाश्रिताः॥ २॥

विश्वामित्र, यवक्रीत, रैभ्य, च्यवन, मुनिश्रेष्ठ कण्व, जो पूर्व दिशा के रहने वाले महर्षि थे वे आये।

स्वस्त्यात्रेयश्च नमुचोऽरिमुचोगस्त्य एव च।
आजग्मुर्मुनयस्तत्र ये श्रिताः दक्षिणां दिशम्॥ ३॥

दक्षिण दिशा के स्वस्ति, आत्रेय, नमुच, अरिमुच और अगस्त्यजी भी आये।

उपगुः कामठो धूम्रो रौद्राश्वो मुनिपुंगवः।
आजग्मुर्मुनयस्तत्र ये प्रतीचीं समाश्रिताः॥ ४॥

पश्चिम दिशा के रहने वाले मुनिश्रेष्ठ उपगु, कामठ, धूम्र, रौद्राश्व वहाँ आये।

शिष्योपशिष्यसहिता वसिष्ठप्रमुखर्षयः।
आजग्मुर्हि महात्मानं उत्तरां दिशमाश्रिताः॥ ५॥

शिष्यों और उपशिष्यों सहित उत्तर दिशा में रहने वाले वसिष्ठादि ऋषि भी वहाँ आये।

प्राप्यते तु महात्मानो राघवस्य निवेशनम्।
गृहीत्वा फलमूलानि हुताशसमविग्रहाः॥ ६॥
राघवं प्रतिनन्द्याथ विविशुः परमासने।

इन सब महात्माओं ने श्रीराम के निवास पर आकर फल-मूल ग्रहण किया और अग्नि के समान शरीर वाले श्रीराम का अभिनन्दन करके परमासन पर विराजमान हुये।

राघवश्च महातेजाः सीतया सह सुव्रत ॥ ७ ॥
भ्रातृभिर्मन्त्रिभिः सार्द्धं पौरैः श्रेणिमुखैस्तथा ।
विनीत उपसङ्गम्य पूजयामास तान्मुनीन् ॥ ८ ॥

हे सुव्रत ! महातेजस्वी श्रीराम सीता सहित और भाइयों, मन्त्रियों तथा पुरवासियों के साथ नम्रतापूर्वक उन मुनियों से मिले और उनका पूजन किया।

अगस्त्यप्रमुखा विप्रा दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रुवन् ।
राघवं प्रशशंसुस्ते मुनयो वाग्विदां वराः ॥ ९ ॥
त्वं हि देवो जगन्नाथो जगतामुपकारकः ।
रावणस्य सपुत्रस्य सामात्यस्य वधात्प्रभो ॥ १० ॥
जगदेतन्महाबाहो पुनर्जातमिवाभवत् ।
न रावणादभ्यधिको दुष्टो लोकभयंरः ॥ ११ ॥

बोलने में प्रवीण अगस्त्य आदि महर्षि 'धन्य-धन्य' कह कर श्रीरामचन्द्र की प्रशंसा करते हुये बोले : 'हे देव जगन्नाथ ! आप ही जगत का उपकार करने वाले हैं। हे प्रभु ! अमात्यजनों और पुत्रों सहित रावण का वध करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इस जगत ने पुनः जन्म लिया है। रावण से बढ़ कर लोकों के लिये भयकारक और कोई दुष्ट नहीं था।

दशास्यैर्दशदिक्कार्यमाज्ञापयति राक्षसः ।
स दशास्यो हतो राम दिष्ट्या च जगदुद्धृतम् ॥ १२ ॥

इस राक्षस की दशों दिशाओं में आज्ञा प्रचलित होती थी। सौभाग्य से उसका वध कर आपने जगत का उद्धार कर दिया।

भगवानसि भूपाल ब्रह्मणाभ्यर्थितः पुरा ।
पुण्डरीकविशालाक्षः श्याम आजानुबाहुकः ॥ १३ ॥

हे राम ! आप पूर्व समय में ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थना करने से भूपाल

का रूप धारण कर आये हैं। आपके कमल जैसे विशाल नेत्र, श्यामशरीर और जानुपर्यन्त भुजायें हैं।

अयोध्यायां प्रादुरभूदिक्ष्वाकुकुल नन्दनः।
त्वद्दर्शनान्महाबाहो निर्वृताःस्मो वयं प्रभो॥ १४॥

इक्ष्वाकुकुल को आनन्द प्रदान करने के लिये आप अयोध्या में प्रकट हुये हैं। हे प्रभो! आपके दर्शनमात्र से ही हम आनन्दित हो गये हैं।

तपश्चरामः सहितास्त्वत्प्रसादाद्वनेवने।
किन्तु सीता महादेवी प्राप दुखं महत्प्रभो॥ १५॥
तदेव स्मर्यमाणं सच्चित्तमुद्वेजयेद्धि नः।

आपकी कृपा से हम वन-वन में निर्भयता से तप करते हैं। परन्तु, हे प्रभु! महादेवी सीता ने महान दुःख पाया है। यही स्मरण करने से हमारा चित्र उद्वेलित है।

एवमुक्ते तु मुनिभिः सानुक्रोशं पुनः पुनः॥ १६॥
जहास मधुरं साध्वी सीता जनकनन्दिनी।
उवाच सस्मितं देवी तान्मुनीन्मितभाषिणी॥ १७॥
मुनयो यद्यदुक्तं हि रावणस्य वधं प्रति।
परिहास इवाभाति प्रशंसनमिदं द्विजाः॥ १८॥

जब दया से बारम्बार मुनिजनों ने ये वचन कहे तब जनकनन्दिनी साध्वी सीता हँस पड़ीं और हँसती हुई उन देवी ने मुनियों से कहा: हे ब्राह्मणों! मुनियों ने रावण के वध के प्रति जो कुछ कहा है वह प्रशसा परिहास कहलाती है।

रावणो हि दुराचारः सत्यमेवन संशयः।
दशभिर्वदनैर्वीरो जगदुद्वेजको हि सः॥ १९॥
दशास्यस्य वधो विप्रा न प्रशंसामिहार्हति।

यह सत्य है कि रावण बड़ा दुराचारी था। इसमें भी सन्देह नहीं कि वह अपने दस मुखों से जगत को उद्वेलित करने वाला था। परन्तु हे ब्राह्मणो! रावण का वह वध कुछ विशेष प्रशंसा के योग्य नहीं है।

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो विस्मयं परमं गताः ॥ २० ॥
किमेतदिति होचुस्ते परस्परमुखेक्षणाः ।

यह वचन सुन कर मुनिजन परम विस्मय को प्राप्त हुये, और 'यह क्या है' ऐसा कहते हुये एक दूसरे का मुँह देखने लगे ।

अयोनिसम्भवा सीता काकुत्स्थकुलमाश्रिता ॥ २१ ॥
अस्मानपि जहासेयं किमेतन्नैव विद्महे ।

इक्ष्वाकुवंश के आश्रित हुई अयोनिजा सीता हमारी बातों पर हास्य प्रकट कर रही है इसका कारण हम नहीं जानते ।

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २२ ॥
सीता भीता प्रणम्योचे कृताञ्जलिपुटा सती ।
पृथग्जनेव मुनयो नाहमनृतभाषिणी ॥ २३ ॥
यदि चाज्ञापयथ मां तदा वक्ष्यामि चादितः ।

तब उन ज्ञानात्मा मुनियों का वचन सुनकर भयभीत हुई सीता ने प्रणाम कर हाथ जोड़ कहा : 'हे मुनियो ! मैं पामर मनुष्यों के समान असत्यभाषिणी नहीं हूँ । यदि आप आज्ञा दें तो मैं सब कुछ आदि से कहूँ ।'

अगस्त्यप्रमुखा विप्राः सीताया विनयान्वितम् ॥ २४ ॥
आकर्ण्य वचनं प्रीताः प्रोचुस्ते कथ्यतामिति ।
ततः सीता महाभागा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २५ ॥

तब अगस्त्य आदि ऋषियों ने सीता की बात सुनकर उनसे यह विनययुक्त वचन कहा कि 'वर्णन कीजिये' । तब महाभागा सीता ने कहने का उपक्रम किया ।

पतिं मुनीन्देवरांश्च मन्त्रिणः श्रेणिमुख्य-कान् ।
विनयेनाभ्यनुज्ञाप्य पूर्ववृत्तान्तमादरात् ॥ २६ ॥

पति, मुनि, देवर, मन्त्री तथा अन्य श्रेणी के मुख्य लोगों से आज्ञा लेकर उन्होंने पूर्ववृत्तान्त वर्णन किया ।

पूर्वं विवाहान्मुनयो यदासं पितृमन्दिरे ।
तदैकोऽतिथिरूपेण ब्राह्मणः समुपागतः ॥ २७ ॥

आगत्य पितरं मह्यं तमुवाच द्विजोत्तमः ।

चतुरो वार्षिकान्मासान्स्थास्यामि तव मन्दिरे ॥ २८ ॥

यदि सेवापरो नित्यं भवस्यमरसन्निभः ।

हे मुनियों ! विवाह से पूर्व जब मैं अपने पिता के मन्दिर में रहती थी तब वहाँ अतिथिरूप एक ब्राह्मण पधारे । उन ब्राह्मण ने आकर मेरे पिता से कहा : 'मैं चातुर्मास्य के चार महीने तुम्हारे मन्दिर में रहूँगा । हे राजन् ! यदि नित्य मेरी सेवा में तत्पर रहोगे तो अमरों के समान हो जाओगे ।'

जनको मत्पिता देवद्विजभक्तिपरायणः ॥ २९ ॥

ब्रह्मणं वासयामास नानाभक्ष्यं समादिशत् ।

अहं च तस्य सेवायै नियुक्ता धर्मभीरुणा ॥ ३० ॥

हमारे पिता जनकजी द्विज और देवता के भक्तिपरायण हैं । उन ब्राह्मण को नाना प्रकार के भक्ष्य-भोज्य की समग्रियाँ प्रदान की गई, तथा हमारे धर्मभीरु पितु ने मुझे उनकी सेवा करने के लिये नियुक्त किया ।

यदा यथाज्ञापयति द्विजः स परमार्थवित् ।

तं तथा ह्यकरवं तस्य रात्रिंदिवमतन्द्रिता ॥ ३१ ॥

परमार्थ के ज्ञाता वे ब्राह्मण जो जो आज्ञा देते उसका मैं रात-दिन निरालस्य होकर पालन करती थी ।

नानातीर्थाभिगमनं कृतं तेन महात्मना ।

तत्रत्याश्च यथाश्चित्राः श्रावयामास मां द्विजः ॥ ३२ ॥

उन महात्मा ने अनेक तीर्थों में अभिगमन किया था । उन्होंने मुझे उनके (तीर्थों के) सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कथायें सुनाया ।

सेवया मम धैर्येण चानुकूल्येन तर्पितः ।

कदाचिद्ब्राह्मणश्रेष्ठः प्रियभाषी यदात्थ माम् ॥ ३३ ॥

तद्वोऽहमभिधास्यामि शृणुत द्विजपुङ्गवाः ।

मेरी सेवा, धैर्य तथा अनुकूलता से तृप्त होकर एक समय उन प्रियभाषी ब्राह्मग ने मुझसे जो कहा उसका हे ब्राह्मणों ! मैं तुमसे वर्णन करती हूँ ।

एकदा प्रातरुत्थाय कृतमैत्रः कृताह्निकः ॥ ३४ ॥

सीते इति समाभाष्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ।
शृणु सीते मया दृष्टमाश्चर्यं कमलानने ॥ ३५ ॥

एक दिन प्रातःकाल उठकर सूर्यार्घ आदि क्रम करने के बाद उन ब्राह्मण ने 'हे सीते' ऐसा सम्बोधन देकर कहना आरम्भ किया : हे कमलानने सीते ! मैंने जो आश्चर्य देखा है उसे सुनो ।

दधिमण्डोदकाब्धेश्च परः स्वादूदकोऽब्धिकः ।
पुष्करद्वीपमावृत्य वर्तते वलयाकृतिः ॥ ३६ ॥

दधि, माँड और जलके सागर से परे सुस्वादु जल का समुद्र है जो पुष्करद्वीप को घेर कर वलयाकार स्थित है ।

पुष्करं पुष्करे दृष्टं महावह्निशिखोज्ज्वलम् ।
पत्रायुतायुतयुतं ब्रह्मणः परमासनम् ॥ ३७ ॥

वहाँ अग्निशिखा के समान प्रकाशित दस सहस्र कर्णिकायुक्त महाकमल ब्रह्माजी का परमासन है ।

तद्द्वीपवर्षयोर्मध्ये मानसोत्तरसंज्ञकः ।
मर्यादापर्वतो दैर्घ्ये चायामेऽयुतजोजनः ॥ ३८ ॥

उस द्वीप और वर्ष के मध्य में मानसोत्तर संज्ञावाला लम्बाई-चौड़ाई में दस सहस्र योजन विस्तार का मर्यादा पर्वत है ।

तच्छैलस्य चतुर्दिक्षु इन्द्रादीनां पुराणि हि ।
क्रीडार्थं निर्मितान्येषां महान्ति विश्वकर्मणा ॥ ३९ ॥

उस पर्वत की चारों दिशाओं में लोकपालों के पुर हैं जिनका विश्वकर्मा ने उनकी क्रीड़ा के लिये निर्माण किया है ।

सुमाली राक्षसश्रेष्ठ कैकसी नाम तत्सुता ।
मुनेर्विश्रवसः पत्नी सा सुत रावणद्वयम् ॥ ४० ॥
एकः सहस्रवदनो द्वितीयो दशवक्त्रकः ।
जन्मकाले सुरैरुक्तमाकाशे रावणद्वयम् ॥ ४१ ॥
लोकानां रावणाज्जातं नागयौगिकमेतयोः ।

राक्षसश्रेष्ठ सुमाली की एक कैकसी नामक कन्या थी, जिसने विश्रवा

मुनि की पत्नी हो दो रावण उत्पन्न किया, एक सहस्र मुख का और दूसरा दशमुख का। जन्मकाल में ही आकाश में देवताओं ने कह दिया था कि रावण दो हैं। लोक में दो रावण हुये हैं अतः उनका एक ही नाम था।

कनिष्ठो दशकण्ठोऽयं शितिकण्ठप्रसादतः ॥ ४२ ॥

लङ्कामधिवसत्येष धनदेन विनिर्मिताम्।

ब्रह्मणो वरदानेन त्रिलोकीमवमन्यते ॥ ४३ ॥

उनमें जो छोटा है वह शिव के प्रसाद से कुवेर की निर्मित की हुई लङ्कापुरी में निवास और ब्रह्मा के वरदान से त्रिलोकी का तिरस्कार करता है।

श्रेष्ठः सहस्रवदनो रावणो लोकरावणः।

स्वाभाविकबलेनासौ पुष्करद्वीपमाश्रितः ॥ ४४ ॥

इनमें से जो लोकों को रुलाने वाला था उसने स्वाभाविक बल से पुष्कर द्वीप का आश्रय लिया है।

सूर्याचन्द्रमसौ गृह्य क्रीडेत्कन्दुकलीलया।

कुलाचलान्समुद्गृह्य कन्दुकं क्रीडते हि सः ॥ ४५ ॥

वह चन्द्र-सूर्य को ग्रहण करके कन्दुकक्रीड़ा कर सकता है तथा कुलाचल पर्वतों को लेकर कन्दुक-क्रीड़ा करता है।

मानसोत्तरशैलस्य चतुर्दिक्षु पुराणि हि।

आच्छिद्य संगृहीतानि दिगीशानां महात्मनाम् ॥ ४६ ॥

मानस-सरोवर के उत्तर चारों ओर जो पुर हैं उनका भेदन कर उसने महातमा दिक्पालों को संगृहीत किया है।

तत्रैव रमते राजा मातामहकुलैः सह।

तत्रैन्द्री या पुरी रम्या स स्वयं तत्र तिष्ठति ॥ ४७ ॥

वहाँ वह राजा मातामह के कुलसहित रमण करता है। वहीं एक रम्य इन्द्र की पुरी भी है जहाँ वह स्वयं स्थित रहता है।

अन्यान्यन्येभ्य एवादान्मन्त्रिभ्यो राक्षसाधिपः।

विशेषतोऽलंकृता सा पुरी परमदुर्लभा ॥ ४८ ॥

जगतां सारमाकृष्य यथास्थानं सुमण्डिता ।

उस राक्षसराज ने अनेक लोगों को मन्त्रिपद प्रदान किया है। वह पुरी प्राणियों के लिये विशेष रूप से परम दुर्लभ है। जगत के सार को निकाल कर उसका निर्माण किया गया है।

चम्पकाशोकमन्दारकदलीप्रियकार्जुनैः ॥ ४९ ॥
पाटलाशोकजम्बूभिः कोविदारैश्च चन्दनैः ।
पनसैः सालतालैश्च तमालैर्देवदारुभिः ॥ ५० ॥
बकुलैः पारिजातैश्च कल्पवृक्षैरलंकृता ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ॥ ५१ ॥

वह चम्पक, अशोक, मन्दार, कदली, प्रियक, अर्जुन, पाटल, अशोक, जम्बू, कोविदार, चन्दन, पनस, साल, तमाल, ताल, देवदारु, वकुल, पारिजात तथा कल्पवृक्षों से अलंकृत और सभी ऋतुओं में पुष्पित होने वाले अन्यान्य वृक्षों से युक्त है।

दिव्यगन्धरसैर्दिव्यैः सर्वर्तुफलसंयुतैः ।
भ्रमरैः कोकिलैर्नानावर्णपक्षिभिरुज्ज्वला ॥ ५२ ॥

वहाँ दिव्य गन्धरसों से युक्त, सम्पूर्ण ऋतुओं के फलों से संयुक्त भौरें, कोयल, तथा नाना पक्षी बोल रहे हैं।

शातकौम्भमयैः कैश्चित्कैश्चिदग्निशिखोपमैः ।
नीलाञ्जननिभैश्चान्यैः शोभिता वरपादपैः ॥ ५३ ॥
दीर्घिकाः सति बहयोऽत्र जल पूर्णा महोदयाः ।
महार्हमणिसोपानाः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः ॥ ५४ ॥

कहीं सुवर्ण के बने, कहीं अग्निशिखा के समान, कहीं नीलाञ्जन के समान उज्ज्वल पादपों से शोभित पर्वत हैं। वहाँ जल की अनेक बावलियाँ हैं जिनमें बड़ी-बड़ी मणियों से जटित सीढियाँ बनी हैं।

फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः
दात्यूहगणसंघुष्टा हंससारसनादिताः ॥ ५५ ॥
तत्र तत्रावनेर्देशा वैदूर्यमणिसन्निभाः ।

शार्दूलैः परमोपेताः सुखार्थमुपकल्पिताः ॥ ५६ ॥

वहाँ पुष्पित पद्मोत्पल के वन के वन हैं जो चकवा-चकवी से शोभित और पक्षीगणों से निनादित हैं। वहाँ उस वन के देश वैदूर्यमणियों से शोभित तथा शार्दूलों से युक्त और सुख के निमित्त कल्पित हैं।

सर्वर्तुसुखदा रम्याः पुंस्कोकिलकलरवाः ।
ये वृक्षा नन्दनेऽतिष्ठन् ये च चैत्रवने स्थिताः ॥ ५७ ॥
मन्दरेऽन्येषु शैलेषु ते वृक्षास्तत्र सन्स्थिताः ।

सब ऋतुओं में सुखदायक, रम्य, पुंस्कोकिला के कलरवों से युक्त जो वृक्ष नन्दनवन में स्थित हैं, जो चैत्रवन में स्थित हैं, जो वृक्ष मन्दराचल पर स्थित हैं, वे सभी वृक्ष वहाँ स्थित हैं।

नानामणिमयी भूमिर्मुक्ताजालमयी तथा ॥ ५८ ॥
विचित्रबद्धसोपानप्रासादैरुपशोभिता ।
पुरद्वारसमाकीर्णा पुरी परमशोभना ॥ ५९ ॥

वह भूमि नानामणिमय मुक्ताजालमयी विचित्र सीढ़ियों वाले महलों से शोभित, पुरद्वारों से समाकीर्ण परम शोभनीय पुरी है।

न देवैरनुभूयेत स्वर्गिभिर्नानुभूयते ।
तत्पुरीस्थितिमाकांक्ष्य तपः कुर्वन्ति सत्तमाः ॥ ६० ॥

उसका देवता और स्वर्गी भी अनुभव नहीं कर सकते । उस पुरी में स्थिति की आकांक्षा से महातमा तपस्या करते हैं।

तस्यां सहस्रवदनो रावणो राक्षसाधिपः ।
आस्ते जगद्वशीकृत्य हेलया बाहु लीलया ॥ ६१ ॥

उसका राक्षसाधिपति सहस्रमुख रावण है जो सम्पूर्ण जगत को अपने बाहुबल से वश में करके वहाँ स्थित है।

इन्द्रादींस्त्रिदशान्सर्वान्गले बद्धा स किन्नरान् ।
गन्धर्वानन्दानवान्भीमान्सर्पान्विद्याधरांस्तथा ॥ ६२ ॥
बालक्रीडनया क्रीडन्मेरुं मन्येत सर्षपम् ।
गोष्पदं मन्यते चाब्धिं सर्वलोकांस्तृणोपमान् ॥ ६३ ॥

द्वीपांल्लोष्टसमान्वीरो न किंचिद्गणयन्दशा ।

वह इन्द्रादि देवताओं, किन्नरों, गन्धर्वो, दानवों, भयंकर सर्पो और विद्याधरों को पराजित करके उनसे बालक्रीड़ा के समान खेल करता हुआ मेरु को सरसों के समान, सागर को गौ के पद के समान, और सब लोकों का तृण के समान मानता है। द्वीपों को मिट्टी के ढेलों के समान मानता है और वीरों की कोई गणना ही नहीं करता।

स यदा सर्वलोकानां त्रासने समुपारभत् ॥ ६४ ॥

तदा पितामहोऽभ्येत्य पुलस्त्यो विश्रवास्तथा ।

न्यवारयन्यत्नस्ततं तातवत्सेति भाषकः ॥ ६५ ॥

जब उसने सब लोकों को त्रास देना आरम्भ किया तब पितामह पुलस्त्य और विश्रवा ने उपस्थित होकर 'तात, वत्स', आदि सम्बोधनों से प्रयत्नपूर्वक उसका निवारण किया।

एवं स रावणो देवि सहस्रवदनो महान् ।

पुष्करद्वीपमासाद्य वर्तते जनकात्मजे ॥ ६६ ॥

हे जनकात्मजा देवि ! इस प्रकार वह महान, सहस्रमुख रावण पुष्कर द्वीप में निवास करता है।

तस्यानुजो दशास्योऽयं लङ्कायां जानकि स्थितः ॥ ६७ ॥

हे जानकी ! उसका छोटा भाई लङ्कापुरी में निवास करता है।

चित्राणीत्यादीनि से शंसयित्वा

विप्रो मासांश्चतुरो यापयित्वा ।

राजानं मां चाशिषा योजयित्वा

जगामैकः प्रोषितस्तीर्थयात्राम् ॥ ६८ ॥

इस प्रकार और भी विचित्र कथा कह कर चार मास तक निवास करने के बाद राजा और मुझको आशीर्वाद देकर वह ब्राह्मण तीर्थयात्रा के लिये चला गया।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
सीताभाषणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादश सर्ग

रावण की सेना का निकलना

एवं स रावणो विप्राः सहस्रवदनो महान् ।
प्रोक्तस्तेन द्विजेनाहं श्रुत्वाश्चर्यं च विस्मिता ॥ १ ॥

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उस ब्राह्मण ने मुझसे सहस्रमुख रावण की कथा कही थी जिसे सुन कर मुझे महान विस्मय हुआ ।

अद्यापि तन्मम हृदि जागरूकं हि वर्तते ।
पत्या मे बाहुवीर्येण दशास्यो रावणो हतः ॥ २ ॥

अब तक वह मेरे हृदय में जागरुक हुये के समान विद्यमान है। मेरे पति ने बाहुबल से उस दशमुख रावण को मारा है ।

सानुगः ससुतामात्यः सभ्रातृकः सबान्धवः ।
मत्कृते च पुरी दग्धा सेतुर्बद्धश्च वारिधौ ॥ ३ ॥
सुग्रीवेण सहायेन तथा हनुमदादिना ।
इदं लोकोत्तरं कर्म कृतं लोकहितं महत् ॥ ४ ॥

पुत्र, अनुचर, भाई तथा बान्धवों सहित उसे मारा, मेरे लिये उसकी पुरी जलाई तथा सागर पर पुल बाँधा । सुग्रीव और हनुमानजी की सहायता लेकर उन्होंने लोकहित के लिये यह महान चमत्कारी कर्म किया है ।

तथापि हृदि मे नैतदाश्चर्यं प्रतिभाति हि ।
यदि तस्य वधं कुर्याद्रावणस्य दुरात्मनः ॥ ५ ॥
तदा सम्भाव्यते कीर्तिर्जगत्स्वास्थ्यमवाप्नुयात् ।
अतो मे हसितं विप्राः क्षमध्वं ज्वलनोपमाः ॥ ६ ॥

तथापि मेरे हृदय में यह कुछ भी आश्चर्यजनक प्रतीत नहीं होता । जब उस दुरात्मा रावण का वध करें तब इनकी कीर्त्ति फैल जायगी और जगत स्वास्थ्य प्राप्त करेगा । हे अग्नितुल्य ब्राह्मणो ! इस कारण आप मेरे हास्य को क्षमा करें ।

आकर्ण्य मुनयः सर्वे साधु साध्विति वादिनः ।
जानकीं प्रशशंसुस्ते सर्वलोकहितैषिणीम् ॥ ७ ॥

यह सुनकर सब मुनिजन धन्य-धन्य कहते हुये सब जगत की हित-कारिणी जानकी की प्रशंसा करने लगे ।

राघवो वचनं श्रुत्वा सीताया वीर्यवर्द्धनम् ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः सर्वानाज्ञापयत्प्रभुः ॥ ८ ॥

सीता के वीर्यवर्द्धक वचन को सुनकर श्रीराम सिंहनाद कर सबको उच्च स्वर से आज्ञा देने लगे ।

मुनयाऽद्यैव गन्तव्यं रावणस्य जयाय वै ।
लक्ष्मणं भरतं चैव शत्रुघ्नं चादिशत्प्रभुः ॥ ९ ॥

हे मुनियो ! आज ही हम रावण को जीतने जाते हैं । लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को प्रभु ने आज्ञा दी ।

मित्र सुग्रीव हनूमन्सर्वे जाम्बवदादयः ।
गच्छामः सहितास्तत्र सैनिकैः सह मन्त्रिभिः ॥ १० ॥

मित्र सुग्रीव हनुमान, जाम्बवान आदि और सैनिकजनों के साथ हम वहाँ जायेंगे ।

इत्याज्ञाप्य महाबाहुः सस्मार पुष्पकं रथम् ।
स्मरणादागतस्तत्र पुष्पको रथसत्तमः ॥ ११ ॥
तत्रारुहन्महावीरा रामचन्द्रपुरोगमाः ।
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्चामितद्युतिः ॥ १२ ॥

उन महाबाहु ने इस प्रकार कह कर पुष्पक विमान का स्मरण किया । स्मरण करते ही वह रथश्रेष्ठ वहाँ आ गया । उसपर पहले रामचन्द्र चढ़े, फिर सम्पूर्ण वीर, भरत, लक्ष्मण और अमितद्युति शत्रुघ्न आरूढ़ हुये ।

सुग्रीव प्रमुखाः सर्वे वानराजितकाशिनः ।
विभीषणो महाबाहुः सह रक्षोगणैः प्रभुः ॥ १३ ॥

सुग्रीव आदि को लेकर शत्रुओं को जीतने वाले वानर तथा महाबाहु विभीषण भी राक्षसों के साथ स्थित हुये ।

भ्रात्रा पित्राप्यकथनादजानन्बोधितोऽनया ।
सीतया रामकार्यार्थं निर्ययौ राघवाज्ञया ॥ १४ ॥

माता-पिता आदि से भी बिना कहे ही वे सब जानकी द्वारा प्रेरित श्रीराम की आज्ञा से सब चले ।

सुमन्त्राद्या मन्त्रिणश्च ऋषयस्ते च निर्ययुः ।
नानाशस्त्रप्रहरणास्तत्रायुयुधकलापिनः ॥ १५ ॥
मुमुचुस्ते सिंहनादं महाघोरं महाबलाः ।

सुमन्त्रादि मन्त्री और वे सब ऋषि भी वहाँ से चले । अनेक प्रकार के शस्त्रधारण करने वाले वे महाबली घोर सिंहनाद करने लगे ।

धनुःशब्देन रामस्य सिंहनादेन चैव हि ॥ १६ ॥
चचाल वसुधा शैलाश्चेलुः पेतुर्ग्रहाश्च खात् ।
नद्योऽशुष्यन्ससुद्वेलाः सागराश्च चकंपिरे ॥ १७ ॥

श्रीराम के धनुष के शब्द और सिंहनाद से पृथिवी और पर्वत चलायमान हो गये, ग्रहादि टूट कर गिरने लगे । नदियाँ सूखने लगीं, और सागर ने मर्यादा छोड़ दी ।

सुग्रीवो हनुमान्नीलो जाम्बवान्नल एव च ।
ग्रसन्त इव ते सर्वे निर्ययू रामशासनात् ॥ १८ ॥

सुग्रीव, हनुमान, नील, जाम्बवान् ये सब मानों आकाश को ग्रसते हुये चले ।

स तया सीतया सार्धं रामचन्द्रो महाबलः ।
कामगं पुष्पकं दिव्यमारुरोह धनुर्धरः ॥ १९ ॥

फिर सीता के साथ महाबली श्रीरामचन्द्र धनुषधारण किये हुये कामगामी दिव्य पुष्पक विमान पर स्थित हुये ।

पुष्पकं ते समारुह्य सर्व एव महाबलाः ।
सीतया भ्रातृभिः सार्द्धं रामचन्द्रं महाबलाः ॥ २० ॥

वे सब महाबली पुष्पक विमान में स्थित हुये । सीता और भ्राताओं सहित श्रीरामचन्द्र भी उसपर स्थित हुये ।

प्रोत्साहयन्तो वचनैर्निययुर्जितकाशिनः ।
रामाज्ञया पुष्पकं तदाकाशपथमाश्रितम् ॥ २१ ॥
मनोमारुतवेगेन क्षणेन गरुडो यथा ।
जगाम पुष्करद्वीपं यत्रास्ते मानसोत्तरः ॥ २२ ॥

वे सब शत्रुओं को जीतने वाले थे। उन सबको अपने वीरतापूर्ण वचनों से उत्साहित करते हुये श्रीराम की आज्ञा से पुष्पक विमान आकाश के आश्रित हुआ और मन, पवन तथा गरुड़ के समान वेगवान वह क्षण-मात्र में मानसोत्तर पुष्कर द्वीप में आ गया।

मानसोत्तरमासाद्य विस्मितास्ते महाबलाः ।
किं चित्रं किं चित्रमिति प्रोचुराश्चर्यलक्षणाः ॥ २३ ॥

मानस के उत्तर भाग में पहुँचकर वे महाबली विस्मित हुये और बार-बार 'यह कैसा आश्चर्यमय है' इस प्रकार कहने लगे।

राघवो भ्रातृभिः सार्द्धं सह वानरपुङ्गवैः ।
सिंहनादं ननादोच्चैर्धनुश्चापि व्यकर्षयत् ॥ २४ ॥

श्रीरामचन्द्र ने वानर और भ्राताओं के साथ सिंहनाद करके धनुष को खींचा।

स शब्दस्तुमुलो भूत्वा पृथिवीं चान्तरिक्षकम् ।
पातालविवरांश्चैव पूरयामास सर्वतः ॥ २५ ॥

उसके उस तुमुल शब्द ने पृथिवी, अन्तरिक्ष का भेदन करते हुये सब ओर से पाताल के विवर को भी पूर्ण कर दिया।

रावणः सहसोत्तस्थौ किमेतदिति सम्वदन् ।
तत्राथ राक्षसाः क्रुद्धाः सर्व एव विनिर्ययुः ॥ २६ ॥
अहो कुतः स्विच्छब्दोऽयं साधु सर्वैर्निरूप्यताम् ।

तब रावण, 'यह क्या है' ऐसा कह कर सहसा उठ बैठा। वहाँ के सब राक्षस भी क्रुद्ध होकर एक साथ निकल पड़े और बोले कि 'यह शब्द कहाँ से हो रहा है इसका पता लगाना चाहिये।'

इत्याभाष्य राक्षसेन्द्रो राक्षसेन्द्रैर्महाबलैः ॥ २७ ॥

नगरान्निर्ययौ शीघ्रं सन्दष्टोष्ठपुटो बली ।
द्वादशादित्यसङ्काशः सहस्रवदनो महान् ॥ २८ ॥

इस प्रकार वह राक्षसेन्द्र महाबली राक्षसों के साथ ओठों को चबाता हुआ शीघ्रतापूर्वक निकला। वह बारह सूर्य के समान सहस्रमुख महाबली था।

द्विसहस्रभुजोद्रिक्तो द्विसहस्रविलोचनः ।
महामेघसमाध्वानो वडवाग्निसमः क्रुधा ॥ २९ ॥
शतयोजनविस्तीर्णे रथे सूर्यसमत्विषि ।
नानायुधानि संगृह्य परिघप्रासतोमरान् ॥ ३० ॥

दो सहस्र भुजाओं और सहस्र नेत्रों वाला, महामेघ के समान, वडवाग्नि के समान क्रोध किये, शतयोजन विस्तीर्ण रथ पर, सूर्य के समान कान्तिवाला अनेक प्रकार के आयुध, परिघ, प्रास, तोमर लेकर,

भुशुण्डिः परशून्घण्टां लौह मुद्गर चक्रकम् ।
पाशांश्च विविधान्गृह्य बाणान्कर्मारमार्जितान् ॥ ३१ ॥
विपाठान्क्षुरधारांश्च अर्धचन्द्राकृतीनपि ।
नानायुधसहस्राणि नानाविधधनूंषिच ॥ ३२ ॥
प्रगृह्य सहसा प्रायाद्यत्र रामो धनुर्धरः ।

भुशुण्डी, परशु, घण्टा, लोहे के मुद्गर, चक्रपाश, तथा बाणों को ग्रहण कर, विपाठ, क्षुरधार, अर्धचन्द्राकार सहस्रों आयुधों तथा अनेक प्रकार के धनुष लेकर सहसा वहाँ आया जहाँ धनुर्धर रामचन्द्र थे।

लोचनैः क्रोधसन्दीप्तैरुल्काभिरिव दीपितः ॥ ३३ ॥
कोयमित्यब्रवीत्क्रोधानलं प्रोद्वमन्निव ।
सिंहनादं मम पुरे रिपुत्वाद्विससर्ज ह ॥ ३४ ॥

उसके क्रोध से भरे नेत्र उल्का के समान प्रदीप्त हुये। क्रोध से अग्नि का वमन करते हुये उसने कहा : 'यह कौन है जो शत्रु के समान मेरी पुरी में सिंहनाद करता है।

ममापि रिपुरस्तीति दुर्यशः समुपस्थितम् ।

इन्द्राद्याः ककुभां नाथा भृत्याः प्राणपरीप्सया ॥ ३५ ॥

मेरे भी शत्रु हैं, यह मेरे लिये अत्यन्त दुर्यश की बात उपस्थित हुई है। इन्द्रादि लोकपाल तो मेरे दासवत हैं।

पातालविवरे स्वर्गं स्वर्गे पातालमेककम्।
करोमि सहसैवाहं मानवानां तथैकताम् ॥ ३६ ॥

मैं पाताल के छिद्रों में स्वर्ग को, स्वर्ग में पाताल को और मनुष्यों को भी एकत्र कर सकता हूँ।

मेरुप्रभृतिशैलांश्च चूर्णयाम्यणुसंख्यया।
देवलोकं नृणां कुर्यान्नृलोकं त्रिदिवौकसाम् ॥ ३७ ॥

मेरु प्रभृति पर्वतों को मैं चूर्ण कर सकता हूँ। देवलोक को मनुष्यलोक और मनुष्यलोक को देवलोक बना सकता हूँ।

उद्धृत्य पृथिवीं छिंद्यामनन्तं नखराग्रकैः।
ब्रह्मा मां वारयामास सांत्वयन्प्रियभाषितैः ॥ ३८ ॥

पृथिवी और शेष को नखाग्र से उद्धृत कर सकता हूँ और करता ही था कि ब्रह्माजी ने आकर इस कार्य से मुझको निवारित किया।

अन्यथा राक्षसमृते नारक्षं जगतीतले।
सूर्याचन्द्रमसौ भूत्वा तिथिप्रणयनं त्वहम् ॥ ३९ ॥

अन्यथा मैं पृथिवी पर राक्षसों के अतिरिक्त अन्य किसी को न रहने देता। सूर्य-चन्द्रमा होकर मैं ही तिथियों का प्रणायन करता।

बलाहकत्वमिन्द्रत्वं पृथ्वीसेकादिकाः क्रियाः।
कुर्यां यमत्वं वह्नित्वं वरुणत्वं धनेशताम् ॥ ४० ॥

मेघत्व, इन्द्रत्व, पृथिवी के सिंचन आदि की क्रिया, यमत्व, अग्नित्व, वरुणत्व, और कुबेरत्व मैं ही कर सकता हूँ।

इत्येवं बहुधा गर्जन्नाजगामान्तिकं हरेः।
सेनाध्यक्षा राक्षसेन्द्रा राज्ञा सार्द्धं समागताः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार बहुविध गर्जन करता हुआ सेनाध्यक्षों के साथ वह राक्षसों का राजा श्रीहरि के समीप आया।

नानाप्रहरणोपेता नानारथपदातिनः ।

एकैकस्यापि पर्याप्ता जगती नेति मन्महे ॥ ४२ ॥

वे सब नाना प्रकार के आयुध लिये, नाना रथियों और पदातियों से युक्त ऐसे एक से एक वीर थे जिनके बल के आगे जगत में कोई टिक नहीं सकता था ।

केषाश्चिदपि नामानि भारद्वाज निबोध मे ।

कोटिशो मनसः पूर्णः शलः पालो हलीमुखः ॥ ४३ ॥

पिच्छलः कौणपश्चक्रः कालवेगः प्रकालकः ।

हिरण्यबाहुः शरणः कक्षकः कालदन्तकः ॥ ४४ ॥

हे भरद्वाज ! उनमें से कुछ के नाम मुझसे सुनो : कोटिश, मनस, पूर्ण, शल, पाल, हलीमुख, पिच्छल, कौणप, चक्र, कालवेग, प्रकालक, हिरण्य-बाहु, शरण, कक्षक, कालदन्तक,

पुच्छाण्डको मण्डलकः पिण्डसेक्ता रभेणकः ।

उच्छिखः करभो भद्रो विश्वजेता विरोहणः ॥ ४५ ॥

शिली शलकरो मूकः सुकुमारः प्ररेषणः ।

मुद्गरः शशरोमा च सुरोमा च महाहनुः ॥ ४६ ॥

पुच्छाण्डक, मण्डलक, पिण्डसेक्ता, रभेणक, उच्छिख, करभ, भद्र, विश्वजेता, विरोहण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्ररेषण, मुद्गर, शशरोमा, सुरोमा, महाहनु,

पारावतः पारियात्रः पाण्डुरो रोहिणः कृशः ।

विहङ्गः शरभो मोदः प्रमोदः सहतापनः ॥ ४७ ॥

कृकरः कुण्डलो वेणी वेणीस्कन्धः कुमारकः ।

बाहुकः शङ्खवेगश्च धूर्तकः पातपातकौ ॥ ४८ ॥

पारावत, पारियात्र, पाण्डुर, रोहिण, कृश, विहङ्ग, शरभ, मोद, प्रमोद, सहतापन, कृकर, कुण्डलवेणी, वेणीस्कन्ध, कुमारक, बाहुक, शङ्खवेग, धूर्तक, पात, पातक,

शंकुकर्णः पिटरकः कुटीरमुखसेचकौ ।

पूर्णाङ्गदः पूर्णमुखः प्रभाषः शकुलिर्हरिः ॥ ४९ ॥

अमाहिटः कामठकः सुषेणो मानसो व्ययः ।

भैरवो मुण्डदेवाङ्गः पिशङ्गश्चोडपालकः ॥ ५० ॥

शंकुकर्ण, पिटरक, कुटीरमुख, सेचक, पूर्णाङ्गद, पूर्णमुख प्रभाष, शकुलि, हरि, अमाहिठ, कामठक, सुषेण, मानस व्यय, भैरव, देवाङ्ग, पिशङ्ग, उडपालक,

ऋषभो वेगवान्नाम पिण्डारकमहाहनू ।

रक्ताङ्गः सर्वसारङ्गः समृद्धः पाटवाकसौः ॥ ५१ ॥

वराहको रावणकः सुचित्रश्चित्रवेगिकः ।

पराशरस्तरुणिको मणिस्कन्धस्तथारुणिः ॥ ५२ ॥

ऋषभ, वेगवान्, पिण्डारक, महाहनु, रक्ताङ्ग, सर्वसारङ्ग, समृद्ध, पाट, वासक, वराहक, रावणक, सुचित्र, चित्रवेगिक, पराशर, तरुणिक, मणिस्कन्ध, अरुणि,

सेनाध्यक्षा महाब्रह्मन्कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ।

प्राधान्येन बहुत्वात्तु न सर्वे परिकीर्तिताः ॥ ५३ ॥

हे ब्रह्मन् ! ये सब महाकीर्तिवान सेनाध्यक्ष कहे हैं। प्रधान भी बहुत हैं, विस्तार के कारण सब का वर्णन नहीं किया है।

न शक्याः परिसंख्यातुं ये युद्धाय समागताः ।

नीलरक्ता सिता घोरा महाकाया महाबलाः ॥ ५४ ॥

सप्तशीर्षाद्विशीर्षाश्च पञ्चशीर्षास्तथापरे ।

कालानलमहाघोरा हुताशसमविग्रहाः ॥ ५५ ॥

जो युद्ध करने आये थे उनकी संख्या का उल्लेख अशक्य है। नीलरक्त, सित, घोर, महाकाय, महाबली, सात शिरवाले, दो शिर के, पांच शिर के, कालानल के समान महाघोर, अग्नि के समान शरीर वाले,

महाकाया महावेगाः शैलशृंगसमुच्छ्रयाः ।

योजनायामविस्तीर्णाद्वियोजनसमुच्छ्रयाः ॥ ५६ ॥

महाकाय, महावेगवान्, शैलशृङ्ग के समान ऊंचे, एक योजन चौड़े, दो योजन ऊंचे,

कामरूपाः कामबला दीप्तानलसमत्विषः ।
अन्ये च बहवः शूराः शूलपट्टिशधारिणः ॥ ५७ ॥
दिव्यप्रहरणोपेता नानावेषविभूषिताः ।
शृणु नामानि चान्येषां येऽन्ये रावणसैनिकाः ॥ ५८ ॥

कामरूपी, कामबली, दीप्त अनल के समान कान्तिवाले और भी बहुत से शूल, पट्टिश लिये, दिव्य आयुधों से युक्त नाना वेष से विभूषित, रावण के सेनापतियों के नाम सुनो :

शंकुकर्णो निकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ।
अनन्तो द्वादशभुजस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ ॥ ५९ ॥
घ्राणश्रवाः कपिस्कन्धः काञ्चनाक्षो जलन्धमः ।
अक्षसन्तर्दनो ब्रह्मन्कुनदीकस्तमोऽभ्रकृत् ॥ ६० ॥

शंकुकर्ण, निकुम्भ, पद्म, कुमुद, अनन्त, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्ण, घ्राणश्रवा, कपिस्कन्ध, काञ्चनाक्ष, जलन्धम, अक्षसन्तर्दन, ब्रह्मन्कुनदीक, तमोभृक,

एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजराभिधः ।
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राख्य क्षितिकम्पनः ॥ ६१ ॥
पुण्यनामानुनामा च सुवक्त्रः प्रियदर्शनः ।
परिश्रितः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः ॥ ६२ ॥

एकाक्ष, द्वादशाक्ष, एकजरा, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्र, क्षितिकम्पन, पुण्यनाम, अनुनाम, सुवक्त्र, प्रिदर्शन परिश्रित, कोकनद, प्रियमाल्यानुलेपन,

अजोदरो गजशिराः स्कन्धाक्षः शतलोचनः ।
ज्वालाजिह्वः करालश्च सितकेशो जटी हरिः ॥ ६३ ॥
चतुर्दंष्ट्रोष्ठजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः ।
विकृताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः ॥ ६४ ॥

अजोदर, गजशिर, स्कन्धाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व, कराल, सितकेश, जटी, हरि, चतुर्दंष्ट्र, ओष्ठजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रवा, विकृताक्ष धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन,

उदाराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभः ।
समुद्रवेगो विप्रेन्द्रः शैलकम्पी तथैव च ॥ ६५ ॥
वृषमेषप्रवाहश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ।
धूम्रश्वेतः कलिङ्गश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा ॥ ६६ ॥

उदराक्ष, रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रद, समुद्रवेग, विप्रेन्द्र, शैलकम्पी, वृष-मेष-प्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्रश्वेत, कलिङ्ग, सिद्धार्थ, वरद,

प्रियकश्चैकनन्दश्च गोनन्दश्च प्रतापवान् ।
आनन्दश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा ॥ ६७ ॥
क्षेमबाहुः सुबाहुश्च सिद्धपात्रश्च सुव्रतः ।
गोव्रजः कनकापीडो महापारिषदेश्वरः ॥ ६८ ॥

प्रियक, एकनन्द, गोनन्द, प्रतापवान, आनन्द, प्रमोद, स्वस्तिक, ध्रुवक, क्षेमबाहु, सुबाहु, सिद्धपात्र, सुव्रत, गोव्रज, कनकापीड, महापरिषदेश्वर,

गायनो दमनश्चैवः बाणः खड्गश्च वीर्यवान् ।
वैताली गतिताली च तथा कथकवातिकौ ॥ ६९ ॥
हंसजः पङ्कदिग्धाङ्गः समुद्रोन्मादनश्च ह ।
रणोत्कटः प्रहासश्च वेतसिद्धश्च नन्दकः ॥ ७० ॥

गायन, दमन, बाण, खड्ग, वीर्यवान, वैताली, गतिताली, कथक, वातिक, हंसज, पंकदिग्धाङ्ग, समुद्र, उन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, वेतसिद्ध, नन्दक—

एते पुरा रावणसैन्यपाला नानायुधप्राहरणा रणेषु ।
हंसेषु मेषेषु वृषेषु वीरा रामं प्रतस्थुः कृतसिंहनादाः ॥ ७१ ॥

ये सब रावण के वीर सेनापति युद्ध में नाना प्रकार के प्रहार करने वाले आयुध लेकर हंस, मेष, वृष के ऊपर चढ़ कर सिंहनाद करते हुये श्रीराम से युद्ध करने के लिये चले ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
रावणसैन्यनिर्याणं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंश सर्ग

सहस्रमुखी रावण के पुत्रों का युद्ध के लिये निकलना

रावणस्यौरसाः पुत्रास्सह राक्षसपुङ्गवैः ।
नानाप्रहरणोपेता दुद्रुवू राघवं रणे ॥ १ ॥

रावण के औरस पुत्रों ने महाराक्षसों के साथ अनेक प्रकार के आयुधों से युक्त होकर रणभूमि में राघव पर धावा किया।

नामान्येषां प्रवक्ष्यामि भरद्वाज शृणुष्व मे ।
कालकण्ठः प्रभाषश्च तथा कुम्भाण्डको परः ॥ २ ॥
कालकक्ष शितश्चैव भूतलोन्मथनस्तथा ।
यज्ञबाहुः प्रबाहुश्च देवयाजी च सोमपः ॥ ३ ॥

मैं उन सब के नाम कहता हूँ, हे भरद्वाज ! उन्हें मुझसे सुनो : कालकण्ठ, प्रभाष, कुम्भाण्डक, कालकक्ष, शित, भूतल, उन्मथन, यज्ञबाहु, प्रबाहु, देवयाजी, और सोमप।

मञ्जालश्च महातेजाः क्रथः क्राथोवसुव्रतः ।
तुहरश्च तुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ॥ ४ ॥
मधुरः सुप्रासादश्च किरीटश्च महाबलः ।
वसनो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ॥ ५ ॥

महातेजस्वी, मञ्जाल, क्रथ, क्राथ, वसुव्रत, तुहर, तुहार, वीर्यवान्, चित्रदेव, मधुर, सुप्रसाद, किरीट, महाबली, बसन, मधुवर्ण और कलशोदर,

धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् ।
श्वेतवक्त्रः सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ॥ ६ ॥

धर्मद, मन्मथकर, वीर्यवान्, सूचीवक्त्र, श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, चारुवक्त्र, पाण्डुर,

दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ।
अचलः कालकाक्षश्च बालेशो बालभक्षकः ॥ ७ ॥

संचानकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः ।
लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च कुम्भकः ॥ ८ ॥

दण्डबाहु, सुबाहु, रज, कोकिलक, अचल, कालकाक्ष, बालेश, बालभक्षक, संचानक, कोकनद, गृध्रपद, जम्बूक, लोहाजवक्त्र, जवन और कुम्भवक्त्र,

मुण्डग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च कुञ्जरः ।
एते रावणपुत्राश्च महावीरपराक्रमाः ॥ ९ ॥

मुण्डग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र और कुञ्जर—ये सब रावण के पुत्र महावीर और पराक्रमी थे ।

बाहुशब्दैः सिंहनादैः पूरयन्तो दिशो दश ।
एषां सैन्यसहस्राणां सहस्राण्यर्बुदानि च ॥ १० ॥
नानाकृतिवयोरूपा विविधायुधपाणयः ।

बाहुशब्द और सिंहनाद से दशों दिशाओं को पूर्ण करते हुये, अनेक प्रकार की आकृति, वय और रूपवाली इनकी सहस्रों और अरबों की सेना हाथ में विविध प्रकार के आयुध लिये,

कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च सर्पजम्भकवक्त्रकाः ॥ ११ ॥
गोमायुमुखवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ।
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ॥ १२ ॥

कूर्म और कुक्कुट वक्त्र, सर्प-जम्भक वक्त्र, शृगालमुख, शशक और उलूकमुख, गधे और ऊंट जैसे मुख वाले तथा वराह मुख

मनुष्यमेषवक्त्राश्च शृगालवदनास्तथा ।
मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च केचन ॥ १३ ॥

मनुष्य और मेष वक्त्र, शृगाल मुख, मार्जार-शशवक्त्र, और कोई दीर्घवक्त्र,

नकुलोलूकवक्त्रश्च काकवक्त्रास्तथापरे ।
आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ॥ १४ ॥

नकुल और उलूकवक्त्र तथा काकवक्त्र, आखु और बभ्रुकमुख तथा मयूरमुख

मत्स्यमेषाननाश्चैव अजाविमहिषाननाः ।

ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ॥ १५ ॥

मत्स्य और मेष मुखवाले, अज और महिष मुख वाले, ऋक्ष और शार्दूल वक्त्र, द्वीपि और सिंहमुखी,

भीमा गजाननाश्चैव तथा नक्रमुखास्तथा ।

गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ॥ १६ ॥

भयंकर हाथी जैसे मुखवाले तथा नक्रमुख, गो, खर, ऊँट, वृष, और दंशमुखवाले,

महाजठरपादांगाः स्तवक्राक्षाश्च दुर्मुखाः ।

पारावतमुखाश्चान्ये तथा वृषमुखाः परे ॥ १७ ॥

महाजठर पादाङ्ग और स्तवक्राक्ष, दुर्मुख, पारावत मुख तथा वृषमुख

कोकिलाभाननाश्चान्ये श्येनतित्तिरिकाननाः ।

कृकलासमुखाश्चैव विरजोऽम्बरधारिणः ॥ १८ ॥

कोकिल जैसे मुख वाले तथा अन्य श्येन और तित्तिर मुख वाले, कृकलास मुख, श्वेत वस्त्र धारण किये

व्यालवक्त्राः शुकमुखाश्चण्डवक्त्राः शुभाननाः ।

आशीविषाश्चीरधरा गोनासावरणास्तथा ॥ १९ ॥

व्यालमुख, शुकमुख और चण्डमुख, शुभानन, आशीविष, चीरधारी, गोनासावरण,

स्थूलोदराः कृशाङ्गाश्च स्थूलाङ्गाश्च कृशोदराः ।

ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणाः ॥ २० ॥

स्थूलोदर, कृशाङ्ग, कृशोदर, ह्रस्वग्रीव महाकर्ण, अनेक व्याल के भूषण वाले,

गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ।

स्कन्धेमुखा द्विजश्रेष्ठ तथा ह्युदरतोमुखाः ॥ २१ ॥

गजेन्द्रचर्म का वस्त्र पहने, कालेचर्म का वस्त्र पहने, स्कन्ध में मुखवाले, तथा हे द्विजश्रेष्ठ ! उदर में मुखवाले,

पृष्ठमुखा हनुमुखास्तथा जङ्घामुखास्तथा ।
पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा ॥ २२ ॥

पीठ में मुखवाले, हनुमुख, जङ्घामुख, पार्श्वानन, और नानास्थानों में मुखवाले,

तथा कीटपतङ्गानां सदृशास्या महाबलाः ।
नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः ॥ २३ ॥

कीट-पतङ्गों के समान मुखवाले, महाबली, नानाप्रकार के भयंकर मुखवाले, और बहुबाहु तथा बहुशिर

नानावक्षोभुजाः केचिद्भुजङ्गवदनाः परे ।
खड्गमुखा वृकमुखा अपरे गरुडाननाः ॥ २४ ॥

नाना वक्ष और भुजावाले, कुछ भुजङ्ग मुख, खड्ग मुख, वृकमुख और गरुडानन,

चोलसंवृतगात्राश्च नानाफलकवाससः ।
नानावेषधराश्चान्ये नानामाल्यानुलेपनाः ॥ २५ ॥

कुरतों से ढंके शरीर वाले, नाना प्रकार के फलकवस्त्र वाले, नाना वेषधारी, नानाप्रकार की मालाओं और अनुलेपनों से युक्त

नानावस्त्रधराश्चान्ये चर्मवासस एव च ।
उष्णीषिणो मुकुटिनः कम्बुग्रीवाः सुवर्च्चसः ॥ २६ ॥

अन्य नाना वस्त्र और चर्मधारण किये, पगड़ी और मुकुट वाले, शंख जैसी ग्रीवा वाले और सुन्दर कान्ति वाले,

किरीटिनः पञ्चशिखास्तथा कठिनमूर्द्धजाः ।
त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखा अपि ॥ २७ ॥

किरीटधारी, पाँच शिखा वाले, कठिन मूर्द्धा वाले, तीन शिखा वाले, दो और सात शिखा वाले,

शिखण्डिनोऽमुकुटिनो मुण्डाश्च जटिलास्तथा ।
चित्रमालाधराः केचित्केचिद्रोमाननास्तथा ॥ २८ ॥

शिखण्डी, मुकुटरहित, मुण्डे, जटिल, चित्र मालाधारी और कोई-कोई रोम से युक्त मुख वाले,

विग्रहैकवशा नित्यमजेयाः सुरसत्तमैः ।
कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठा निरूदराः ॥ २९ ॥

युद्ध में देवताओं से नित्य अजेय, काले, मांसरहित मुख वाले, दीर्घ-पृष्ठ और निरूदर

दीर्घपृष्ठा स्थूलपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ।
महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः ॥ ३० ॥

दीर्घपृष्ठ, स्थूलपृष्ठ, प्रलम्बोदर, मेहन, महाभुज, ह्रस्वभुज, ह्रस्वगात्र और वामन

कुब्जाश्च ह्रस्वजङ्घाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ।
हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथापरे ॥ ३१ ॥

कुबड़े, ह्रस्वजङ्घ, हाथी जैसे कान और सर वाले, हस्तिनासा, कूर्म-नासा, वृकनासा,

वारणेन्द्रनिभाश्चान्ये दीप्तिमन्तः स्वलंकृताः ।
पिङ्गाक्षाः शंकुकर्णाश्च वक्रनासास्तथापरे ॥ ३२ ॥

कोई बाणेन्द्र के समान, अन्य दीप्तिमान्, अलंकृत, पिङ्गाक्ष, शंकुकर्ण, वक्रनास,

पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलोष्ठा हरिमूर्द्धजाः ।
नानापादोष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ॥ ३३ ॥

पृथुदंष्ट्र, महादंष्ट्र, स्थूलोष्ठ, हरिमूर्द्धज, नाना पाद, ओष्ठ और दांत वाले, अनेक हाथ और सर वाले

नानाचर्मभिराच्छन्ना नानावासाश्च सुव्रत ।
हृष्टाः परिपतन्ति स्म महापरिघ बाहवः ॥ ३४ ॥

हे सुव्रत ! अनेक चर्मों से आच्छादित, अनेक प्रकार के वस्त्रधारी, महापरिघ के समान भुजा वाले, प्रसन्न होकर युद्ध करने को चले ।

दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः ।

पिंगाक्षा नीलकण्ठाश्च स्वर्णकर्णाश्च सुव्रत ॥ ३५ ॥

दीर्घग्रीवा, दीर्घनख, दीर्घचरण, दीर्घ सर और भुजा वाले, पिङ्गाक्ष, नीलकण्ठ और हे सुव्रत ! स्वर्णकर्ण

वृकोदरनिभाः केचित्केचिदंजनसं निभाः ।

श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिंगाक्षाश्चतथापरे ॥ ३६ ॥

कोई वृकोदर के समान, कोई अञ्जन पर्वत के समान, कोई श्वेताक्ष, लोहितग्रीव और पिङ्गाक्ष

कल्माषबाहवा विप्र चित्रवर्णाश्च केचन ।

चामरापीडकनिभाः श्वेत लोहितकान्तयः ॥ ३७ ॥

हे विप्र ! कोई कल्माषबाहु, कोई चित्रवर्ण, चामरापीडक के समान, श्वेत, लोहित कान्ति वाले

नानावर्णाः सुवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ।

पाशोद्यतकराः केचिद्व्यादितास्याः खराननाः ॥ ३८ ॥

अनेक वर्ण, सुवर्ण और मयूर के समान कान्ति वाले, कोई हाथ में पाश उठाये, कोई मुख फैलाये, कोई खरानन,

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।

असिमुद्गरहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च केचन ॥ ३९ ॥

शतघ्नी, चक्र हाथ में लिये, मुसलपाणि, कोई हाथ में असि और मुद्गर लिये, कोई दण्डहस्त,

गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः ।

आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महौजसः ॥ ४० ॥

गदा-भुशुण्डि हाथ में लिये, तोमर लिये, तथा विविध प्रकार के भयंकर आयुध हाथ में लिये ओजस्वी महात्मा

महाबला महावेगा असंख्याता विनिर्ययुः ।

घण्टाजालपिनद्धांगा ननृतुस्ते रणाजिरे ॥ ४१ ॥

महाबली, महावेगवान्, असंख्य चले । घण्टाजाल से नद्धाङ्ग वे रण-भूमि में नृत्य करने लगे ।

कोटिशो विकृतरूक्षभाषिणो यातुधानगणसैन्यपालकाः ।
दुद्रुवू रघुकुलावतं सकं गृह्णधावनपोथवादिन ॥ ४२ ॥

करोड़ों विकृत और रुक्षभाषी राक्षसों की सेनाओं के पालक श्रीराम के ऊपर धावमान हुये तथा 'पकड़ो-पकड़ो' इस प्रकार कठोर वचन बोलने लगे ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
रावणपुत्रनिर्याणं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशति सर्ग

संकुलयुद्ध वर्णन

धनूंषि च विधुन्वानस्ततो वैश्रवणानुजः ।
कोऽयं किमर्थमायात इति चिन्तापरोऽभवत् ॥ १ ॥

तब उस वैश्रवण का अनुज (रावण) धनुष को कम्पायमान करता हुआ यह चिन्ता करने लगा कि 'यह कौन है और किस लिये आया है' ।

ततो गगनसम्भूता वाणी समुपद्यत ।
भो रावण महावीर्य रामोऽयं समुपागतः ॥ २ ॥
राघवोऽयमयोध्याया राजा धर्मस्वरूपधृक् ।
लङ्कायां निहतो येन दाराकर्षी तवानुजः ॥ ३ ॥

तब उस समय आकाशवाणी हुई कि 'हे महावीर रावण ! यह रामचन्द्र आये हैं । ये धर्मस्वरूपधारी राम अयोध्या के राजा हैं । ये धर्म के स्वरूप हैं जिन्होंने लङ्का में तुम्हारे छोटे भाई का वध किया है ।

त्वद्वधार्थमिहायातो विभीषण वसुप्रदः ।
भ्रातृभिर्वानरैर्ऋक्षै राक्षसैर्मानुषैर्युतः ॥ ४ ॥

ये विभीषण को राज्य देने वाले हैं । भाई, वानर, ऋक्ष, राक्षस, मनुष्यों के साथ तुम्हारा वध करने आये हैं ।'

पिंगाक्षा नीलकण्ठाश्च स्वर्णकर्णाश्च सुव्रत ॥ ३५ ॥

दीर्घग्रीवा, दीघनख, दीघचरण, दीर्घ सर और भुजा वाले, पिङ्गाक्ष, नीलकण्ठ और हे सुव्रत ! स्वर्गकर्ग

वृकोदरनिभाः केचित्केचिदंजनसं निभाः ।

श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिंगाक्षाश्चतथापरे ॥ ३६ ॥

कोई वृकोदर के समान, कोई अञ्जन पर्वत के समान, कोई श्वेताक्ष, लोहितग्रीव और पिङ्गाक्ष

कल्माषबाहवा विप्र चित्रवर्णाश्च केचन ।

चामरापीडकनिभाः श्वेत लोहितकान्तयः ॥ ३७ ॥

हे विप्र ! कोई कल्माषबाहु, कोई चित्रवर्ण, चामरापीडक के समान, श्वेत, लोहित कान्ति वाले

नानावर्णाः सुवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ।

पाशोद्यतकराः केचिद्व्यादितास्याः खराननाः ॥ ३८ ॥

अनेक वर्ण, सुवर्ण और मयूर के समान कान्ति वाले, कोई हाथ में पाश उठाये, कोई मुख फैलाये, कोई खरानन,

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।

असिमुद्गरहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च केचन ॥ ३९ ॥

शतघ्नी, चक्र हाथ में लिये, मुसलपाणि, कोई हाथ में असि और मुद्गर लिये, कोई दण्डहस्त,

गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः ।

आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महौजसः ॥ ४० ॥

गदा-भुशुण्डि हाथ में लिये, तोमर लिये, तथा विविध प्रकार के भयंकर आयुध हाथ में लिये ओजस्वी महात्मा

महाबला महावेगा असंख्याता विनिर्ययुः ।

घण्टाजालपिनद्धांगा ननृतुस्ते रणाजिरे ॥ ४१ ॥

महाबली, महावेगवान्, असंख्य चले । घण्टाजाल से नद्धाङ्ग वे रण-भूमि में नृत्य करने लगे ।

कोटिशो विकृतरूक्षभाषिणो यातुधानगणसैन्यपालकाः ।
दुद्रुवू रघुकुलावतं सकं गृह्यताधावनपोथवादिन ॥ ४२ ॥

करोड़ों विकृत और रूक्षभाषी राक्षसों की सेनाओं के पालक श्रीराम के ऊपर धावमान हुये तथा 'पकड़ो-पकड़ो' इस प्रकार कठोर वचन बोलने लगे ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
रावणपुत्रनिर्याणं नामैकोनविंश: सर्ग: ॥ १९ ॥

विंशति सर्ग

संकुलयुद्ध वर्णन

धनूंषि च विधुन्वानस्ततो वैश्रवणानुजः ।
कोऽयं किमर्थमायात इति चिन्तापरोऽभवत् ॥ १ ॥

तब उस वैश्रवण का अनुज (रावण) धनुष को कम्पायमान करता हुआ यह चिन्ता करने लगा कि 'यह कौन है और किस लिये आया है' ।

ततो गगनसम्भूता वाणी समुपद्यत ।
भो रावण महावीर्य रामोऽयं समुपागतः ॥ २ ॥
राघवोऽयमयोध्याया राजा धर्मस्वरूपधृक् ।
लङ्कायां निहतो येन दाराकर्षी तवानुजः ॥ ३ ॥

तब उस समय आकाशवाणी हुई कि 'हे महावीर रावण ! यह रामचन्द्र आये हैं । ये धर्मस्वरूपधारी राम अयोध्या के राजा हैं । ये धर्म के स्वरूप हैं जिन्होंने लङ्का में तुम्हारे छोटे भाई का वध किया है ।

त्वद्वधार्थमिहायातो विभीषण वसुप्रदः ।
भ्रातृभिर्वानरैर्ऋक्षै राक्षसैर्मानुषैर्युतः ॥ ४ ॥

ये विभीषण को राज्य देने वाले हैं । भाई, वानर, ऋक्ष, राक्षस, मनुष्यों के साथ तुम्हारा वध करने आये हैं ।'

श्रुत्वा ह्यमानुषं वाक्यं रावणो लोकरावणः ।
क्रोधमाहारयामास द्विगुणं मुनिपुङ्गव ॥ ५ ॥
हन्यतां वध्यतामेष मानुषो रिपुसंज्ञितः ।
मम विश्वजितः साक्षाद्रणाय समुपस्थितः ॥ ६ ॥

इस अमानुषी भाषा को सुन कर लोकों को रुलाने वाला रावण द्विगुणित क्रोध करता हुआ बोला : 'इस मनुष्यसंज्ञक शत्रु को मारो, इसका वध कर डालो । यह मुझ विश्व को जीतने वाले से साक्षात युद्ध करने के लिये उपस्थित हुआ है ।'

इत्युक्त्वा बाणजालानि चक्रपर्वततोमरान् ।
चिक्षेप सहसा रक्षः पुष्पकोपरि सुव्रतः ॥ ७ ॥

ऐसा कह कर, हे सुव्रत ! वह राक्षस बाणसमूह, चक्र, पर्वत, तोमर आदि पुष्पक के ऊपर छोड़ने लगा ।

राक्षसी सा चमूर्घोरा वानरानृक्षमानुषान् ।
चखादकांश्चिद्परान्पोथयामासदर्पितान् ॥ ८ ॥

उसकी वह घोर राक्षसी सेना वानर, ऋक्ष, मनुष्य में से कुछ को खाने तथा अन्य को नष्ट करने लगी ।

सा च शाखामृगी सेना राघवस्य च मानुषी ।
रावणस्यानुगान्वीराञ्जघान बाणपर्वतैः ॥ ९ ॥

और राघव की वह मानुषी तथा वानरी सेना रावण के अनुगामी वीरों को बाणों और पर्वतों से नष्ट करने लगी ।

तेऽन्योन्यवधमिच्छन्तो युयुधुः सैनिकोत्तमाः ।
पेतुर्मम्लुश्च मुमुहू राक्षसा वानरा नराः ॥ १० ॥

उस सेना के लोग परस्पर एक-दूसरे के वध की इच्छा से युद्ध करने लगे और वहाँ राक्षस तथा वानर गिरने और बारम्बार मलिन होने लगे ।

ततो रामो महाबाहुर्भरतो लक्ष्मणस्तथा ।
शत्रुघ्नो हनुमान्वीरः सुग्रीवो जाम्बवांस्तथा ॥ ११ ॥
अन्ये च नलनीलाद्या विभीषणपुरोगमाः ।

युयुधुस्ते महाघोरं महाघोरे रणाजिरे ॥ १२ ॥

तब महाबाहु राम, भरत तथा लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, वीर सुग्रीव तथा जाम्ब्वान् और नल, नील, विभीषण आदि आगे बढ़ कर महाघोर युद्ध करने लगे।

निर्जग्मुश्च विनेदुश्च चिक्रीडुश्चैव राक्षसाः ।

जहृषुश्च महात्मानः संग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ १३ ॥

उत्कृष्टा स्फोटितैर्नादैश्चचालेव च मेदिनी ।

रक्षसां सिंहनादैश्च परिपूर्ण नभः स्थलम् ॥ १४ ॥

वे निकल कर तुमुल घोष करते हुये राक्षसों से क्रीडा करने लगे तथा संग्राम से न लोटने वाले वे महात्मा प्रसन्न हुये। उनके उत्कृष्ट स्फोट और नाद से पृथिवी चलायमान होने लगी। राक्षसों के सिंहनाद से आकाशस्थल परिपूर्ण हो गया।

ते प्रायुध्यंत मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः ।

प्रययुर्वानरानीकं समुद्यतशिलायुधम् ॥ १५ ॥

वे महाबली राक्षस प्रसन्न होकर युद्ध करने लगे और शिला हाथ में लेकर वानरी सेना की ओर बढ़े।

युयोध राक्षसं सैन्यं नरराक्षसवानरैः ।

रहस्त्यश्वरथसम्बाधं किङ्किणीशतनादितम् ॥ १६ ॥

राक्षसों की सेना नर, राक्षस और वानरों से युद्ध करने लगी। हाथी, घोड़े, रथ की संबाधा और सैकड़ों किङ्किणियों के शब्द होने लगे।

नीलजीमूतसङ्काशैः समुद्यतशिलायुधैः ।

दीप्तानलरविप्रख्यैर्नैर्ऋतैः सर्वतो वृतम् ॥ १७ ॥

नील मेघ के समान शिला-आयुध उठाये दीप्त अग्नि और सूर्य के समान सब दिशा राक्षसों से भर गई।

तद्वीक्ष्य राक्षसबलं संरब्धाश्च प्लवङ्गमाः ।

क्रुद्धं तद्राक्षसं सैन्यं जघ्नुर्द्रुमशिलायुधैः ॥ १८ ॥

उस राक्षसी सेना के बल को देख कर वानर संगठित हो क्रोधपूर्वक उस राक्षसी सेना को द्रुमों और शिलाओं के आयुधों से मारने लगे।

ते पादशिलाशैलैस्तां चक्रुर्वृष्टिमुत्तमाम् ।
वृक्षौघैर्वज्रसङ्काशैर्हरयो भीमविक्रमाः ॥ १९ ॥
शिखरैः शिखराभांस्ते यातुधानानमर्दयन् ।
निर्जघ्नुःसमरे क्रुद्धा हरयो राक्षसर्षभान् ॥ २० ॥

वे वृक्ष, शिला, शैलों की वर्षा करने लगे। भयंकर पराक्रमी वे वानर वृक्षों से युद्ध करने लगे और शिखरों से शिखरों के समान राक्षसों का ताड़न करने लगे। इस प्रकार क्रोध कर वे वानर दैत्यों का ताडन करने लगे।

केचिद्रथगतान्वीरान्गजवाजिस्थितानपि ।
निर्जघ्नुः सहसाप्लुत्य यातुधानान्प्लवङ्गमाः ॥ २१ ॥

कोई रथ में था, कुछ वीर हाथी-घोड़ों पर स्थित थे—वे सभी वानर कूद-कूद कर उन राक्षसों को मारने लगे।

शैलश्रृंगनिभास्ते तु मुष्टिनिष्क्रान्त लोचनाः ।
वेपु पेतुश्च नेदुश्च ततो राक्षसपुङ्गवाः ॥ २२ ॥

वे पर्वत शृङ्ग के समान अपने मुष्टि प्रहार से ही उनके नेत्र निकाल डालते थे जिससे कम्पित और नाद करते हुये वे राक्षसश्रेष्ठ गिर पड़ते थे।

ततः शूलैश्च वज्रैश्च विमुष्टैर्हरिपुङ्गवैः ।
मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणितप्लुता ॥ २३ ॥
विकीर्णैः पर्वताग्रैश्च रक्षोभिरुपमर्द्दितैः ।
आक्षिप्ताः क्षिप्यमाणाश्च भग्नशेषाश्च वानराः ॥ २४ ॥

फिर शूल, वज्र और मुष्टियों से वानरों द्वारा वह भूमि रुधिर से व्याप्त हो गई। पर्वताग्रों से विकीर्ण हुये, राक्षसों से मर्दित हुये आक्षिप्त और क्षिप्यमान होकर सभी वानर भग्न हो गये।

रथेन रथिनं चापि राक्षसं राक्षसेन च ।
हयेन च हयं केचित्पिपिषुर्धरणी तले ॥ २५ ॥

रथी को रथी, राक्षस को राक्षस, घोड़ों को घोड़े पृथिवी तल में पीसने लगे।

वानरान्वानरैरेव जघ्नुर्घोरा हि राक्षसाः ।
राक्षसान्राक्षसैरेव पिपिषुर्वानरा युधि ॥ २६ ॥

वानरों से वानरों को घोर रूप से राक्षस ताडन करने लगे और राक्षसों को राक्षसों द्वारा पीसने लगे ।

आक्षिप्य च शिला जघ्नू राक्षसा वानरस्तथा ।
तेषामाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नुस्तानपि वानराः ॥ २७ ॥

शिलाओं से राक्षस वानरों का मर्दन करने लगे और उनके शस्त्रों का छेदन कर वानर उनको मारने लगे ।

निर्जघ्नुः शैलशिखैर्विभिन्नाश्च परस्परम् ।
सिंहनादं विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ॥ २८ ॥

परस्पर शैल-शिखरों का प्रहार करके रणभूमि में वानर और राक्षस सिंहनाद और तुमुल घोष करने लगे ।

छिन्नचर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैः कृताः ।
सुस्राव रुधिरं तेभ्यः स्रवतः पर्वतादिव ॥ २९ ॥

वानरों ने राक्षसों को छिन्न चर्म तरकस जैसा कर दिया जिससे उनका रुधिर पर्वतों के झरनों के समान बहने लगा ।

तस्मिंस्तदा संयति सम्प्रवृत्ते कोलाहले राक्षसराजधान्याम् ।
संहृष्यमाणेषु च वानरेषु निपात्यमानेषु च राक्षसेषु ॥ ३० ॥

तव उस संग्राम में प्रवृत्त होने से राक्षस की राजधानी में वानरों के प्रसन्न होने और राक्षसों को मारने से बड़ा कोलाहल होने लगा ।

प्रभज्य मानेषु महाबलेषु महर्षयो भूतगणाश्च नेदु ।
तेनापि सर्वे हरयः प्रहृष्टा विनेदुराक्ष्वेडितसिंहनादैः ॥ ३१ ॥

उनकी महान सेना के भग्न होने से महर्षि और भूतगण शब्द करने लगे । इससे सब वानर प्रसन्न हुये और भुजा फटकारते हुये सिंहनाद करने लगे ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
संकुलयुद्धंनाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशति सर्ग

रावण द्वारा श्रीराम की सेना का विक्षेप

ततो रथं मारुततुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य ।
स रावणो रामबलं प्रहृष्टो विवेश मीनो हि यथार्णवौघम् ॥ १ ॥

तब एक मारुत-तुल वेगवान रथ पर आरूढ़ हो तीक्ष्ण शक्ति को ग्रहण कर वह रावण श्रीराम की सेना में इस प्रकार प्रविष्ट हुआ जैसे सागर में मीन प्रवेश करती है ।

सवानरान्हीनबलान्निरीक्ष्य प्राणेन दीप्तेन रराज राजा ।
एकक्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा निहन्तुमैच्छन्नरवानरांश्च ॥ २ ॥

तब उन वानरों को हीन बल देख कर वह राजा रावण प्राणों के दीप्त होने पर एक ही क्षण में वानरी शत्रुसेना को मारने की इच्छा करने लगा ।

मनसा चिन्तयामास सहस्र कन्धरः स्वराट् ।
एते क्षुद्राः समायाताः प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३ ॥
द्वीपान्तरं महत्प्राप्य मम युद्धाभिकांक्षिणः ।
किं स्यान्म महतैः क्षुद्रैर्नरराक्षसवानरैः ॥ ४ ॥

वह सहस्रमुख रावण मन में विचार करने लगा कि ये क्षुद्र अपने प्राणों और धन को त्याग कर यहाँ आये हैं तथा द्वीपान्तर में प्राप्त होकर मुझसे युद्ध की इच्छा करने हैं। इन क्षुद्र नर, राक्षस और वानरों को मारने से मुझे क्या मिलेगा ।

यस्माद्देशात्समायातास्तं देशं प्रापयाम्यहम् ।
क्षुल्लकेषु शराघातं न प्रशंसन्ति पण्डिताः ॥ ५ ॥

ये जिस देश से आये हैं उसी देश को मैं इन्हें प्राप्त किये देता हूँ । क्षुद्रों पर शराघात करने की पण्डितजन प्रशंसा नहीं करते ।

इति सञ्चिन्त्य धनुषावायव्यास्त्रं युयोज ह ।
तेनास्त्रेण नरा ऋक्षा वानरा राक्षसा हि ते ॥ ६ ॥
यस्माद्यस्मात्समायातास्तं तं देशं प्रयापिताः ।

गलहस्तिक्रया विप्र चोरान्राजभटा इव ॥ ७ ॥

ऐसा विचार कर उसने धनुष पर वायव्यास्त्र का संयोजन किया। उस अस्त्र से वानर-राक्षस-ऋक्ष आदि जो लोग थे वह सब जिस-जिस देश से आये थे उस-उस देश को उसी प्रकार चले गये जैसे चोरों को राजसेवक बलात् गलहस्त देकर निकालते हैं।

ते सर्वे स्वगृहं प्राप्ता अस्त्रवेगेन विस्मिताः।

क्व स्थिताः क्व समायातामन्यन्त स्वप्न एव तैः ॥ ८ ॥

वे सब अस्त्र के वेग से अपने-अपने घर आकर 'हम कहाँ थे और कहाँ आ गये' इस प्रकार का आश्चर्य करते हुये इसे स्वप्न मानने लगे।

प्रलयानिलवेगेन अस्त्रेण वञ्चिता भृशम्।

भरतो लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नो हनुमांस्तथा ॥ ९ ॥

प्रलय-पवन के वेग से भरत और लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा हनुमान, अत्यन्त आहत हुये।

सुग्रीवनलनीलाद्या हरयोऽनिलरंहस।

विभीषणपुरोगाश्च राक्षसाः क्रूरविक्रमाः ॥ १० ॥

सुग्रीव, नलनीलादि वानर, विभीषण आदि क्रूर पराक्रमी राक्षस भी पवनवेग से आहत हुये।

वानराश्च नरा ऋक्षा राक्षसा अक्षता गृहम्।

प्राप्यातिविस्मिताः सर्वे शोचन्तो राममेवपि ॥ ११ ॥

वानर, नर, रीछ, राक्षस, सब अक्षत अपने घर प्राप्त हो अत्यन्त विस्मित हो श्रीराम के निमित्त चिन्ता करने लगे।

पुष्करे पुष्पकेतिष्ठन्ससीतो राघवः परम्।

आस्ते स्म नास्त्रवेगोऽयं रामं चालयितुं क्षमः ॥ १२ ॥

केवल सीता सहित श्रीराम ही पुष्कर में पुष्पक विमान पर स्थित रहे—वह अस्त्र श्रीराम को चलायमान करने में समर्थ नहीं हो सका।

महर्षयोऽपि तत्रासन्किमेतदिति विस्मिताः।

सापि सीता महाभागा तत्रास्ते स्म शुचिस्मिता ॥ १३ ॥

जो महर्षिगण थे वे भी विस्मित हुये कि 'यह क्या हुआ।' वह महाभागा सीता वहाँ मनोहर हास्युक्त हो वहीं स्थित रहीं।

गन्धर्वनगराकारं दृष्ट्वा रामबलं महत् ।
स्वस्तीतिवादिनः सौम्यशान्तिं जेपुर्महर्षयः ॥ १४ ॥

गन्धर्व नगर के समान उस राम की सेना को न देख कर स्वस्ति-स्वस्ति कह कर ऋषिगण शान्तिजप करने लगे।

अन्तरिक्षचराः सर्वे हाहाकारं प्रचक्रिरे ।
देवा अग्निमुखा विप्र किं कृतं रावणेन हि ॥ १५ ॥

अन्तरिक्षचारी जीव हाहाकार करने लगे। अग्निमुखादि देवता कहने लगे कि रावण ने यह क्या किया।

गरुडस्थो यदा विष्णू रावणं हन्तुमागत ।
लीलया लवणाम्भोधौ क्षिप्तो विष्णुः सनातनः ॥ १६ ॥
साट्टहासं विनद्योच्चैः रक्षसा वामपाणिना ।

जिस समय गरुड पर स्थित हो विष्णु रावण को मारने आये थे तो उसने लीला से ही उन्हें लवण सागर की ओर क्षिप्त कर दिया था। उस राक्षस ने अट्टहास करते हुये बाये हाथ से ही यह कार्य किया था।

ततः प्रभृति देवाश्च गन्धर्वाः किन्नरा नराः ॥ १७ ॥
गन्धमस्य न गृह्णन्ति शार्दूलस्येव जम्बुकाः ।
सोऽयं विष्णुर्दशरथाज्जातो देवः सनातनः ॥ १८ ॥

उस दिन से देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, उसकी गन्धतक ग्रहण नहीं करते हैं, वैसे ही जैसे शार्दूल की गन्ध को जम्बुक नहीं ग्रहण करते। वही सनातन देव विष्णु दशरथ से उत्पन्न हुये हैं।

अस्माकं भागधेयेन रामो जयतु रावणम् ।
परस्परं सुराः सर्वे वदन्तोऽन्तर्हिता स्थिताः ॥ १९ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित सब देवता परस्पर कहने लगे कि हमारे भाग्य से रामचन्द्र रावण को जीतें।

ननर्द च सहस्रास्याः क्षुद्रं मत्वा स राघवम् ।
विसिष्मिये च रामोऽपि तद्दृष्ट्वा कर्म दुष्करम् ॥ २० ॥
क्रोधमाहारयामास रावणस्य वधं प्रति ।
ततः किलकिलाशब्दं चक्रू राक्षसपुङ्गवाः ॥ २१ ॥

और राघव (रामचन्द्र) को क्षुद्र मान कर रावण गर्जना करने लगा । उसके इस दुष्कर कर्म को देख कर राम को विस्मय हुआ और उन्होंने रावण का वध करने के लिये क्रोध किया । तब राक्षस किलकिला शब्द करने लगे ।

स राघवः पद्मपलाशलोचनो जज्वाल कोपेन द्विषज्जयेषणः ।
रामं प्रहर्तुं न शशाक मेदिनी चकंपिरे वारिधयो ग्रहा अपि ॥२२॥

तब कमललोचन राघव शत्रु को जीतने के निमित्त क्रोध से जल उठे । इधर जब वह राम पर प्रहार करने में समर्थ न हुआ तब पृथिवी, सागर और सब ग्रह कम्पित हो उठे ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
रामसैन्यविक्षेपणं नामकैविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशति सर्ग

श्रीराम का मूर्च्छित होना

विनर्दंतं रिपुं दृष्ट्वा रामः शत्रुनिबर्हणः ।
जज्वाल च स कोपेन राक्षसां सहजो रिपुः ॥ १ ॥
विचकर्ष धनुः श्रेष्ठ प्रलयानलसंनिभम् ।
वेगेन बाणांश्चिक्षेप रक्षसां मर्मसु प्रभुः ॥ २ ॥

शत्रुनाशी श्रीराम शत्रु को गर्जना करते देख, राक्षसों के वे स्वाभाविक शत्रु, कोप से जल उठे । प्रलय की अग्नि के समान उस धनुष श्रेष्ठ को खींच कर राक्षसों के मर्मस्थान में प्रभु बाण प्रहार करने लगे,

तिलशः खण्डयन्ति स्म बाणा रक्षसपुङ्गवान् ।
कदा धनुषि सन्धत्ते कदा विसृजति प्रभुः ॥ ३ ॥
नान्तरं ददृशे कैश्चिच्छिन्नाः स्युररयः परम् ।
जघान राक्षसान्रामो रुद्रः पशुगणानिव ॥ ४ ॥

और बाणों से राक्षसश्रेष्ठों को खण्ड-खण्ड करने लगे। वे कब धनुष पर बाण का संधान करते, कब उसे छोड़ते इसमें कुछ भी अन्तर नहीं दिखाई पड़ता था और शत्रु क्षीण होते चले जाते थे। राम ने राक्षसों का इस प्रकार वध किया जैसे रुद्र पशुओं का संहार करते हैं।

तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्म कृतं रामेण रावणः ।
अनीकाग्रं समासाद्य युयुधे राघवेण हि ॥ ५ ॥

राम के इस दुष्कर कर्म को देख कर रावण सेना के आगे आकर राघव के साथ युद्ध करने लगा।

रे रे राक्षससेनान्यः प्रेक्षका इव तिष्ठत ।
अहमेको हनिष्यामि नरमाकस्मिकं रिपुम् ॥ ६ ॥
अद्य निर्मानवां पृथ्वीं निर्देवं त्रिदिवं तथा ।
करिष्याम्यहमेवैकः शोषयिष्यामि वारिधीन् ॥ ७ ॥
पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि पातयिष्यामि वै ग्रहान् ।
इत्युक्त्वा राक्षसश्रेष्ठो रामं योद्धुमथाह्वयत् ॥ ८ ॥

अरे राक्षसी सेना के लोगों! तुम क्या देखते हुये स्थित हो। मैं इस अकस्मात आये शत्रु का अकेले ही वध करूँगा। मैं आज पृथिवी को मानवों से रहित कर डालूंगा, त्रिदिव को देवतारहित करदूंगा, और सागर को सोख लूंगा। पर्वतों को चूर्ण करके ग्रहों को गिरा दूंगा। इस प्रकार कह कर वह राक्षसश्रेष्ठ युद्ध के लिये राम का आह्वान करने लगा।

त्वामद्य खड्गेनाच्छिद्य तर्पयिष्यामि चानुगान् ।
नेयं लङ्कापुरी राम नाहञ्च दशकन्धरः ॥ ९ ॥
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया रघुनन्दन ।
कपित्थमिव काकुत्स्थ करी मदकरः किल ॥ १० ॥

आज तुमको खड्ग से छेदन कर अपने अनुचरों को तृप्त कर दूंगा। हे राम ! यह न तो लङ्कापुरी है और न मैं दशकन्धर हूँ। मैं गदा से तुम्हारे सर पर प्रहार करूंगा जिससे वह कैंत (एक फल विशेष) की भाँति अथवा मदवाले हाथी के समान गिरेगा।

इत्युक्त्वा रावणो युद्धं रामेण सह चारभत् ।
तदभूद्द्वैरथं युद्धं बलिवासवयोरिव ॥ ११ ॥

इस प्रकार कह कर रावण ने श्रीराम के साथ युद्ध करना आरम्भ किया। तब उन दोनों के बीच बलि और वासव के युद्ध के समान द्वैरथ युद्ध होने लगा।

रावणं प्राप्य रामोऽपि परं हर्षमुपागमत् ।
तदभूदद्भुतं युद्धं द्वयोर्वै रोमहर्षणम् ॥ १२ ॥

रावण को प्राप्त कर श्रीराम भी परम प्रसन्न हुये। तब उन दोनों का अद्भूत रोमहर्षक युद्ध होने लगा।

रामस्य च महाबाहोर्बलिनो रावणस्य च ।
गान्धर्वेण च गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः ॥ १३ ॥

महाबाहु राम और बली रावण का गन्धर्व तथा दव आदि अस्त्रों से युद्ध होने लगा।

अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ।
अस्त्रयुद्धे च परमो रावणो राक्षसाधिपः ॥ १४ ॥
ससर्ज परमक्रुद्धः पन्नगास्त्रं स राघवे ।
ते रावणधनुर्मुक्ताः शराः काञ्चनभूषिताः ॥ १५ ॥
अभ्यवर्षन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ।
ते सर्पवदना घोरा वमन्तो ज्वलनं मुखैः ॥ १६ ॥

परमास्त्रविद् राम ने राक्षसराज के अस्त्रों को नष्ट कर दिया। अस्त्र-युद्ध में परमप्रवीण राक्षसों के अधिपति रावण ने भी अत्यन्त क्रुद्ध हो राघव के ऊपर पन्नगास्त्र का प्रहार किया जिससे रावण के धनुष से छूटे हुये सुवर्णभूषित बाण राम के ऊपर महाविषैले सर्प बन कर गिरने लगे और वे घोर सर्प मुख से अग्नि का वमन करते थे।

राममेवाभ्यवर्त्तन्त व्यादितास्या भयावहाः ।

तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्तभोगैर्महाविषैः ॥ १७ ॥

वे महाबली सर्प, जो वासुकी के समान दीप्ताङ्ग और महाविषैले थे, मुख फैलाये हुये श्रीराम की ओर धावमान हुये ।

दिशश्च विदिशश्चैव समन्तादावृता भृशम् ।

रामः सम्पततो दृष्ट्वा पन्नगांस्तान्सहस्रशः ॥ १८ ॥

सौपर्णमस्त्रं तद्घोरं पुनः प्रावर्तयद्रणे ।

तब दिशाओं और विदिशाओं को सब ओर से व्याप्त करते हुये सर्पों को सब ओर धावमान देख कर राम ने युद्ध में घोर गरुडास्त्र का स्मरण किया ।

रामेण च शरा मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ १९ ॥

सुपर्णाः काञ्चना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ।

ते ताञ्छत्रुशराञ्जघ्नुः सर्परूपान्महाविषान् ॥ २० ॥

राम के वे सुवर्ण पंखवाले शिला पर तीक्ष्ण किये हुये बाण सुवर्ण के सर्पशत्रु गरुड होकर सब ओर विचरण करते हुये रावण के महाविषैले सर्पों का नाश करने लगे ।

सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ।

अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥ २१ ॥

राम के विशिख, सुपर्णवत् कामरूपी बाणों से अपने अस्त्र के प्रतिहत हो जाने से राक्षसपति रावण क्रुद्ध हो उठा ।

अभ्यवर्षत्तदा रामं घोराभिश्चाश्मवृष्टिभिः ।

ततः शरसहस्रेण पुनरक्लिष्टकारिणम् ॥ २२ ॥

रामबाणानभ्यहनद्घोराभिः शरवृष्टिभिः ।

विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणाः पितरस्तथा ॥ २३ ॥

तब वह राम के ऊपर घोर पत्थरों की वर्षा करने लगा । फिर वह अक्लिष्ट कर्मकारी सहस्रों बाणों की घोर वर्षा करके राम के बाणों को नष्ट करने लगा । देव, गन्धर्व, चारण और पितर इसे देखकर दुःखी हुये ।

राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ।
रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावण राहुणा ॥ २४ ॥

राम को व्याकुल देख कर सिद्धों और परमर्षियों को ऐसा प्रतीत हुआ मानो चन्द्रमा को राहु ग्रसित कर रहा हो ।

प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ।
समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजाना माहते रतः ॥ २५ ॥
सधूमः परिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ।
उत्पपात ततः क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् ॥ २६ ॥

उस समय प्रजापति का नक्षत्र बुध शशिप्रिया रोहिणी पर आक्रमण कर स्थित हुआ था जिससे प्रजा का अहित होता है । समुद्र जलने लगा और उससे धूआँ निकलने लगा । तब वह रावण मानो सूर्य का स्पर्श करता हुआ ऊपर को कूदा ।

नष्टरूपश्च परुषो मन्दरश्मिर्दिवाकरः ।
अदृश्यत कवन्धांकः समेतो धूमकेतुना ॥ २७ ॥
ऋक्षाश्वरवनिर्घोषा गगने पुरुषाधमाः ।
औत्पातिकानि नर्दतः समन्तात्परिचक्रमुः ॥ २८ ॥

उस समय सूर्य नष्टपौरुष और मन्दरश्मि हो गया । कबन्धों सहित धूमकेतु दिखाई पड़ने लगे । आकाश में नक्षत्रों का तीक्ष्ण शब्द होने लगा । चारों ओर भयंकर उत्पात दिखाई पड़ने लगे ।

रामोऽपि बद्ध्वा भ्रुकुटिं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
क्रोधं चकार सुभृशं निर्दहन्निव राक्षसम् ॥ २९ ॥

रामचन्द्र भी भृकुटि चढ़ाये क्रोध से लाल नेत्र किये मानो राक्षस को भस्म करते हुये से क्रोध करने लगे ।

तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकम्पत मही तदा ॥ ३० ॥

बुद्धिमान राम के उस क्रुद्ध मुख को देख कर सब भूत त्रस्त हो उठे और धरती काँपने लगी ।

सिंहशार्दूलमाङ्छैलः प्रजज्वालाकुलद्रुमः ।
बभूव चातिक्षुभितः समुद्र इव पर्वसु ॥ ३१ ॥

सिंह-शार्दूल सहित पर्वत और कुलवृक्ष जल उठे और पर्वत अत्यन्त क्षुभित समुद्र के समान हो गये ।

लङ्कायां रावणवधे यं प्रायुंक्त शरं प्रभुः ।
जग्राह तं शरं दीप्तं निःसन्तमिवोरगम् ॥ ३२ ॥

लङ्का में रावणवध के निमित्त प्रभु ने जिस बाण का प्रयोग किया था उसी बाण को, फुफकारते हुये सर्प के समान प्रभु ने ग्रहण किया ।

यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः ।
ब्रह्मदत्तं महाबाणं यमाह युधि तद्वधे ॥ ३३ ॥

उस बाण को पहले महर्षि अगस्त्यजी ने दिया था । उस ब्रह्मदत्त महाबाण को उन्होंने युद्ध के लिये ग्रहण किया ।

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्णमिन्द्रद्यमिततेजसा ।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रैलोक्यजयकांक्षिणः ॥ ३४ ॥

उसका ब्रह्माजी ने निर्माण किया था और इन्द्रादि ने उसे अपना तेज प्रदान किया था । त्रिलोकी के जय की इच्छा करनेवाले इन्द्र को वह बाण दिया गया था ।

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ॥ ३५ ॥
पर्वस्वपि च विन्यस्ता लोकपाला महौजसः ।
धनदो वरुणश्चैव पाशहस्तस्तथान्तकः ॥ ३६ ॥

जिसके पंख में पवन, फल में अग्नि और सूर्य थे, जिसका शरीर आकाशमय और गौरव मेरु-मन्दराचल के समान था । जिसकी ग्रन्थियों में लोकपाल, कुबेर, वरुण पाश हाथ में लिये यमराज स्थित थे,

जाज्वल्यमानं वपुषा सपुंखं हेमभूषितम् ।
तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसा ॥ ३७ ॥

वह शरीर से प्रकाशमान, सुवर्ण के पंख से भूषित और तेज में सूर्य के समान सब भूतों में श्रेष्ठ था ।

सधूममिव कालाग्निं दीप्यमानं रविं यथा ।
रथनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥ ३८ ॥

धूमयुक्त कालाग्नि के समान, प्रकाश में सूर्य के समान, रथों और अश्वों का शीघ्र भेदन करने वाला,

परिघाणां सहस्राणां गिरीणां चैव भेदनम् ।
नानारुधिरसिक्तांगं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ॥ ३९ ॥

सहस्रों परिघ और पर्वतों का भेदन करने वाला, नाना रुधिरों से सिक्ताङ्ग और मेद से आच्छादित अत्यन्त दारुण था ।

कालाभं सुमहानादं नानाशक्तिविनाशनम् ।
शत्रूणां त्रासजननं सपक्षमिव पन्नगम् ॥ ४० ॥

काल के समान, महानाद से नानाशक्तियों का विनाश करने वाला, शत्रुओं को त्रास देने वाला, पंखयुक्त सर्प के समान था ।

काकगृध्रबकानां च गोमायुवृकरक्षसाम् ।
नित्यं भक्ष्यप्रदं युद्धे राक्षसानां भयावहम् ॥ ४१ ॥
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रकर्षकरमात्मनः ।
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाभुजः ॥ ४२ ॥

काक, गृध्र, बक, गोमायु, वृक, तथा राक्षसों को नित्य भक्षण करने वाले, राक्षसों के लिये भयावह, शत्रुओं की कीर्ति का हरण करने वाले उस बाण को राम ने अपने उत्कर्ष के लिये अभिमन्त्रित करके निकाला ।

वेदप्रोक्तेन विधिना कुण्डलीकृत्य कार्मुकम् ।
स रावणाय तं वेगाच्चिक्षेप शरमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

वेदोक्त विधान से धनुष पर चढ़ा कर उस श्रेष्ठ बाण को बड़े वेग-पूर्वक रावण पर छोड़ा ।

स सायको धनुर्मुक्तो हन्तुं रामेण रावणम् ।
धूमपूर्वं प्रजज्वाल प्राप्य वायुपथं महान् ॥ ४४ ॥

छोड़ा हुआ वह बाण पहले धूमयुक्त हो जल उठा और फिर वायु के मार्ग को प्राप्त होकर चला ।

तं वज्रमिव दुर्धर्षं वज्रपाणिविसर्जितम् ।
कृतान्तकमिवावार्यं रावणो वीक्ष्य तत्पुरः ॥ ४५ ॥
हुंकृत्य किल जग्राह बाणं वामेन पाणिना ।
ततस्तं जानुनाकृष्य बभंज राक्षसाधिपः ॥ ४६ ॥

इन्द्र के हाथ से छोड़े हुये वज्र के समान, महादुर्धर्ष काल के समान निवारण करने के अयोग्य उस बाण को देख कर रावण ने हुँकार करते हुये बायें हाथ से ग्रहण कर लिया तथा जाँघ से खींच कर उस राक्षसपति ने उसे तोड़ दिया ।

भग्ने तस्मिञ्छरे रामो विमना इव तस्थिवान् ।
सहस्रकन्धरः क्रुद्धः क्षुरम्प्रगृह्य सायकम् ॥ ४७ ॥
वव्याध राघवं वक्षः सर्वप्राणेन राक्षसः ।

उस बाण के भग्न होने से रामचन्द्र विमन होकर स्थित हुये । तब क्रुद्ध हो उस सहस्रकन्धर (सहस्रमुख) राक्षस ने एक तीक्ष्ण बाण को ग्रहण कर सम्पूर्णबल से राघव के वक्ष को बीध दिया ।

वक्षो निर्भिद्य स शरो रामस्य सुमहात्मनः ॥ ४८ ॥
भित्त्वा महीं च सहसा पाताल तलमाविशत् ।
ततो रामो महाबाहुः पपात पुष्पकोपरि ॥ ४९ ॥
निःसंज्ञा निश्चलश्चासीद्धाहा भूतानि चक्रिरे ।
प्राकम्पत मही सर्वा सपर्वतवनाब्धिका ।
ऋषयः कान्दिशीकास्ते हा राम इति वादिनः ॥ ५० ॥

वह बाण महात्मा राम के वक्ष का भेदन करता हुआ पृथिवी का भेदन कर पाताल में प्रवेश कर गया । तब महाबाहु राम मूर्च्छित होकर पुष्पक में ही गिर कर निश्चल और अचेत हो गये । तब सभी प्राणी हाहाकार करने लगे । सब पर्वत और वनोंसहित धरती कांपने लगी, और सभी ऋषिगण 'हा राम' इस प्रकार का शब्द करने लगे ।

दशशतवदनो जितारिरुग्रोरणशिरसि प्रननर्त सानुयात्रः ।
गगनतलगता निपेतुरुल्काः प्रलयमिवापि च मेनिरे जनौघाः ॥५१॥

शत्रुओं को जीतने वाला सहस्रमुख रावण रण में नृत्य करने लगा, आकाश से उल्कापात होने लगा, और सब प्राणियों ने समझा कि अब प्रलय हो जायगा।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
रामस्वप्नायितं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशति सर्ग

जानकी द्वारा सहस्रमुख रावण का वध

रामं तथाविधं दृष्ट्वा मुनयो भयविह्वलाः।
हाहाकारं प्रकुर्वतः शान्तिं जेपुश्च केचन ॥ १ ॥

श्रीराम को इस प्रकार देख कर मुनिजन भयविह्वल हो उठे और कुछ तो हाहाकार कर शान्तिपाठ करने लगे।

तदा तु मुनिभिर्दृष्टा सीता प्रहसितानना।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे सीतां प्रोचुर्महर्षयः ॥ २ ॥

उस समय सीता के हास्ययुक्त मुख को देख कर वसिष्ठ आदि ऋषियों ने सीता से कहा :

सीते कथं श्रावितोऽयं रावणं राघव स्त्वया।
समुत्पन्नो विपाकोऽयं घोरो जनकनन्दिनि ॥ ३ ॥
क्व गता भ्रातरः सर्वे क्व गता वानरर्षभाः।
मन्त्रिणः क्व गता भद्रे रामस्य किमुपस्थितम् ॥ ४ ॥

'हे सीते! तुमने क्यों इस रावण की कथा को सुनाया। हे जनकनन्दिनी! उसी का यह घोर फल उत्पन्न हुआ है। सब भ्राता और वानर न जाने कहाँ गये। हे भद्रे! सब मन्त्री कहाँ गये? राम को क्या हो गया है?'

श्रुत्वैतद्वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
रामं तथाविधं दृष्ट्वा शयानं पुष्पकोपरि ॥ ५ ॥

पुण्डरीकनिभे नेत्रे निमील्य रणमूर्द्धनि ।
आलिंग्य चोरसा सुप्तं प्रियामिव धनुः शरम् ॥ ६ ॥

उन मुनियों के इस वचन को सुन कर और राम को पुष्पक पर मूर्च्छित पड़ा देख कर, धनुषबाण लिये मूर्च्छित अपने पति का आलिङ्गन कर, अपने कमल जैसे नेत्रों को रणस्थल में मीचकर,

नर्दन्तं राक्षसं चापि महाबलपराक्रमम् ।
साट्टहासं विनद्योच्चैः सीता जनकनन्दिनी ॥ ७ ॥
स्वरूपं प्रजहौ देवी महाविकटरूपिणी ।
क्षुत्क्षामा कोटराक्षी च चक्रभ्रमितलोचना ॥ ८ ॥

और महाबल-पराक्रम से युक्त राक्षस को शब्द करता देख कर जनकनन्दिनी सीता ने ऊँचे स्वर से अट्टहास किया और अपने पूर्वरूप का त्याग कर, महाविकट रूप धारण कर, भूख से व्याकुल कोटराक्षी, चक्र के समान भ्रमितलोचना

दीर्घजङ्घा महारावा मुण्डमालाविभूषणा ।
अस्थिकिंकिणिका भीमा भीमवेगपराक्रमा ॥ ९ ॥
खरस्वरा महाघोरा विकृता विकृतानना ।
चतुर्भुजा दीर्घतुण्डा शिरोऽलंकरणोज्ज्वला ॥ १० ॥

दीर्घजङ्घा, महाशब्द वाली, मुण्डमाला से विभूषित, अस्थियों की किङ्किनी पहने, भीमवेग-पराकमा, भीमा, तीक्ष्ण स्वर करने वाली, महाघोर, विकृत और विकृत मुख, चार भुजाओं वाली, दीर्घतुण्डा, और सर पर जाज्वल्यमान अलंकरण धारण किये

ललज्जिह्वा जटाजूटैर्मण्डिता चण्डरोमिका ।
प्रलयाम्भोदकालाभा घण्टापाशविधारिणी ॥ ११ ॥
अवस्कंद्यरथात्तूर्णं खड्गखर्परधारिणी ।
श्येनीव रावणरथे पपात निमिषान्तरे ॥ १२ ॥

लपलपाती जिह्वा, जटाजूट से मण्डित, चण्डरोमिका, प्रलयसिन्धु तथा काल के समान, घण्टा-पाश धारण करने वाली, पुष्पक से शीघ्रता

से उतर कर खड्ग, खर्पर धारण किये श्येनी के समान रावण के रथ पर टूट पड़ीं।

शिरांसि रावणस्याशु निमेषान्तरमात्रतः।
खड्गेन तस्य चिच्छेद सहस्राणीह लीलया ॥ १३ ॥

उन्होंने एक निमेषमात्र में ही लीला से रावण के सहस्र सरों को खड्ग से काट डाला।

अन्येषां योद्धृवीराणां शिरांसि नखरेण हि।
भिन्ना निपातयामास भूमौ तेषां दुरात्मनाम् ॥ १४ ॥

अन्य वीर योद्धाओं के सरों को भी नख से विदीर्ण कर उन दुरात्माओं को पृथिवी पर गिरा दिया।

केषांचित्पाटयामास नख कोष्ठानि जानकी।
खड्गेन चाच्छिनत्कांश्चित्क्रूरान्पादांश्च चिच्छिदे ॥ १५ ॥

जानकी ने किन्हीं के कोष्ठ को नखों से चीर डाला, किन्हीं के पाँव आदि अंगों को खड्ग से काट डाला।

खण्डं खण्डं चकारान्यांस्तिलशः कांश्चिदेव हि।
अन्त्राण्यन्यस्याचकर्ष पादाघातेन कांश्चन ॥ १६ ॥

कुछ अन्य के अंगों को खड्ग से तिल के बराबर काट कर खण्ड-खण्ड कर दिया और कुछ पर पाँव से आघात कर उनकी आँते खींच लीं।

पार्श्वेन निजघानान्यान्पार्ष्णिनान्यानपोथयत्।
कांश्चिच्छरीरवातेन दृष्ट्वाप्यन्यानपातयत् ॥ १७ ॥

वे पार्श्वभाग से इधर-उधर के राक्षसों पर प्रहार करने लगीं और किन्हीं को शरीर वेग के पवन द्वारा नष्ट कर दिया।

प्रलयं कुर्वती सीता राक्षसानां भयंकरी।
निजघानाट्टहासेन कांश्चित्पृष्ठे द्विधाकरोत् ॥ १८ ॥

भयङ्करी सीता राक्षसों के लिये प्रलय करने लगीं। कुछ को अट्टहास करते हुये उन्होंने पृष्ठभाग से दो टुकड़े करके मार डाला।

कांश्चित्केशान्समाकृष्य निष्पिपेष महीतले।

सारथान्सगजान्साश्वान्सगदासहतोमरान् ॥ १९ ॥
कांश्चिद्योधान्समाकृष्य मज्जयामास वारिधौ ।
गले चोद्दध्य केषाञ्चित्प्राणाञ्जग्राह जानकी ॥ २० ॥

किन्हीं के केश पकड़ कर पृथिवी पर पीस डाला । कुछ को रथ, हाथी, घोड़े और तोमरोंसहित खींच कर सागर में डुबा दिया । कुछ का गला दबाकर जानकी ने प्राण हरण कर लिया ।

केषाञ्चित्स्कन्ध आरुह्य शिरांस्युत्पाटितानि हि ।
हुंकारेणाट्टहासेन काषाञ्चित्प्राणानहापयत् ॥ २१ ॥

किन्हीं के कन्धों पर कूद कर उसका सर तोड़ दिया । किन्हीं का अट्टहास और हुंकार से प्राण ले लिया ।

कांश्चित्प्रचूर्ण्य वदनं पशुमारममारयत् ।
तान्सर्वान्निमिषेणैव निहत्य जनकात्मजा ॥ २२ ॥

किन्हीं के सर को चूर कर पशुओं के समान मार डाला । इस प्रकार एक निमेषमात्र में जनकात्मजा ने उन सबको मार डाला ।

तेषामन्त्रेण शिरसां मालाभिः कृतभूषणा ।
रावणस्य शिरांस्युग्राण्यादाय रणमूर्द्धनि ॥ २३ ॥
कन्दुकक्रीडनं कर्तुं मनश्चक्रे मनस्विनी ।

उनके सरों को माला बना कर धारण करती हुई रणस्थल में रावण के सरों को लेकर उससे वह मनस्विनी कन्दुक-क्रीड़ा करने की इच्छा करने लगीं ।

एतस्मिन्नन्तरे तस्यां रोमकूपेभ्य उद्गताः ॥ २४ ॥
मातरो विकृताकाराः साट्टहासाः समाययुः ।
सह कन्दुकलीलार्थे सीतया ताः सहस्रशः ॥ २५ ॥

इसी अवसर पर उनके रोमकूपों से उत्पन्न हो विकृत आकार वाली मातायें अट्टहास करती हुई वहाँ आईं । वे सभी सहस्रों कन्दुकों की क्रीड़ा में सीता की सहायता करने लगीं ।

तासां काश्चिदाख्यास्ये नामानि शृणुसुव्रत ।

याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्चराचराः ॥ २६ ॥

हे सुव्रत ! उनमें से जिन कुछ कल्याणियों से चराचर त्रिलोकी व्याप्त है उनके नाम मैं कहता हूँ, सुनो :

प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोनसी तथा ।
श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ॥ २७ ॥

प्रभावती, विशालाक्षी, पालिता, गोनसी तथा श्रीमती, बहुला और बहुपुत्रिका ।

अप्सुजाता च गोपाली बृहदम्बालिका तथा ।
जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयङ्करी ॥ २८ ॥

अप्सुजाता और गोपाली तथा बृहदम्बालिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, भयङ्करी ।

वसुदामा सुदामा च विशोका नन्दिनी तथा ।
एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्चटीतमा ॥ २९ ॥
उत्तेजनी जया सेना कमलाक्ष्यथ शोभना ।
शत्रुञ्जया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ॥ ३० ॥

वसुदामा और सुदामा, निशोका तथा नन्दिनी, एकचूडा, महाचूड़ा, चक्रनेमि, चटीतमा, उत्तेजनी, जया, सेना, कमलाक्षी, शोभना, शत्रुञ्जया, क्रोधना, शलभी, खरी ।

माधवी शुभ्रवस्त्रा च तीर्थसेनी जटोज्ज्वला ।
गीतप्रिया च कल्यागी कद्रुरोमामिताशना ॥ ३१ ॥
मेघस्वना भोगवती सुभ्रूश्च कनकावती ।
अलाताक्षी वेगवती विद्युज्जिह्वा च भारती ॥ ३२ ॥

माधवी, शुभ्रवस्त्रा और तीर्थसेनी, जटा, उज्ज्वला, गीतप्रिया, कल्याणी, कद्रुरोमा और अमिताशना । मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलाताक्षी, वेगवती, विद्युज्जिह्वा और भारती ।

पद्मावती सुनेत्रा च गन्धरा बहुयोजना ।
सन्तालिका महाकाली कमला च महाबला ॥ ३३ ॥

पद्मावती, सुनेत्रा, गन्धरा और बहुयोजना। सन्नालिका, महाकाली, कमला और महाबला।

सुदामा बहुदामा च सुप्रभा च यशस्विनी।
नृत्यप्रिया परानन्दा शतोलूखलमेखला ॥ ३४ ॥

सुदामा, बहुदामा, सुप्रभा और यशस्विनी। नृत्यप्रिया, परानन्दा और शतोलूखल मेखला।

शतघण्टा शतानन्दा आनन्दा भवतारिणी।
वपुष्मती चन्द्रसीता भद्रकाली सटामला ॥ ३५ ॥
झङ्कारिका निष्कुटिका रामा चत्वरवासिनी।
सुमला सुस्तनवती वृद्धिकामा जयप्रिया ॥ ३६ ॥

शतघण्टा, शतानन्दा, आनन्दा, भवतारिणी, वपुष्मती, चन्द्रसीता, भद्रकाली, सटामला, झङ्कारिका, निष्कुटिका, रामा, चत्वरवासिनी, सुमला, सुस्तनमती, वृद्धिकामा, जयप्रिया।

धना सुप्रसादा च भवदा च जनेश्वरी।
एडी भेडी समेडी च वेतालजननी तथा ॥ ३७ ॥

धना, सुप्रसादा, भवदा और जनेश्वरी। ऐडी, भेडी, समेडी और वेतालजननी।

कन्दुतिः कन्दुका चैव वेदमित्रा सुदेविका।
लम्बास्या केतकी चैव चित्रसेना चलाचला ॥ ३८ ॥

कन्दुतिः, कन्दुका, वेदमित्रा और सुदेविका। लम्बास्या, केतकी, चित्र-सेना, चला और अचला।

कुक्कुटिका शृंखलिका तथा शंकुलिका हडा।
कन्दालिका काकलिका कुम्भिकाय शतोदरी ॥ ३९ ॥

कुक्कुटिका, शृङ्खलिका, शंकुलिका और हडा। कन्दालिका, काक-लिका, कुम्भिका और शतोदरी।

उत्क्राथिनी जवेला च महावेगा च कंकिनी।
मनोजवा कटकिनी प्रघसा पूतना तथा ॥ ४० ॥

उत्क्राथिनी, जवेला, महावेगा, कंकिनी, मनोजवा, कटकिनी, प्रघसा तथा पूतना।

खेशया चातिद्रढिमा क्रोशनाथतडित्प्रभा।
मन्दोदरी च तुण्डीच कोटरा मेघवाहिनी ॥ ४१ ॥

खेशया, अतिद्रढिमा, क्रोशना, तथा तडित्प्रभा। मन्दोदरी, तुण्डी, कोटरा तथा मेघवाहिनी।

सुभगा लम्बिनी लम्बा बहुचूडा विकत्थिनी।
ऊर्ध्ववेणीधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥ ४२ ॥

सुभगा, लम्बिनी, लम्बा, बहुचूडा, विकत्थिनी, ऊर्ध्ववेणीधरा, पिङ्गाक्षी और लोहमेखला।

पृथुवक्त्रा मधुलिहा मधुकुम्भा तथैव च।
यक्षाणिका मत्सरिका जरायुर्जर्जरानना ॥ ४३ ॥
ख्याता डहडहा चैव तथा धमधमा द्विजा।
खण्डखण्डा पृथुश्रोणी पूषणामणिकुट्टिका ॥ ४४ ॥

पृथुवक्त्रा, मधुलिहा और मधुकुम्भा। यक्षणिका, मत्सरिका, जरायु, जर्जरानना, ख्याता, डहडहा, धमधमा, द्विजा, खण्डखण्डा, पृथुश्रोणी, पूषणा और मणिकुट्टिका।

अम्लोचा चैव निम्लोचा तथा लम्बपयोधरा।
वेणुवीणाधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥ ४५ ॥

अम्लोचा, निम्लोचा, तथा लम्बपयोधरा। वेणुवीणाधरा, पिङ्गाक्षी और लोहमेखला।

शशोलूकमुखी हृष्टा खरजङ्घा महाजरा।
शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा ॥ ४६ ॥
जटालीका कामचरी दीर्घजिह्वाबलोत्कटा।
कालाहिका यामालिका मुकुटामुकुटेश्वरी ॥ ४७ ॥
लोहिताक्षी महाकाया हविष्पिंडा च पिण्डिका।

एकत्वचा सुकूर्मा च कुल्लाकर्णि च कर्णिका ॥ ४८ ॥

शशोलूकमुखी, हृष्टा, खरजङ्घा, महाजरा, शिशुमारमुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, विभीषणा, जटालीका, कामचरी, दीर्घजिह्वा, बलोत्कटा, कालाहिका, यामालिका, मुकुटा, मुकुटेश्वरी, लोहिताक्षी, महाकाया, हविष्पिण्डा, पिण्डिका, एकत्वचा, सुकूर्मा, कुल्लाकर्णी और कर्णिका ।

सुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा तथा ।
चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिषानना ॥ ४९ ॥

सुरकर्णी, चतुष्कर्णी तथा कर्णप्रावरणा । चतुष्पथनिकेता, गोकर्णी और महिषानना ।

खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वनमहास्वना ।
शङ्खकुम्भश्रवा चैव भगदा च महाबला ॥ ५० ॥

खरकर्णी, महाकर्णी, भेरीस्वना, महस्वना, शङ्खकुम्भश्रवा, भगदा और महाबला ।

गणा च सुगणा चैव कामदाप्यथ कन्यका ।
चतुष्पथरता चैव भूतितीर्थान्यगोचरा ॥ ५१ ॥

गणा, सुगणा, कमदा और कन्यका । चतुष्पथरता, भूतितीर्था, और अन्यगोचरा ।

पशुदा विभुदा चैव सुखदा च महायशाः ।
पयोदा गोमहिषदा सुविशाला चतुर्भुजा ॥ ५२ ॥

पशुदा, विमुदा, सुखदा और महायशा । पयोदा, गोमहिषदा, सुविशाला और चतुर्भुजा ।

प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना सुलोचना ।
नौकर्णी मुखकर्णी च विशिरा मंथिनी तथा ॥ ५३ ॥

प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, रोचमाना और सुलाचना । नौकर्णी, मुखकर्णी, विशिरा तथा मन्थिनी ।

एकवक्त्रा मेघरवा मेघवामा द्विरोचना ।
एताश्चान्याश्च बहवो मातरः कोटिकोटिशः ॥ ५४ ॥

असंख्याताः समाजग्मुःक्रीडितुं सीतया सह ।

एकवक्त्रा, मेघरवा, मेघवामा, द्विरोचना, तथा इनके अतिरिक्त भी वहुत सी मातायें थीं जो सीता के साथ क्रीड़ा करने के लिये आई ।

दीर्घवक्ष्यो दीर्घदंत्यो दीर्घतुंड्यो द्विजोत्तम ॥ ५५ ॥

सरसा मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः ।

माहात्म्येन च संयुक्ताः कामरूपधरास्तथा ॥ ५६ ॥

दीर्घवक्षस्थल वाली, दीर्घदांत वाली, दीर्घनासिका वाली, सरस, मधुर, यौवन में स्थित, स्वालंकृत महिमा से संयुक्त और कामरूपधारिणी,

निर्मांसगात्र्यः श्वेताश्च तथा काञ्चनसन्निभाः ।

कृष्णमेघनिभाश्चान्या धूम्राश्च द्विजपुङ्गव ॥ ५७ ॥

अरुणाभा महाभागा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः ।

ऊर्ध्ववेणीधराश्चैव पिङ्गाक्ष्यो लम्बमेखलाः ॥ ५८ ॥

निर्मांस गात्र वाली, श्वेता तथा काश्चन के समान । कृष्णमेघ के समान और दूसरी, हे द्विजपुङ्गव ! धूम्रवर्ण वाली, अरुणाभा, महाभागा, दीर्घकेशी, श्वेतवस्त्रा, ऊर्ध्ववेणी वाली, पिङ्गाक्ष और लम्बमेखला वाली ।

लम्बोदर्यो लम्बकर्ण्यस्तथा लम्बपयोधराः ।

ताम्राक्ष्यस्ताम्रवर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथापराः ॥ ५९ ॥

शत्रूणां विग्रहे नित्यं भयदास्ता भवंत्यपि ।

कामरूपधराश्चैव जवे वायुसमास्तथा ॥ ६० ॥

लम्वे पेट तथा लम्वे कान वाली, लम्वे पयोधर वाली, ताम्रवर्ण नेत्र वाली तथा हर्यक्षी । शत्रुओं के विग्रह में नित्य भय देने वाली, कामरूप-धारिणी और वेग में वायु के समान थीं ।

शिरांसि रक्षसां गृह्य गण्डशैलोपमान्यपि ।

चिक्रीडुः सीतया सार्द्धं तस्मिन्नणधरातले ॥ ६१ ॥

पर्वतशिखर के समान राक्षसों के सरों को ग्रहण कर वे धरातल में सीता के साथ क्रीड़ा करने लगीं ।

मुण्डमालाधराश्चैव काश्चिन्मुण्ड विभूषणाः ।
रणाङ्गणे महाघोरे गृध्रकंकशिवान्विते ॥ ६२ ॥
मांसासृक्पंकिले घोरे तत्र तत्र पुरोपमे ।
ननर्त जानकी देवी घोर काली महाबला ॥ ६३ ॥

कोई मुण्डमाला धारण किये, कोई मुण्डों के भूषण पहने, उस महाघोर रणस्थल में, जो कि गृध्र, कङ्क और गीदड़ों से युक्त, मांस-रुधिर-कीच से भरे पुर के समान था, महाकाली, महाबला, महाघोरा जानकी देवी नृत्य करने लगीं ।

तदा चकंपे पृथिवी नौरिवानिलचालिता ।
चेलुश्च भूधराः सर्वे समुद्राश्च चकंपिरे ॥ ६४ ॥

तब हवा के द्वारा चलायमान नौका के समान पृथिवी चलायमान हो गई और सब पर्वत तथा समुद्र कंपित हो गये ।

स्वर्गिणां च विमानानि खात्पेतुर्भयतो द्विज ।
सूर्यस्य दुद्रुवुर्भीता वाजिनो मुक्तरश्मयः ॥ ६५ ॥

भय से देवताओं के विमान आकाश से गिरने लगे । सूर्य के घोड़े मार्ग त्यागने लगे ।

यदा न सेहे जानक्याः भारं सोढुं वसुन्धरा ।
गन्तुमैच्छत पातालं सीतापादाग्रपीडिता ॥ ६६ ॥
अट्टहासेन सीताया मातृणां हुंकृतेन च ।
प्रलयं मेनिरे लोकाः किमेतदिति विह्वलाः ॥ ६७ ॥

जब वसुन्धरा जानकी का भार सहन करने में समर्थ न हुई और सीता के चरणाग्र से पीड़ित हो पाताल में जाने लगी तब सीता के अट्टहास और मातृकाओं की हुंकार से, 'यह क्या हुआ' इस प्रकार कहते हुये लोक प्रलय हुआ मानने लगे ।

धरापातालगमनं वितर्क्य सुरसत्तमैः ।
सम्प्रार्थितो महादेवः स्वयमायाद्रणाजिरम् ॥ ६८ ॥

धरा को पाताल में जाता देख कर देवताओं ने महादेव से प्रार्थना की। तब वे (महादेव) स्वयं रणस्थल में आये।

जानक्याः पादविन्यासे शवरूपधरो हरः।
आत्मानं स्तम्भयामास धरणीधृतिहेतवे ॥ ६९ ॥

तब शव का रूप धारण कर शिव ने धरती को रोकने के लिये, जानकी के पैरों के नीचे स्थित हो अपने को स्तम्भित किया।

सर्वभारसहो देवः सीतापादतले स्थितः।
शवरूपो विरूपाक्षः स्थिताभूद्धरातदा ॥ ७० ॥

जब शवरूपधारी विरूपाक्ष देव सीता के पैरों के नीचे स्थित होकर सब भार सहन करने लगे तब पृथिवी स्थिर हुई।

तथाप्युपरिगा लोका न स्थातुं सेहिरे क्षणम्।
सीतायाः पादशब्देन शिरसा हुंकृतेन च ॥
निःश्वासवातसङ्घातैर्दुःस्थिता भूर्भुवादयः ॥ ७१ ॥

परन्तु ऊपर के लोक उस समय भी स्थित न हो सके। सीता के पावों के शब्द और शिर के हुंकार से तथा निश्वास की वायु के संघात से भूर्भुवःस्व आदि लोक डाँवाडोल हो गये।

धरणितनयया यद्भीमनृत्यं धरण्यां
कृतमिह मनसा तच्चिंतयन्तो द्विजेन्द्राः।
जयति जयति सीतेत्याहुरिन्द्रादिदेवाः
सपदि भुवन भंगं मन्यमाना विपेदुः ॥ ७२ ॥

धरणीतनया (सीता) ने धरणी पर जो भयंकर नृत्य किया उसका मन में चिन्तन करके द्विजेन्द्र, इन्द्रादिक देवता सीता की जय-जयकार करते हुये ऐसा मानने लगे कि 'अब संसार भंग होगा'।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
सहस्त्रवदनरावणवधो नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशति सर्ग

देवों द्वारा राम का आश्वासन

संरम्भवेगं सीताया वीक्ष्य ब्रह्मपुरोगमाः ।
सलोकपालास्त्रिदशा ऋषिभिः पितृभिः सह ॥ १ ॥
प्रसादयितुमुद्युक्ताः सीतां ते तुष्टुवुः सुराः ।
कृताञ्जलिपुटा देवाः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ २ ॥

सीत के इस प्रकार के वेग और क्रोध को देख कर लोकपाल, देवता, ऋषि और पितरों के साथ ब्रह्माजी सीता को प्रसन्न करने के लिये संयुक्त हो उन्हें सन्तुष्ट करने लगे और हाथजोड़ कर वार-वार उन्हें प्रणाम किया ।

ब्रह्माद्याः स्तोतुमारब्धाः सीतां राक्षसनाशिनीम् ।
या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा ॥ ३ ॥
अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता रामवल्लभा ।
स्वाभाविकी च त्वन्मूला प्रभा भानोस्तथामला ॥ ४ ॥

ब्रह्मा आदि ने राक्षसनाशिनी सीता की स्तुति आरम्भ की : शक्ति ज्ञानरूपा जो यह माहेश्वरी अतिलालसा से युक्त हैं वह रामवल्लभा अनन्य और निष्कल तत्व में स्थित हैं । यह स्वाभाविकी शक्ति आपसे ही है, जैसे सूर्य की कान्ति निर्मल होती है ।

एका सा वैष्णवी शक्ति रणे कोपाधिवेगतः ।
परापरेण रूपेण क्रीडन्ती रामसन्निधौ ॥ ५ ॥
सेव्यं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत् ।
न कार्यं चापि करणमीश्वरश्चेति निश्चयः ॥ ६ ॥

वह एक ही वैष्णवी शक्ति रण में वड़े वेग और क्रोध से परापररूप से राम के निकट क्रीड़ा करती है । वही इस सब जगत का कार्य करके उसका सेवन करती है । ईश्वर को कार्य करने की आवश्यकता नहीं है ।

चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः ।

अधिष्ठान वशादस्या जानक्या रामयोषितः ॥ ७ ॥
शान्तिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः ।
चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः ॥ ८ ॥

देवी की शक्ति चतुर्विध रूप से स्थित है। अधिष्ठान के वश से जानकी राम की पत्नी हैं। शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति इसे ही चतुर्व्यूह रूप से परमेश्वर देव कहा जाता है।

अनया परया देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते ।
यत्त्वस्त्यनादिसंसिद्धमैश्वर्यमतुलं महत् ॥ ९ ॥
त्वत्सम्बन्धादवाप्तं तद्रामेण परमात्मना ।
सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका ॥ १० ॥

इसी पराशक्ति से देव का स्वात्मानन्द जाना जाता है। जो अनादि संसिद्ध, अतुल, महत् ऐश्वर्य हैं वही परमात्मा राम द्वारा तुम्हारे सम्बन्ध से प्राप्त किया जाता है। यह सर्वेश्वरी देवी सब भूतों की प्रवर्तिका हैं।

त्वयेदं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः ।
सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी ॥ ११ ॥

तुमसे ही यह मायावी पुरुषोत्तम ईश्वर भ्रमण कराये जाते हैं। यह मायात्मिका शक्ति सर्वाकारा सनातनी है।

वैश्वरूपं महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशयेत् ।
अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्त्वया देवि विनिर्मिता ॥ १२ ॥

महेश्वर के विश्वरूप को यह सर्वदा प्रकाशित करती है। हे देवि ! और भी मुख्य शक्तियाँ तुमने ही निर्मित की हैं।

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम् ।
सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिता ॥ १३ ॥
एका शक्तिः शिवोप्येकः शक्तिमानुच्यते शिवः ।
अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ १४ ॥

ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, प्राणशक्ति—यह शक्तित्रय है। सम्पूर्ण शक्ति

और उनके शक्तिमान् का तुमने निर्माण किया है। वास्तविक शक्ति एक ही है और एक ही शक्तिमान् शिव हैं। तत्त्वदर्शी योगी इनमें भेद नहीं मानते।

शक्तयो जानकी देवी शक्तिमन्तो हि राघवः।
विशेषः कथ्यते चायं पुराणे तत्त्ववादिभिः॥ १५॥

शक्ति जानकी देवी हैं और शक्तिमान् राम हैं, तत्त्ववादियों ने पुराणों में इसे विशेष रूप से कहा है।

भोग्या विश्वेश्वरी देवी रघूत्तमपतिव्रता।
प्रोच्यते भगवान्भोक्ता रघुवंशविवर्द्धनः॥ १६॥

रघुश्रेष्ठ की पतिव्रता विश्वेश्वरी देवी भोग्या हैं और रघुवंशविवर्द्धन भगवान् भोक्त कहलाते हैं।

मन्ता रामो मतिः सीता मन्तव्या च विचारतः।
एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥ १७॥

मन्ता राम हैं और मति सीता हैं, इसका विचारपूर्वक मानना उचित है। ये एक ही सवगत, सूक्ष्म, अचल और ध्रुव हैं।

योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति तव देव्याः परं पदम्।
अनन्तमजरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम्॥ १८॥

हे देवि! योगिजन तुम्हारे परमपद को देखते हैं, वह अनन्त, अजर, ब्रह्म, केवल, निष्कल और पर है।

योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति तव देव्याः परं पदम्।
सा त्वं धात्रीव परमा यानन्दनिधिमिच्छताम्॥ १९॥

हे देवि! योगिजन तुम्हारे परमपद को देखते हैं, आनन्दनिधि की इच्छा करने वालों के लिये वह तुम ही परम धात्री हो

संसारतापानखिलान्हरसीश्वरसंश्रयात्।
नेदानीं भूतसंहारस्त्वया कार्यो महेश्वरि॥ २०॥

ईश्वर के संश्रय से संसार के सम्पूर्ण तापों को दूर करती हो। हे महेश्वरि! इस समय तुमको प्राणियों का संहार नहीं करना चाहिये।

रावणो सगणं हत्वा जगतां सुखमाहितम्।

किं पुनर्नृत्यकलया जगत्संह्रियते त्वया ॥ २१ ॥

गणों सहित रावण को मार कर जगत को सुखी किया है। अब पुनः नृत्य कर के व्याज से तुम जगत् का संहार क्यों करती हो।

एतच्छ्रुत्वाविशालाक्षी ब्रह्मणोऽभ्यर्थनं वचः ।

प्रीता सीता तदा प्राह ब्रह्माणं सहदैवतम् ॥ २२ ॥

उन विशालाक्षी ने ब्रह्माजी की यह प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो ब्रह्मा-सहित देवताओं से कहा :

पतिर्मे पुण्डरीकाक्षः पुष्पकोपरि राघवः ।

विद्धः क्षुरप्रेण हृदि शेते मृतकवत्प्रभुः ॥ २३ ॥

तस्मिन्नेव स्थिते देवाः किमिच्छामि जगद्धितम् ।

ग्रासमेकं करिष्यामि जगदेतच्चराचरम् ॥ २४ ॥

मेरे पति कमललोचन राघव हृदय में तीक्ष्ण वार से विद्ध होकर पुष्पक पर मृतक् के समान सो रहे हैं। हे देवो ! उनकी ऐसी स्थिति होने से मैं किस प्रकार जगत के हित की इच्छा कर सकती हूं। इस चराचर जगत का एक ही ग्रास करूँगी।

श्रुत्वैतद्वचनं देव्याः संरम्भसहित सुराः ।

हाहाकारं प्रचक्रुस्ते सञ्चचाल च मेदिनी ॥ २५ ॥

देवी के इस क्रोधपूर्ण वचन को सुन कर देवता हाहाकार करने लगे और पृथिवी चलायमान हो गई।

ततो ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं पुष्पकं रथमास्थितम् ।

श्रीरामं ग्राहयामास स्मृतिं स्पृष्ट्वा स्वपाणिना ॥ २६ ॥

तब देवताओं सहित ब्रह्माजी ने पुष्पकरथ में स्थित श्रीराम को अपने हाथों से स्पर्श कर स्मृति दिलाई।

उत्तस्थौ च महाबाहू रामः कमललोचनः ।

रे रावण सुदुष्टस्त्वमद्य मद्बाणभेदितः ॥ २७ ॥

द्रक्ष्यस्याशु यमस्यास्यं भ्रुकुटीभीषणाकृति ।

ब्रुवन्नेवं धनुर्गृह्य ह्यपश्यन्त्रिदशान्पुरः ॥ २८ ॥

तब कमललोचन, महाबाहु राम तत्काल उठ बैठे और बोले : अरे रावण ! तू आज मेरे बाण से भेदित होकर अवश्य ही भयंकर भृकुटी वाले यमराज का मुख देखेगा। जब यह कह कर उन्होंने धनुष ग्रहण किया तब देवताओं को अपने सम्मुख स्थित देखा।

नापश्यज्जानकीं तत्र प्राणेभ्योपि गरीयसीम् ।
नृत्यतीं चापरां कालीमपश्यच्च रणांगणे ॥ २९ ॥
चतुर्भुजां चलज्जिह्वां खड्गखर्परधारिणीम् ।
शवरूपमहादेवहृत्संस्थां च दिगम्बराम् ॥ ३० ॥

परन्तु प्राणों से भी अधिक प्रिय जानकी को वहाँ नहीं देखा। इसके बदले युद्धस्थल में नृत्य करती हुई महाकाली को देखा जो चतुर्भुज, लपलपाती जिह्वावाली, खड्ग, खर्पर धारण किये और दिगम्बर रूप में शवरूपी महादेव के हृदय पर स्थित थीं।

पिबन्तीं रुधिरं भीमां कोटराक्षीं क्षुधातुराम् ।
जगद्ग्रासे कृतोत्साहां मुण्डमालाविभूषणाम् ॥ ३१ ॥
भीमाकाराभिरन्याभिः क्रीडन्तीं रणमूर्द्धनि ।
मुण्डै राक्षसराजस्य खेलन्तीं कन्दुकं मुदा ॥ ३२ ॥

वह भयंकरी, क्षुधातुरा, कोटराक्षी मुण्डमाला से विभूषित, रुधिरपान करती हुई जगत को ग्रास बनाने का उत्साह कर रही हैं; तथा रणभूमि में अन्य भयंकर आकार वाली मातृकाओं के साथ रणस्थल में क्रीड़ा करती हुई राक्षसराज के मुण्डों के साथ प्रसन्न हो कन्दुक-क्रीड़ा कर रही हैं

प्रलयध्वान्तधाराभां सदा घर्घरनादिनीम् ।
अन्त्रमुण्डकरोटयक्षकृतमालां चलत्पदाम् ॥ ३३ ॥
कबन्धाद्राक्षसानां च तया सह विनृत्यतः ।
रथवाजिगजानां च शकलानि व्यलोकयत् ॥ ३४ ॥

प्रलयकाल के अन्धकार के समान सदा घर्घर शब्द करने वाली, आँतों, मुण्डों, हाथों और नेत्रों की माला बनाये पाँव चलाती हुई, हाथी, घोड़ों, रथों के टुकड़ों को देखती हुई, मृतक राक्षसों के कबन्धों के साथ नृत्य कर रही हैं।

नैकोपि राक्षसो यत्र करपादशिरोयुतः ।
कबन्धा ये च नृत्यन्ति तेषां पादाः प्रतिष्ठिताः ॥ ३५ ॥
कबन्धं रावणस्यापि नृत्यन्तं च व्यलोकयत् ।

वहाँ कोई भी राक्षस हाथ-पाँव या सर से युक्त नहीं था । जो कबन्ध नृत्य कर रहे थे केवल उन्हीं के चरण स्थित थे । उन्होंने रावण के कवन्ध को भी नृत्य करते देखा ।

तद्दृष्ट्वा सुमहाघोरं प्रेतराजपुरोपमम् ॥ ३६ ॥
कालीं च वीक्ष्य नृत्यन्तीं मातृभिः सहितां द्विज ।
पपात हस्ताद्रामस्य वेपतः सशरं धनुः ॥ ३७ ॥
भयाच्च निमिमीलाशु रामः पद्मविलोचने ।

और हे द्विज ! मातृकाओं सहित काली को नृत्य करते देख कांपते हुये राम के हाथ से बाण सहित धनुष गिर पड़ा तथा भय से राम ने अपने दोनों कमल जैसे नेत्र मीच लिये ।

इत्येवं विस्मितं दृष्ट्वा ब्रह्मोवाच रघूत्तमम् ॥ ३८ ॥
त्वां दृष्ट्वा विह्वलं सीता क्रुद्धं चापि च रावणम् ।
रथादवस्कन्द्यसती पपात रणमूर्द्धनि ॥ ३९ ॥
भीमां च मूर्तिमालम्ब्य रोमकूपाश्च मातृकाः ।
निर्माय ताभिः सहिता हत्वा रावणमग्रतः ॥ ४० ॥

इस प्रकार विस्मित देख कर राम से ब्रह्माजी ने कहा : 'आपको विह्वल और रावण को क्रुद्ध देख कर सीताजी तत्काल रथ से युद्ध-स्थल में कूद पड़ीं और इस भयंकर मूर्ति का अवलम्बन कर अपने रोमकूपों से मातृकाओं को उत्पन्न किया तथा उनके सहित क्रीडा करते हुये रावण का वध कर दिया ।

रक्षसां निधनं कृत्वा नृत्यन्तीयं व्यवस्थिता ।
अनया सहितो राम सृजस्यवसि हंसि च ॥ ४१ ॥
नानया रहितो राम किंचित्कर्तुमपि क्षमः ।
इति बोधयितुं सीता चकार तद निंदिता ॥ ४२ ॥

अब वे राक्षसों का वध करने के बाद व्यवस्थित हो नृत्य कर रही हैं। हे राम ! इनके सहित आप जगत उत्पन्न कर नष्ट कर देते हैं। हे राम ! इनके बिना आप कुछ भी नहीं कर सकते। यही दिखाने के लिये सीता ने यह कार्य किया है।

पश्यैतां जानकीं राम त्यज भीतिं महाभुजा।

निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्जिताम् ॥ ४३ ॥

हे महाबाहु राम ! आप भय को त्याग दीजिये और इन जानकी को देखिये। ये साक्षात् निर्गुण-सगुण-सत्-असत्, व्यक्ति से वर्जित हैं।'

इत्येतद्द्रुहिणवचो निशम्य रामः

श्रुतिमुखमात्महितं पराभिमर्दि।

शुचमनुविजहौ विचार्य किंचिज्जनक-

सुतामनुपश्यति स्म पश्चात् ॥ ४४ ॥

ब्रह्माजी के इस प्रकार वचन को, जो राम के कानों को सुख देनेवाले, आत्मा के लिये हितकारक और शत्रुनाशक थे, सुन कर श्रीराम ने शोक त्याग दिया तथा फिर जनकसुता को देखा।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
श्रीरामाश्वासनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशति सर्ग

श्रीराम द्वारा सहस्रनाम से जानकी की स्तुति

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा रामः कमललोचनः।

प्रोन्मील्य शनकैरक्षि वेपमानो महाभुजः ॥ १ ॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चापि विह्वलः।

भीतः कृताञ्जलिपुटः प्रोवाच परमेश्वरीम् ॥ २ ॥

ब्रह्मा के वचन को सुन कर महाबाहु, कमललोचन राम ने शनैः-शनैः नेत्र खोल कर कांपते हुये, भूमि में मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उनके

(जानकी के) तेज से विह्वल हो डरे हुये के समान वे हाथ जोड़कर परमेश्वरी से बोले :

का त्वं देवि विशालाक्षि शशांकावयवांकिते ।
न जाने त्वां महादेवि यथावद् ब्रूहि पृच्छते ॥ ३ ॥

'हे चन्द्रखण्ड से चिह्नित विशालाक्षी ! तुम कौन हो ? हे महादेवि ! हम तुमको नहीं जानते इसलिये पूछते हैं कि अपना वर्णन करो ।'

रामस्य वचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी ।
व्याजहार रघुव्याघ्रं योगिनामभयप्रदा ॥ ४ ॥

तब राम के वचन को सुनकर, योगियों को अभय देने वाली वह परमेश्वरी रघुसिंह (राम) से बोली :

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ।
अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥ ५ ॥

'मुझे महेश्वर के आश्रित परमाशक्ति जानो । मैं अनन्य, अविनाशी हूँ, ऐसा मुमुक्षजन मुझको देखते हैं ।'

अहं वै सर्वभावानामात्मा सर्वान्तरा शिवा ।
शाश्वती सर्वविज्ञाना सर्वमूर्तिप्रवर्तिका ॥ ६ ॥

मैं सब भावनाओं की आत्मा, सबके अन्तर में स्थित शिवा हूँ । मैं शाश्वती सर्वविज्ञानमयी और सर्वमूर्ति-प्रर्वातका हूँ ।

अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे पदमैश्वरम् ॥ ७ ॥

मैं अनन्त, अनन्त महिमा वाली, संसार सागर से तारने वाली हूँ । तुम्हें दिव्य नेत्र देती हूं मेरे पद का ऐश्वर्य देखो ।

इत्युक्त्वा विररामैषा रामोऽपश्यच्च तत्पदम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं विश्वक्तेजोनिराकुलम् ॥ ८ ॥

यह कह कर वह मौन हो गई और राम उनके पद को देखने लगे जो एक करोड़ सूर्य के समान तेज से सब ओर से परिपूर्ण था ।

ज्वालावलीसहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् ।
तद्दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं जटामण्डलमण्डितम् ॥ ९ ॥
त्रिशूलवरहस्तं च घोररूपं भयावहम् ।
प्रशाम्यत्सौम्यवदनमनन्तैश्वर्यसंयुतम् ॥ १० ॥

वह सहस्रों ज्वाला समूहों से व्याप्त, शतकालानल के समान दंष्ट्रा कराल से दुर्धर्ष, जटामण्डल से मण्डित, त्रिशूल हाथ में लिये घोर रूप, भयावह, प्रशान्त, सौम्यवदन, अनन्त ऐश्वर्य से संयुक्त था ।

चन्द्रावयवलक्ष्माढ्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।
किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् ॥ ११ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
शङ्खचक्रकरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम् ॥ १२ ॥

चन्द्र-खण्ड और लक्ष्मी से युक्त, करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिमान, किरीट और गदा हाथ में लिये, नूपुरों से शोभित, दिव्य माला-वस्त्रधारण किये, दिव्य गन्ध का अनुलेपन किये शंख, चक्र हाथ में लिये त्रिनेत्र और चर्म धारण किये था ।

अन्तःस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यरभ्यन्तरतःपरम् ।
सर्वशक्तिमयं शान्तं सर्वाकारं सनातनम् ॥ १३ ॥

अन्तस्थ तथा दिव्याण्ड के बाह्य स्थित, बाहर-भीतर से परे, सर्व-शक्तिमान, शान्त, सर्वाकार, सनातन था ।

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैरीड्यमानपदाम्बुजम् ।
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥ १४ ॥
सर्वमावृत्य तिष्ठन्तं ददर्श पदमैश्वरम् ।

ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, योगीन्द्रों से प्रार्थित चरणकमल, सब ओर से चरण-नेत्र और मस्तक वाला, सबको आवृत्त कर स्थित होते हुये उस ईश्वर सम्बन्धी पद का राम ने दर्शन किया ।

दृष्ट्वा च तादृशं रूपं दिव्यं माहेश्वरं पदम् ॥ १५ ॥
तथैव च समाविष्टः स रामो हृतमानसः ।

आत्मन्याधाय चात्मानमोंकारं समनुस्मरन् ॥ १६ ॥

नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम् ।

इस प्रकार उस दिव्य महेश्वर के पद को देख कर रामचन्द्र हृतमानस हो और उससे आविष्ट हो आत्मा में आत्मा का आधान करके ओंकार का स्मरण कर १००८ नामों से परमेश्वरी की स्तुति करने लगे :

ॐ सीतोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलामला ॥ १७ ॥

शान्ता माहेश्वरी नित्या शाश्वती १० परमाक्षरा ।

अचिन्त्या केवलानन्ता शिवात्मा परमात्मिका ॥ १८ ॥

ॐ सीता, उमा, परमा, शक्ति, अनन्ता, निष्कला, अमला, शान्ता माहेश्वरी, शाश्वती १०, परमाक्षरा, अचिन्त्या, केवला, अनन्वा, शिवात्मा, परमात्मिका,

अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा २० सर्वगोचरा ।

एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला ॥ १९ ॥

महामाहेश्वरी शक्ता महादेवी निरञ्जना ।

काष्ठा ३० सर्वान्तरस्था च चिच्छक्तिरतिलालसा ॥ २० ॥

अनादि, अव्यया, शुद्धा, देवात्मा २०, सर्वगोचरा, एक, अनेक विभागों में स्थित, माया से परे, निर्मल, महामाहेश्वरी, शक्ता, महादेवी, निरञ्जना, काष्ठा ३० सर्वान्तरस्था, चिच्छक्ति, अतिलालसा,

जानकी मिथिलानन्दा राक्षसान्तविधायिनी ।

रावणान्तकरी रम्या रामवक्षःस्थलालया ॥ २१ ॥

उमा सर्वात्मिका ४० विद्या ज्योतीरूपाऽयुताक्षरी ।

शान्तिः प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा ॥ २२ ॥

जानकी, मिथिला के लिये आनन्दप्रद, राक्षसों का अन्त करने वाली, रावण का अन्त करने वाली, श्रीराम के रम्य वक्षःस्थल में विहार करने वाली, उमा, सर्वात्मिका ४०, विद्या, ज्योतिरूपा, अयुताक्षरी, शान्ति, सब की प्रतिष्ठा, निवृत्ति, अमृतप्रदा,

व्योममूर्तिर्व्योममयी व्योमाधारा ५० ऽच्युतातलता ।

अनादिनिधना योषा कारणात्मा कलाकुला ॥ २३ ॥

नन्दप्रथमजा नाभिरमृतस्यान्तसंश्रया ।

प्राणेश्वरप्रिया ६० मातामही महिषवाहना ॥ २४ ॥

व्योममूर्ति, व्योममयी, व्योमधारा ५०, अच्युता, लता, आदि-अन्त रहिता, योषा, कारणात्मा, कलाकुला, नन्द के घर में प्रथम उत्पन्न होने वाली, नाभि में अमृत के आश्रय वाली, प्राणेश्वरप्रिया ६०, मातामही, महिषवाहना,

प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी ।

सर्वशक्तिः कला काष्ठा ज्योत्स्नेन्दो ७० र्महिमास्पदा ॥२५॥

सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी ।

अनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी ॥ २६ ॥

प्राणेश्वरी, प्राणरूपा, प्रधान, पुरुषेश्वरी, सर्वशक्ति, कला, काष्ठा, चन्द्रज्योत्स्ना ७० महिमा के स्थान वाली, सर्वकार्य नियन्त्रिणी, सर्व-भूतेश्वरी, अनादि, अव्यक्तगुणा, महानन्दा, सनातनी,

आकाशयोनिर्योगस्था सर्वयोगेश्वरेश्वरी ॥ ८० ॥

शवासना चितान्तःस्था महेशी वृषवाहना ॥ २७ ॥

बालिकातरुणी वृद्धा वृद्धमाता जरातुरा ।

महामाया ९० सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ २८ ॥

आकाशयोनि, योगस्था, सर्वयोगेश्वरी ८०, शवासना, चिन्तान्तःस्था, महेशा, वृषवाहना, बालिका, तरुणी, वृद्धा, वृद्धमाता, जरातुरा, महामाया ९०, सुदुष्पूरा, मूलप्रकृति, ईश्वरी,

संसारयोनिःसकला सर्वशक्तिसमुद्भवा ।

संसारसारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्यादुरासदा १०० ॥ २९ ॥

प्राणशक्तिः प्राणविद्यायोगिनीपरमा कला ।

महाविभूतिर्दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा ॥ ३० ॥

संसारयोनि, सकला, सर्वशक्ति समुद्भवा, संसारसारा, दुर्वारा, कठिनता से निरीक्षण योग्य, दुरासदा १००, प्राणशक्ति, प्राणविद्या, योगिनी, परमा कला, महाविभूति, दुर्धर्षा, मूलप्रकृति-सम्भवा,

अनाद्यनन्तविभवा परात्मा पुरुषो बली ॥ ११० ॥
सर्गस्थित्यन्तकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया ॥ ३१ ॥
शब्दयोनिश्शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा ।
प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका ॥ ३२ ॥

अनादि-अनन्तविभवा परातमा, पुरुष, बली ११०, सृष्टि की स्थिति और अन्त करने वाली, सदुर्वाच्या, दुरात्यया, शब्दयोनि, शब्दमयी, नादाख्या, नादविग्रहा, प्रधानपुरुषातीता, प्रधान-पुरुषात्मिका,

पुराणी १२० चिन्मयी पुंसामादिः पुरुषरूपिणी ।
भूतान्तरात्मा कूटस्था महापुरुषसंज्ञिता ॥ ३३ ॥
जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता ।
व्यापिनी चानवच्छिन्ना १३० प्रधाना सुप्रवेशिनी ॥ ३४ ॥

पुराणी १२०, चिन्मयी, पुरुषों में आदि, पुरुषरूपिणी, भूतान्तरात्मा, महापुरुष नामवाली, जन्म-मृत्यु और जरा से परे, सर्वशक्तिसमन्विता, व्यापिनी, अनवच्छिन्ना १३०, प्रधान में प्रवेश करने वाली,

क्षेत्रज्ञा शक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता ।
अनादिमायासम्भिन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिर्गुणः १४० ॥ ३५ ॥
महामाया समुत्पन्ना तामसी पौरुषं ध्रुवा ।
व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्तशुक्लाप्रसूतिका ॥ ३६ ॥

क्षेत्रज्ञा, शक्ति, अव्यक्तलक्षणा, मलवर्जिता, अनादि, माया संभिन्ना, त्रितत्वा, प्रकृति, गुणस्वरूपा १४०, महामाया, समुत्पन्ना, तामसी, ध्रुव-पुरुषार्थ वाली, व्यक्त, अव्यक्तात्मिका, कृष्णा, रक्त, शुक्ला, प्रसूतिका,

स्वकार्या १५० कार्यजननी ब्रह्मास्या ब्रह्मसंश्रया ।
व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ज्ञानरूपिणी ॥ ३७ ॥
वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्म मूर्ति १६० र्हृदिस्थिता ।
जयदा जित्वरी जैत्री जयश्रीर्जयशालिनी ॥ ३८ ॥

स्वकार्या १५०, कार्य की जननी, ब्रह्मास्या, ब्रह्मसंश्रया, व्यक्ता,

प्रथमजा, ब्राह्मी, महती, ज्ञानरूपिणी, वैराग्य-ऐश्वर्य-धर्मात्मा, ब्रह्ममूर्ति १६०, हृदय में स्थित, जयदा, शीघ्र जीतने वाली, जैत्री, जयलक्ष्मी, जययुक्त,

सुखदा शुभदा सत्या शुभा १७० संक्षोभकारिणी ।
अपां योनिः स्वयंभूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा ॥ ३९ ॥
ईश्वराणी च शर्वाणी शङ्करार्द्धशरीरिणी ।
भवानी चैव रुद्राणी १८० महालक्ष्मीरथाम्बिका ॥ ४० ॥

सुखदा, शुभदा, सत्या, शुभा १७०, संक्षोभकारिणी, जलों की योनि, स्वयंभूति, मानसी, तत्त्वसम्भवा, ईश्वराणी, शर्वाणी, शंकरार्धशरीरिणी, भवानी, रुद्राणी १८०, महालक्ष्मी, अम्बिका

माहेश्वरी समुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
सर्वेश्वरी सर्ववर्णा नित्या मुदितमानसा ॥ ४१ ॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शंकरेच्छानुवर्तिनी १९० ।
ईश्वरार्द्धासनगता रघूत्तमपतिव्रता ॥ ४२ ॥

माहेश्वरी-समुत्पन्ना, भुक्ति-मुक्तिफलप्रदा, सर्वेश्वरी, सर्ववर्णा, नित्या, मुदितमानसा, ब्रह्मा-इन्द्र से नमित, शंकर की इच्छा की अनुवर्तिनी १९०, ईश्वर के अर्धं आसन में प्राप्त, रघूत्तम-पतिव्रता,

सकृद्विभाविता सर्वा समुद्रपरिशोषिणी ।
पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी ॥ ४३ ॥
गुणाढ्या योगदा २०० योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकाशिनी ।
सावित्री कमला लक्ष्मीश्रीरनन्तोरसि स्थिता ॥ ४४ ॥

एक ही बार सबकी भावना करने वाली, सर्वा, समुद्र का शोषण करने वाली, पार्वती, हिमवत्पुत्री, परमानन्ददायिनी, गुणाढ्या, योगदा २००, योग्या, ज्ञानमूर्ति-विकासिनी, सावित्री, कमला, लक्ष्मी, श्री, अनन्त के हृदय में स्थित,

सरोजनिलया शुभ्रा योगनिद्रा १२० सुदर्शना ।
सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमङ्गला ॥ ४५ ॥

वासवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका २२० ।
वागीश्वरी सर्वविद्या महाविद्या सुशोभना ॥ ४६ ॥

सरोज-निलया, शुभ्रा, योगनिद्रा २१०, सुदर्शना, सरस्वती, सर्वविद्या, जगज्ज्येष्ठा, सुमङ्गला, वासवी, वरदा, वाच्या, कीर्ति, सर्वार्थसाधिका २२० वागीश्वरी, सर्वविद्या, महाविद्या, सुशोभना

गुह्यविद्यात्मविद्या च सर्वविद्यात्मभाविता ।
स्वाहा विश्वम्भरी २३० सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः ॥४७॥
नाभिः सुनाभिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी २४० ।
पूजा विभावरी सौम्या भगिनी भोगदायिनी ॥ ४८ ॥

गुह्यविद्या, आत्मविद्या, सर्वविद्या, आत्मभाविता, स्वाहा, विश्वम्भरी २३०, सिद्धि, स्वधा, मेधा, धृति, श्रुति, नाभि, सुनाभि, सुकृति, माधवी, नरवाहिनी २४०, पूज्या, विभावरी, सौम्या, भगिनी, भोगदायिनी,

शोभा वंशकरी लीला मानिनी परमेष्ठिनी २५० ।
त्रैलोक्यसुन्दरी रम्या सुन्दरी कामचारिणी ॥ ४९ ॥
महानुभावमध्यस्था महामहिषमर्दिनी ।
पद्ममालापापहरा विचित्रमुकुटानना ॥ ५० ॥

शोभा, वंशकरी, लीला, मानिनी, परमेष्ठिनी २५०, त्रैलोक्यसुन्दरी, रम्या, सुन्दरी, कामचारिणी, महानुभाव-मध्यस्था, महामहिषमर्दिनी, पद्ममाला, पापहरा, विचित्र-मुकुटानना,

कान्ता २६० चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।
हंसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्द्धिनी ॥ ५१ ॥
निर्यंत्रा मन्त्रवाहस्था नन्दिनी भद्रकालिका ।
आदित्यवर्णा २७० कौमारी मयूरवरवाहिनी ॥ ५२ ॥

कान्ता २६०, चित्राम्बरधरा, दिव्याभरणभूषिता, हंसाख्या, व्योम-निलया, जगतसृष्टि-विवर्द्धिनी, नियन्त्रा, मन्त्रवाहस्था, नन्दिनी, भद्र-कालिका, आदित्यवर्णा २७०, कौमारी, मयूरवरवाहिनी,

वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता ।
अदितिर्नियता रौद्री पद्मगर्भा २८० विवाहना ॥ ५३ ॥
विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी ।
महाफलानवद्याङ्गी कामपूरा विभावरी ॥ ५४ ॥

वृषासनगता, गौरी, महाकाली, सुरार्चिता, अदिति, नियता, रौद्र पद्मगर्भा २८०, विवाहना, विरूपाक्षी, लेलिहाना, महासुरविनाशिनी, महाफला, अनवद्याङ्गी, कामपूरा, विभावरी,

विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतर्द्धिविवर्द्धिनी २९० ।
कौशिकी कर्षिणी रात्रिस्त्रिदशार्त्तिविनाशिनी ॥ ५५ ॥
विरूपा च सुरूपा च भीमा मोक्षप्रदायिनी ।
भक्तार्त्तिनाशिनी भव्या ३०० भवभावविनाशिनी ॥ ५६ ॥

विचित्ररत्नमुकुटा, प्रणतर्द्धिविवर्द्धिनी २९०, कौशिकी, कर्षिणी, रात्रि, त्रिदशार्त्रिविनाशिनी, विरूपा, सुरूपा, भीमा, मोक्षप्रदायिनी, भक्तार्त्तिनाशिनी, भव्या ३००, भव-भावविनाशिनी,

निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा ।
यशस्विनी सामगीतिर्भवाङ्गनिलयालया ॥ ५७ ॥
दीक्षा ३१० विद्याधरी दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी ।
सर्वातिशायिनी विद्या सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ ५८ ॥

निर्गुणा, नित्यविभवा, निःसारा, निरपत्रपा, यशस्विनी, सामगीति, भवाङ्गनिलयालया, दीक्षा ३१०, विद्याधरी, दीप्ता, महेन्द्रविनिपातिनी, सर्वातिशायिनी विद्या, सर्वशक्तिप्रदायिनी,

सर्वेश्वरप्रिया तार्क्षी समुद्रान्तरवासिनी ।
अकलङ्का निराधारा ३२० नित्यसिद्धा निरामया ॥ ५९ ॥
कामधेनुर्वेदगर्भा धीमती मोहनाशिनी ।
निःसंकल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रदा ३३० ॥ ६० ॥

सर्वेश्वरप्रिया, तार्क्षी, समुद्रान्तरवासिनी, अकलंका, निराधरा ३२०,

नित्यसिद्धा, निरमया, कामधेनु, वेदगर्भा, श्रीमती, मोहनाशिनी, निःसंकल्पा, निरान्तका, विनया, विनयप्रदा ३३०,

ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोन्मनी ।
उर्वी गुर्वी गुरुः श्रेष्ठा सगुणा षड्गुणात्मिका ॥ ६१ ॥
महाभगवती ३४० भव्या वसुदेवसमुद्भवा ।
महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्यपरायणा ॥ ६२ ॥

ज्वालमालासहस्राढ्या, देवदेवी, मनोन्मनी, उर्वी, गुर्वी, गुरु, श्रेष्ठा, सगुणा, षड्गुणात्मिका, महाभगवती, ३४० भव्या, वसुदेवसमुद्भवा, महेन्द्र-उपेन्द्र-भगिनी, भक्तिगम्य, परायणा,

ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषया गतिः ।
दक्षिणा ३५० दहना वाह्या सर्वभूतनमस्कृता॥ ६३ ॥
योगमाया विभावज्ञा महामोहा महीयसी ।
सत्या सर्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मवृक्षाश्रया ३६० मतिः ॥ ६४ ॥

ज्ञानज्ञेया, जरातीता, वेदान्तविषया, गति, दक्षिणा ३५०, दहना वाह्या, सर्वभूतनमस्कृता, योगमाया, विभावज्ञा, महामोहा, महीयसी, सत्या, सर्वसमुद्भूत, ब्रह्मवृक्षाश्रया ३६०, मति,

बीजांकुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः ।
ख्यातिः प्रतिज्ञा चित्संविन्महायोगेन्द्रशायिनी ॥ ६५ ॥
विकृतिः ३७० शाङ्करी शास्त्री गन्धर्वा यक्षसेविता ।
वैश्वानरी महाशाला देवसेना गुहप्रिया ॥ ६६ ॥

बीजांकुरसमुद्भूति, महाशक्ति, महामति, ख्याति, प्रतिज्ञा, चित्, संवित्, महायोगेन्द्रशायिनी, विकृति ३७०, शाङ्करी, शास्त्री, गन्धर्वा-यक्षसेविता, वैश्वानरी, महाशाला, देवसेना, गुहप्रिया,

महारात्री शिवानन्दा शची ३८० दुःस्वप्ननाशिनी ।
पूज्याऽपूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेयस्वरूपिणी ॥ ६७ ॥
गुहाम्बिका गुहोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता ।
हव्यवाहान्तरा ३९० गार्गी हव्यवाहसमुद्भवा ॥ ६८ ॥

महारात्री, शिवानन्दा, शची ३८०, दुःस्वप्ननाशिनी, पूज्या, अपूज्या, जगद्धात्री, दुर्विज्ञेयस्वरूपिणी, गृहाम्बिका, गृहोत्पत्ति, महापीठा, मरुत्सुता, हव्यवाहान्तरा ३९०, गार्गी, हव्यवाहसमुद्भवा,

जगद्योनिर्जगन्माता जगन्मृत्युर्जरातिगा ।
बुद्धिर्माता बुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी ४०० ॥ ६९ ॥
तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसंस्थिता ।
सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदिस्थिता ॥ ७० ॥

जगद्योनि, जगन्माता, जगन्मृत्यु, जरातिगा, बुद्धि, माता, बुद्धिमती, पुरुषान्तरवासिनी ४००, तपस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिविसंस्थिता, सर्वेन्द्रियमनोमाता, सर्वभूतहृदिस्थिता,

संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया ।
ब्रह्माणी बृहती ४१० ब्राह्मी ब्रह्मभूता भयावनिः ॥ ७१ ॥
हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्तिका ।
सुमालिनी सुरूपा च तारिणी भाविनी ४२० प्रभा ॥ ७२ ॥

संसारतारिणी विद्या, ब्रह्मवादिमनोलया, ब्रह्माणी, बृहती ४१०, ब्राह्मी, ब्रह्मभूता, भयावनी, हिरण्मयी, महारात्रि, संसारपरिर्वातका, सुमालिनी, सुरूपा, तारिणी, भाविनी ४२०, प्रभा,

उन्मीलनी सर्वसहासर्वप्रत्ययसाक्षिणी ।
तपिनी तापिनी विश्वा भोगदा धारिणी धरा ४३० ॥७३॥
सुसौम्या चन्द्रवदना ताण्डवासक्तमानसा ।
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी ॥ ७४ ॥

उन्मीलनी, सर्वसहा, सर्वप्रत्ययसाक्षिणी, तपिनी, तापिनी, विश्वा, भोगदा, धारिणी, धरा ४३०, सुसौम्या, चन्द्रवदना, ताण्डवासक्त-मानसा, सत्त्वशुद्धिकरी, शुद्धि, मलत्रयविनाशिनी,

जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया ४४० ।
निराश्रया निराहारा निरंकुशरणोद्भवा ॥ ७५ ॥
चक्रहस्ता विचित्राङ्गी स्रग्विणी पद्मधारिणी ।

परापरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा ॥ ७६ ॥

जगत्प्रिया, जगन्मूर्ति, त्रिमूर्ति, अमृताश्रया ४४०, निराश्रया, निराहारा, निरंकुशरणोद्भवा, चक्रहस्ता, विचित्राङ्गी, स्त्रग्विणी, पद्मधारिणी, परा-परविधानज्ञा, महापुरुषपूर्वजा,

विद्येश्वरप्रिया ४५० ऽविद्या विद्युज्जिह्वा जितश्रमा ।

विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रश्रवणात्मजा ॥ ७७ ॥

सहस्ररश्मिपद्मस्था महेश्वरपदाश्रया ।

ज्वालिनी ४६० सद्मना व्याप्ता तैजसी पद्मरोधिका ॥ ७८ ॥

विश्वेश्वरप्रिया ४५०, अविद्या, विद्युज्जिह्वा, जितश्रमा, विद्यामयी, सहस्राक्षी, सहस्रश्रवणात्मजा, सहस्ररश्मि, पद्मस्था, महेश्वरपदाश्रया, ज्वालिनी ४६०, सद्मना, व्याप्ता, तैजसी, पद्मरोधिका

महादेवाश्रया मान्या महादेवमनोरमा ।

व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितान्यमितप्रभा ४७० ॥ ७९ ॥

विश्वेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी ।

अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मवासिनी ॥ ८० ॥

महादेवाश्रया, मान्या, महादेवमनोरमा, व्योमलक्ष्मी, सिंहरथा, चेकितान्यमितप्रभा ४७०, विश्वेश्वरी, विमानस्था, विशोका, शोकनाशिनी, अनाहता, कुण्डलिनी, नलिनी, पद्मवासिनी

शतानन्दा सतां कीर्तिः ४८० सर्वभूताशयस्थिता ।

वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलावती ॥ ८१ ॥

ब्रह्मर्षिर्ब्रह्महृदया ब्रह्म विष्णुशिवप्रिया ।

व्योमशक्तिः क्रियाशक्ति ४९० जनशक्तिः परागतिः ॥८२॥

शतानन्दा, सतांकीर्ति ४८०, सर्वभूताशयस्थिता, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता, कलावती, ब्रह्मर्षि, ब्रह्महृदया, ब्रह्मा-विष्णु-शिवप्रिया, व्योमशक्ति, क्रियाशक्ति ४९०, जनशक्ति, परागति,

क्षोभिका रौद्रिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता ।

अभिन्ना भिन्नसंस्थाना वंशिनी वंशहारिणी ५०० ॥ ८३ ॥

क्षोभिका, रौद्रिका, भेद्या, भेदाभेद-विवर्जिता, अभिन्ना, भिन्नसंस्थाना, वंशिनी, वंशहारिणी ५००

गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी ।
भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालकारिणी ॥ ८४ ॥

गुह्यशक्ति, गुणातीता, सर्वदा, सर्वतोमुखी, भगिनी, भगवत्पत्नी, सकला, कालकारिणी,

सर्ववित्सर्वतोभद्रा ५१० गुह्यातीता गुहावलिः ।
प्रक्रिया योगमाता च गन्धा विश्वेश्वरेश्वरी ॥ ८५ ॥
कपिला कपिलाकान्ता कनकाभा कलान्तरा ५२० ।
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरन्दरपुरःसरा ॥ ८६ ॥

सर्वविद्, सर्वतोभद्रा ५१०, गुह्यातीता, गुहावलिः, प्रक्रिया, योगमाता, गन्धा, विश्वेश्वरेश्वरी, कपिला, कपिलाकान्ता, कनकाभा, कलान्तरा ५२०, पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री, पुरन्दरपुरस्सरा,

पोषणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा ।
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः परमात्मात्मविग्रहा ॥ ८७ ॥
नर्मोदया ५३० भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा ।
बीजरूपा रजोरूपा वशिनी योगरूपिणी ॥ ८८ ॥

पोषणी, परमैश्वर्यभूतिदा, भूतिभूषणा, पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति, परमात्मात्मविग्रहा, नर्मोदया ५३०, भानुमती, योगिज्ञेया, मनोजवा, बीजरूपा, रजोरूपा, वशिनी योगरूपिणी,

सुमन्त्रा मन्त्रिणी पूर्णा ५४० ह्लादिनी क्लेशनाशिनी ।
मनोहरिर्मनोरक्षी तापसी वेदरूपिणी ॥ ८९ ॥
वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्या प्रकाशिनी ।
योगेश्वरेश्वरी ५५० माला महाशक्तिर्मनोमयी ॥ ९० ॥

सुमन्त्रा, मन्त्रिणी, पूर्णा ५४०, ह्लादिनी, क्लेशनाशिनी, मनोहरि, मनोरक्षी, तापसी, वेदरूपिणी, वेदशक्ति, वेदमाता, वेदविद्याप्रकाशिनी, योगेश्वरेश्वरी ५५०, माला, महाशक्ति, मनोमयी,

विश्वावस्था वीरमुक्तिर्विद्युन्माला विहायसी ।
पीवरी सुरभी वंध्या ५६० नन्दिनी नन्दवल्लभा ॥ ९१ ॥
भारती परमानन्दा परापरविभेदिका ।
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी ॥ ९२ ॥

विश्वावस्था, वीरमुक्ति, विद्युन्माला, विहायसी, पीवरी, सुरभी, वन्ध्या ५६०, नन्दिनी, नन्दवल्लभा, भारती, परमानन्दा, परापरविभेदिका, सर्व-प्रहरणोपेता, काम्या, कामेश्वरेश्वरी,

अचिन्त्याऽचिन्त्यमहिमा ५७० दुर्लेखा कनकप्रभा ।
कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी ॥ ९३ ॥
त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणिः शिरोहया ।
सुदुर्लभा ५८० धनाध्यक्षा धन्या पिङ्गललोचना ॥ ९४ ॥

अचिन्त्या, अचिन्त्यमहिमा ५७०, दुर्लेखा, कनकप्रभा, कूष्माण्डी, धनरत्नाढ्या, सुगन्धा, गन्धदायिनी, त्रिविक्रमपदोदभूता, धनुष्पाणि, शिरोहया, सुदुर्लभा ५८०, धनाध्यक्षा, धन्या, पिङ्गललोचना,

भ्रान्तिः प्रभावती दीप्तिः पङ्कजायतलोचना ।
आद्या हृत्कमलोद्भूता परामाता ५९० रणप्रिया ॥ ९५ ॥
सत्क्रिया गिरिजा नित्यशुद्धा पुष्पनिरन्तरा ।
दुर्गा कात्यायनी चण्डी चर्चिका शान्तविग्रहा ६०० ॥९६॥

भ्रान्ति, प्रभावती. दीप्ति, पङ्कजायतलोचना, आद्या, हृत्कमलोद्भूता, परामाता ५८०, रणप्रिया, सत्क्रिया, गिरिजा, नित्यशुद्धा, पुष्पनिरन्तरा, दुर्गा, कात्यायनी, चण्डी, चर्चिका, शान्तविग्रहा ६००,

हिरण्यवर्णा रजनी जगन्मन्त्रप्रवर्तिका ।
मन्दराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी ॥ ९७ ॥
रत्नमाला रत्नगर्भा पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी ६१० ।
पद्मासना पद्मनिभा नित्यतुष्टाऽमृतोद्भवा ॥ ९८ ॥

हिरण्यवर्णा, रजनी, जगन्मन्त्रप्रवर्तिका, मन्दर पर्वत पर निवास करने

वाली, शारदा, स्वर्णमालिनी, रत्नमाला, रत्नगर्भा, पृथिवी, विश्वप्रमथिनी ६१०, पद्मासना, पद्मनिभा, नित्यतुष्टा, अमृतोद्भवा,

धुन्वती दुष्प्रकम्पा च सूर्यमाता दृषद्वती ।
महेन्द्रभगिनी माया ६२० वरेण्यावरदर्पिता ॥ ९९ ॥
कल्याणी कमला रामा पञ्चभूतवरप्रदा ।
वाच्या वरेश्वरी नन्द्या दुर्जया ६३० दुरतिक्रमा ॥ १०० ॥

धुन्वती, दुष्प्रकम्पा, सूर्यमाता, दृषद्वती, महेन्द्रभगिनी, माया ६२०, वरेण्या, वरदर्पिता, कल्याणी, कमला, रमा, पञ्चभूतवरप्रदा, वाच्या, वरेश्वरी, नन्द्या, दुर्जया ६३०, दुरतिक्रमा,

कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रहितप्रिया ।
भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी ॥ १०१ ॥
कराला पिङ्गलाकारा नामवेदा ६४० महानदा ।
तपस्विनी यशोदा च यथाध्वपरिवर्तिनी ॥ १०२ ॥

कालरात्रि, महावेगा, वीरभद्रहितप्रिया, भद्रकाली, जगन्माता, भक्तानां भद्रदायिनी, कराला, पिङ्गलाकारा, नामवेदा ६४०, महानदा, तपस्विनी, यशोदा, यथाध्वपरिवर्तिनी,

शङ्खिनी पद्मिनी सांख्य सांख्ययोगप्रवर्तिका ।
चैत्री संवत्सरा ६५० रुद्रा जगत्सम्पूरणीन्द्रजा ॥ १०३ ॥
शुम्भारिः खेचरी खस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया ।
खरध्वजा खरारूढा ६६० पराध्यर्या परमालिनी ॥ १०४ ॥

शंखिनी, पद्मिनी, सांख्या, सांख्ययोगप्रवर्तिका, चैत्री, संवत्सरा ६५०, रुद्रा, जगत्सम्पूरणा, इन्द्रजा, शुम्भारि, खेचरी, खस्था, कम्बुग्रीवा, कलिप्रिया, खरध्वजा, खरारूढा ६६०, पराध्यर्या, परमालिनी,

ऐश्वर्यरत्ननिलया विरक्ता गरुडासना ।
जयन्ती हृद्गुहा रम्या सत्त्ववेगा गणाग्रणीः ॥ १०५ ॥
सङ्कल्पसिद्धा ६७० साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी ।
कलिकल्मषहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा ॥ १०६ ॥

ऐश्वर्यरत्ननिलया, विरक्ता, गरुडासना, जयन्ती, हृद्गुहा, रम्या, सत्त्ववेगा, गणाग्रणी, संकल्पसिद्धा ६७०, साम्यस्था, सर्वविज्ञानदायिनी, कलिकल्मषहन्त्री, गुह्योपनिषद्, उत्तमा,

नित्यदृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः ६८० क्रियावती ।
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवामृता ॥ १०७ ॥
लोहिता सर्वमाता च भीषणा वनमालिनी ६९० ।
अनन्तशयनाऽनाद्या नरनारायणोद्भवा ॥ १०८ ॥

नित्यदृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि ६८०, क्रियावती, विश्वामरेश्वरेशाना, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता, लोहिता, सर्वमाता, भीषणा, वनमालिनी ६९०, अनन्तशयना, अनाद्या, नरनारायणोद्भवा,

नृसिंही दैत्यमथिनी शंखचक्रगदाधरा ।
संकर्षणसमुत्पत्तिरम्बिकोपातसंश्रया ॥ १०९ ॥
महाज्वाला महामूर्तिः ७०० सुमूर्तिः सर्वकामधुक् ।
सुप्रभा सुतरां गौरी धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ११० ॥

नृसिंही, दैत्यमथिनी, शंक-चक्र-गदाधरा, संकर्षणसमुत्पत्ति, अम्बिकोपातसंश्रया, महाज्वाला, महामूर्ति ७००, सुमूर्ति, सर्वकामधुक्, सुप्रभा, सुतरां गौरी, धर्म-काम-अर्थ मोक्षदा,

भ्रूमध्यनिलयाऽपूर्वा प्रधानपुरुषा बली ।
महाविभूतिदा ७१० मध्या सरोजनयनासना ॥ १११ ॥
अष्टादशभुजा नाट्या नीलोत्पलदलप्रभा ।
सर्वशक्त्या समारूढा धर्माधर्मानुवर्जिता ॥ ११२ ॥

भ्रूमध्यनिलया, अपूर्वा, प्रधानपुरुषा, बली, महाविभूतिदा ७१०, मध्या, सरोजनयनासना, अष्टादशभुजा, नाट्या, नीलोत्पलदलप्रभा, सर्वशक्त्या, समारूढा, धर्माधर्मानुवर्जिता,

वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका ७२० निरिन्द्रिया ।
विचित्रगहना धीरा शाश्वतस्थानवासिनी ॥ ११३ ॥
स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी ।

अशेषदेवतामूर्तिर्देवतापरदेवता ७३० ॥ ११४ ॥

वैराग्य-ज्ञान-निरता, निरालोका ७२०, निरिन्द्रिया, विचित्रगहना, धीरा, शाश्वतस्थानवासिनी, स्थानेश्वरी, निरानन्दा, त्रिशूलवर-धारिणी, अशेषदेवतामूर्ति, देवता, परदेवता ७३०,

गणात्मिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी ।
अवर्णा वर्णरहिता निर्वर्णा वीजसम्भवा ॥ ११५ ॥
अनन्तवर्णाऽनन्यस्था शंकरी ७४० शान्तमानसा ।
अगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणान्तरा ॥ ११६ ॥

गणात्मिका, गिरिपुत्री, निशुम्भनिपातिनी, अवर्णा, वर्णरहिता, निर्वर्णा, वीजसम्भवा, अनन्तवार्णा, अनन्यस्था, शङ्करी ७४०, शान्तमानसा, अगोत्रा, गोमती, गोप्त्री, गुह्यरूपा, गुणान्तरा

गोश्रीर्गव्यप्रिया गौरी गणेश्वरनमस्कृता ।
सत्यमात्रा ७५० सत्यसन्धा त्रिसन्ध्या सन्धिवर्जिता ॥११७॥
सर्ववादाश्रया सांख्या सांख्ययोगसमुद्भवा ।
असंख्येयाऽप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्भवा ७६० ॥११८॥

गो-श्री-गव्य-प्रिया, गौरी, गणेश्वरनमस्कृता, सत्यमात्रा ७५०, सत्य-सन्धा, त्रिसन्ध्या, सन्धिवर्जिता, सर्ववादाश्रया, सांख्या, सांख्ययोगसमुद्भवा, असंख्येया, अप्रमेयाख्या, शून्या, शुद्धकुलोद्भवा ७६०,

विन्दुनादसमुत्पत्तिः शम्भुवामा शशिप्रभा ।
विसङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी ॥ ११९ ॥
महाश्रीः श्रीसमुत्पत्ति ७७० स्तमःपारे प्रतिष्ठिता ।
त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपद संश्रया ॥ १२० ॥

विन्दु-नाद-समुत्पत्ति, शम्भुवामा, शशिप्रभा, विसङ्गा, भेदरहिता, मनोज्ञा, मधुसूदनी, महाश्री, श्रीसमुत्पत्ति ७७०, तम के पार प्रतिष्ठित, त्रितत्त्वमाता, त्रिविधा, सुसूक्ष्मपद-संश्रया,

शांत्यतीता मलातीता निर्विकारा निराश्रया ।
शिवाख्या चित्र निलया ७८० शिवज्ञानस्वरूपिणी ॥१२१॥

दैत्यदानवनिर्मात्री काश्यपी कालकर्णिका ।
शास्त्रयोनिः क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका ॥ १२२ ॥

शान्त्यातीता, मलातीता, निर्विकारा, निराश्रया, शिवाख्या, चित्र-निलया ७८०, शिवज्ञानस्वरूपिणी, दैत्य-दानव-निर्मात्री, काश्यपी, काल-कर्णिका, शास्त्रयोनि, क्रियामूर्ति, चतुर्वर्गप्रदर्शिका

नारायणी नवोद्भूता कौमुदी ७९० लिङ्गधारिणी ।
कामुकी ललिता तारा परापरविभूतिदा ॥ १२३ ॥
परान्तजात महिमा वडवा वामलोचना ।
सुभद्रा देवकी ८०० सीता वेदवेदाङ्गपारगा ॥ १२४ ॥

नारायणी, नवोद्भूता, कौमुदी ७९०, लिङ्गधारिणी, कामुकी, ललिता, तारा, परापर-विभूतिदा, परान्तजातमहिमा, वडवा, वामलोचना, सुभद्रा, देवकी ८००, सीता, वेद-वेदाङ्ग-पारगा,

मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा ।
अमृत्युरमृतास्वादा पुरुहूता पुरुप्लुता ॥ १२५ ॥
अशोच्या ८१० भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया ।
हिरण्या राजती हैमी हेमाभरण भूषिता ॥ १२६ ॥

मनस्विनी, मन्युमाता, महामन्युसमुद्भवा, अमृत्यु, अमृतास्वादा, पुरुहूता, पुरुलुप्ता, शोचरहिता ८१०, भिन्नविषया, हिरण्य-रजत-प्रिया, हिरण्या, राजती, हैमी, हेमाभरणभूषिता

विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा ।
महानिद्रा ८२० समुद्भुतिर्बलीन्द्रा सत्यदेवता ॥ १२७ ॥
दीर्घा ककुद्मिनी विद्या शान्तिदा शान्तिवर्द्धिनी ।
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्तिका ॥ १२८ ॥

विभ्राजमाना, दुर्ज्ञेया, ज्योतिष्टोमफलप्रदा, महानिद्रा ८२०, समुद्भुति, बलीन्द्र, सत्यदेवता, दीर्घा, ककुद्मिनी विद्या, शान्तिदा, शान्ति-वर्द्धिनी, लक्ष्म्यादि-शक्ति-जननी, शक्तिचक्रप्रवर्तिका,

त्रिशक्तिजननी ८३० जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता ।

स्वाहा च कर्मकरणी युगान्तदलनात्मिका ॥ १२९ ॥
संकर्षणा जगद्धात्री कामयोनिः किरीटिनी ।
ऐन्द्री ८४० त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी ॥ १३० ॥

त्रिशक्तिजननी ८३०, जन्या, षडूर्मिपरिवर्जिता, स्वाहा, कर्मकरणी, युगान्तदलनात्मिका, संकर्षणा, जगद्धात्री, कामयोनि, किरीटिनी, ऐन्द्री ८४०, त्रैलोक्यनमिता, वैष्णवी, परमेश्वरी,

प्रद्युम्नदयिता दान्ता युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना ।
महोत्कटा हंसगतिः प्रचण्डा ८५० चण्डविक्रमा ॥१३१॥
वृषावेशा वियन्मात्रा विन्ध्यपर्वतवासिनी ।
हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी ॥ १३२ ॥

प्रद्युम्नदयिता, दान्ता, युग्मदृष्टि, त्रिलोचना, महोत्कटा, हंसगति, प्रचण्डा ८५०, चण्डविक्रमा, वृषावेशा, वियन्मात्रा, विन्ध्यपर्वतवासिनी, हिमवन्मेरुनिलया, कैलासगिरिवासिनी,

चाणूरहन्त्री तनया नीतिज्ञा कामरूपिणी ८६० ।
वेदविद्या व्रतरता धर्मशीलाऽनिलाशना ॥ १३३ ॥
अयोध्यानिलया वीरा महाकालसमुद्भवा ।
विद्याधरक्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृतिः ॥ १३४ ॥

चाणूरहन्त्री, तनया, नीतिज्ञा, कामरूपिणी ८६०, वेदविद्या व्रतरता, धर्मशीला, अनिलाशना, अयोध्यानिलया, वीरा, महाकालसमुद्भवा, विद्याधरप्रिया, सिद्धा, विद्याधरनिराकृति,

आप्यायन्ती ८७० वहन्ती च पावनी पोषणी खिला ।
मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया ॥ १३५ ॥
करीषिणी स्वधा वाणी ८८० वीणावादनतत्परा ।
सेविता सेविका सेवा सिनीवाली गरुत्मती ॥ १३६ ॥

आप्यायन्ती ८७०, वहन्ती, पावनी, पोषणी, खिला, मातृका, मन्मथोद्भूता, वारिजा, वाहनप्रिया, करीषिणी, स्वधावाणी ८८०, वीणावादनतत्परा, सेविता, सेविका, सेवा, सिनीवाली, गरुत्मती,

अरुन्धती हिरण्याक्षी मणिदा श्रीवसुप्रदा ८९० ।
वसुमती वसोर्धारा वसुन्धरा समुद्भवा ॥ १३७ ॥
वरारोहा वरार्हा च वपुःसङ्गसमुद्भवा ।
श्रीफली श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा ९०० हरिप्रिया ॥१३८॥

अरुन्धती, हिरण्याक्षी, मणिदा, श्री-वसुप्रदा ८९०, वसुमती, वसेर्धारा, वसुन्धरा समुद्भवा, वरारोहा, वरार्हा और वपुःसङ्गसमुद्भवा, श्रीफली, श्रीमती, श्रीशा, श्रीनिवासा ९००, हरिप्रिया,

श्रीधरी श्रीकरी कम्पा श्रीधरा ईशवीरणी ।
अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया ९१० ॥ १३९ ॥
निहन्त्री दैत्यसिंहानां सिंहिका सिंहवाहिनी ।
सुसेना चन्द्रनिलया सुकीर्तिश्छिन्नसंशया ॥ १४० ॥

श्रीधरी, श्रीकरी, कम्पा, श्रीधरा, ईशवीरणी, अनन्तदृष्टि, अक्षुद्रा, धात्रीशा, धनदप्रिया ९१०, दैत्यसिंहों की निहन्त्री, सिंहिका, सिंहवाहिनी, सुसेना, चन्द्रनिलया, सुकीर्ति, छिन्नसंशया,

बलज्ञा बलदा वामा ९२० लेलिहानाऽमृताश्रवा ।
नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुकामृतजीविनी ॥ १४१ ॥
वज्रदंष्ट्रा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा ९३० ।
मंगल्या मङ्गला माला मलिना मलहारिणी ॥ १४२ ॥

बलज्ञा, बलदा, वामा ९२०, लेलिहाना, अमृताश्रवा, नित्योदिता, स्वयंज्योति, उत्सुका, अमृतजीविनी, वज्रदंष्ट्रा, वज्रजिह्वा, वैदेही, वज्र-विग्रहा ९३०, मगल्या, मङ्गला, माला, मलिना, मलहारिणी,

गान्धर्वी गारुडी चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया ।
सौदामनी ९४० जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलानना ॥ १४३ ॥
कणकारकरा कक्षा कंसप्राणापहारिणी ।
युगन्धरा युगावर्त्ता त्रिसन्ध्याहर्षवर्धिणी ॥ १४४ ॥

गान्धर्वी, गारुड़ी, चान्द्री, कम्बलाश्वतरप्रिया, सौदामिनी ९४०,

जनानन्दा, भ्रुकुटीकुटिलानना, कर्णिकारकरा, कक्षा, कंसप्राणापहारिणी, युगन्धरा, युगावर्त्ता, त्रिसन्ध्या, हर्षवर्द्धिनी,

प्रत्यक्षदेवता ९५० दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा ।
शक्रासनगता शाक्री साध्वी नारी शवासना ॥ १४५ ॥
इष्टा विशिष्टा ९६० शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता ।
शतरूपा शतावर्त्ता विनीता सुरभिः सुरा ॥ १४६ ॥

प्रत्यक्षदेवता ९५०, दिव्या, दिव्यगन्धा, दिवापरा, शक्रासनगता, शाक्री, साध्वी, नारी, शवासना, इष्टा, विशिष्टा ९६०, शिष्टेष्टा, शिष्टा, शिष्टप्रपूजिता, शतरूपा, शतावर्त्ता, विनीता, सुरभि, सुरा,

सुरेन्द्रमाता सुद्युम्ना ९७० सुषुम्ना सूर्यसंस्थिता ।
समीक्षा सत्प्रतिष्ठा च निर्वृत्तिर्ज्ञानपारगा ॥ १४७ ॥
धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना ।
धर्माधर्मविनिर्मात्री ९८० धार्मिकाणां शिवप्रदा ॥ १४८ ॥

सुरेन्द्रमाता, सुद्युम्ना ९७०, सुषुम्ना, सूर्यसंस्थिता, समीक्षा, सत्प्रतिष्ठा, निर्वृत्ति, ज्ञानपारगा, धर्मशास्त्रार्थकुशला, धर्मज्ञा, धर्मवाहना, धर्माधर्मविनिर्मात्री ९८०, धार्मिकाणांशिवप्रदा

धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी ।
धर्मान्तरा धर्ममध्या धर्मपूर्वा धनप्रिया ॥ १४९ ॥
धर्मोपदेशा ९९० धर्मात्मा धर्मलभ्या धराधरा ।
कपाली शाकलामूर्तिः कलाकलितविग्रहा ॥ १५० ॥

धर्मशक्ति, धर्ममयी, विधर्मा, विश्वधर्मिणी, धर्मान्तरा, धर्ममध्या, धर्मपूर्वा, धनप्रिया, धर्मोपदेशा ९९०, धर्मात्मा, धर्मलभ्या, धराधरा, कपाली, शाकलामूर्ति, कलाकलितविग्रहा,

सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रया ।
सर्वा सर्वेश्वरी १००० सूक्ष्मा सुसूक्ष्मज्ञान रूपिणी॥१५१॥
प्रधानपुरुषेशाना महापुरुषसाक्षिणी ।
सदा शिवा वियन्मूर्तिर्देवमूर्त्तिरमूर्तिका १००८ ॥ १५२ ॥

सर्वशक्ति-विनिर्मुक्ता, सर्वशक्त्याश्रया, सर्वा, सर्वेश्वरी १०००, सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मज्ञानरूपिणी, प्रधानपुरुष, ईशाना, महापुरुषसाक्षिणी, सदाशिवा, वियन्मूर्ति, देवमूर्ति, अमूर्तिका १००८, तुम हो, तुम्हारे निमित्त नमस्कार।

एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव रघुनन्दनः ।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सीतां हृष्टतनूरुहाम् ।। १५३ ।।

इस प्रकार सहस्र नाम से रघुनन्दन ने हाथ जोड़ प्रसन्नमन, रोमाञ्च-शरीर हो सीता को प्रसन्न किया।

भारद्वाज महाभाग यश्चैतस्तोत्रमद्भुतम् ।

पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमं पदम् ।। १५४ ।।

हे महाभाग भरद्वाज ! जो कोई इस अद्भुत स्तोत्र को सुनता, पढ़ता अथवा पढ़ाता है वह परम पद को प्राप्त होता है।

ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्ब्रह्म प्राप्नोति शाश्वतम् ।

शूद्रः सद्गतिमाप्नोति धनधान्यविभूतयः ।। १५५ ।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, शूद्र को सद्गति तथा धन-धान्य की प्राप्ति होती है।

भवन्ति स्तोत्रमाहात्म्यादेतत्स्वस्त्ययनं महत् ।

भये राजभये तथा चोराग्निजे भये ।। १५६ ।।

व्याधीनां प्रभवे घोरे शत्रूत्थाने च संकटे ।

अनावृष्टिभये विप्र सर्वशान्तिकरं परम् ।। १५७ ।।

इस स्तोत्र के माहात्म्य से महामङ्गल होता है। महामारी के भय, तथा चोर और अग्नि के भय, महाघोर व्याधि, शत्रुओं के संकट में, अनावृष्टि के भय में हे विप्र ! सब प्रकार की शान्ति प्राप्त होती है।

यद्यदिष्टतमं यस्य तत्सर्वं स्तोत्रतो भवेत् ।

यत्रैतत्पठ्यते सम्यक् सीतानामसहस्रकम् ।। १५८ ।।

रामेण सहिता देवी तत्र तिष्ठत्यसंशयम् ।

महापापातिपापानि विलयं यान्ति सुव्रत ।। १५९ ।।

जो जो जिसको अभीष्ट हो वह सब इस स्तोत्र के पाठ से हो जाता है। जहाँ इस सीता सहस्रनाम का सम्यक रूप से पाठ किया जाता है वहाँ राम सहित देवी सीता स्थित होती हैं—इसमें सन्देह नहीं है। हे द्विज! महापाप और घोर पाप भी इससे छूट जाते हैं।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
सीतासहस्रनामस्तोत्रकथनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशति सर्ग

श्रीरामविजय-वर्णन

एवं नामसहस्रेण स्तुत्वाऽसौ रघुनन्दनः ।
भूयः प्रणम्य प्रीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः ॥ १ ॥
यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि ।
भीतोऽस्मि सांप्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत्प्रदर्शय ॥ २ ॥

इस प्रकार सहस्रनाम से स्तुति करके रघुनन्दन ने प्रणाम कर हाथ जोड़ जानकी से कहा : 'हे परमेश्वरि! तुम्हारा यह जो घोर परमेश्वर-सम्बन्धी रूप है उससे मैं भयभीत हो रहा हूँ। अतः मुझे शान्त और सौम्य रूप दिखाओ।'

एवमुक्ताथ सा देवी तेन रामेण मैथिली ।
संहृत्य दर्शयामास स्वं रूपं परमं पुनः ॥ ३ ॥
काञ्चनाम्बुरुहप्रख्यं पद्मोत्पलसुगन्धिकम् ।
सुनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम् ॥ ४ ॥

जब राम ने मैथिली से इस प्रकार कहा तब उन देवी ने अपना रूप शान्त कर सौम्य रूप दिखाया जो स्वर्णकमल के समान और पद्मोत्पल के समान सुगन्धवाला था। वह सुन्दर नेत्रों, दो भुजाओं और नीली अलकों से विभूषित था।

रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकर पल्लवम् ।
श्रीमद्विशालसद्वृत्तललाटतिलकोज्ज्वलम् ॥ ५ ॥

भूषितं चारुसर्वांगं भूषणैरभिशोभितम् ।
दधानं सुरसां मालां विशालां हेमनिर्मिताम् ॥ ६ ॥
ईषत्स्मितं सुबिम्बोष्ठं नूपुराम्बरसंयुतम् ।
प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम् ॥ ७ ॥

वह रक्तकमल के समान चरण, लाल कर-पल्लव, श्रीमान् विशाल सद्वृत्त ललाट के ऊपर उज्ज्वल तिलक लगाये, सम्पूर्ण सुन्दर अंगभूषणों से शोभित, विशाल सुवर्ण निर्मित सुरमाला धारण किये, किञ्चित हास्य-युक्त बिम्बाफल के समान ओष्ठ, नूपुर और अम्बर से संयुक्त, प्रसन्न-मुख, दिव्य और अनन्त महिमा का स्थान था ।

तदीदृशं समालोक्य रूपं रघुकुलोत्तमः ।
भीतिं संत्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम् ॥ ८ ॥

रघुकुलश्रेष्ठ ने उनके इस प्रकार के रूप को देख कर भय को त्याग दिया और प्रसन्न हृदय से परमेश्वरी से बोले :

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।
यन्मे साक्षात्त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरा ॥ ९ ॥

आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरा तप सफल हो गया, जो तुम अव्यक्ता मेरे सम्मुख साक्षात् प्रसन्न रूप से दृष्टिगोचर हुई हो ।

त्वया सृष्टं जगत्सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम् ।
त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव च परागतिः ॥ १० ॥

तुमने ही सब जगत् की सृष्टि की है और प्रधानादि तुम में ही स्थित हैं । हे देवि ! यह अन्त में तुम में ही लय हो जाता है । तुम ही परा-गति हो ।

वदन्ति केचित्त्वामेव प्रकृतिं विकृतेः पराम् ।
अपरे परमात्मज्ञाः शिवेति शिवसंश्रये ॥ ११ ॥

कोई-कोई तुम्हीं को प्रकृति-विकृति से परे कहते हैं । परमात्मा को जानने वाले दूसरे तुम्हें शिव के आश्रय में शिवा कहते हैं ।

त्वयि प्रधानं पुरुषो महान्ब्रह्मा तथेश्वरः ।

अविद्या नियतिर्माया कालाद्याः शतशोऽभवत् ॥ १२ ॥

तुममें ही प्रधान, पुरुष, महान्, ब्रह्मा तथा ईश्वर, अविद्या, नियति, माया, कालादि, शताधिक होते हैं।

त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी ।
सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रया निजा ॥ १३ ॥

तुम ही परमा अनन्तशक्ति परमेष्ठी हो। सब भेदों से विनिर्मुक्त और सब भेदों की आश्रय निजस्वरूप हो।

त्वामधिष्ठाय योगेशि पुरुषः परमेश्वरीम् ।
प्रधानाद्यं जगत्कृत्स्नं करोति विकरोति च ॥ १४ ॥

हे योगेशि ! तुम परमेश्वर को प्राप्त होकर पुरुष-प्रधानादि सब जगत का निर्माण करके फिर संहार करती हो।

त्वयैव सङ्गतो देवः स्वमानन्दं समश्नुते ।
त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी ॥ १५ ॥

तुम्हारी संगति से देव अपने आनन्द को प्राप्त होता है। तुम ही परमानन्द और आनन्ददायिनी हो।

त्वमेव परमं व्योम महाज्योतिर्निरञ्जनम् ।
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ १६ ॥

तुम ही परमाकाश, महाज्योति, निरञ्जन हो, शिव, सर्वगत सूक्ष्म, परब्रह्म सनातन हो।

त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामपि ।
सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणामसि शङ्करः ॥ १७ ॥

तुम ही सब देवताओं की शक्र हो, ब्रह्मज्ञानियों की ब्रह्मा हो, सांख्यों में कपिल और रुद्रों में शंकर हो।

आदित्यानामुपेन्द्रस्त्व वसूनां चैव पावकः ।
वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामपि ॥ १८ ॥

आदित्यों में उपेन्द्र हो, वसुओं में पावक हो, वेदों में सामवेद हो और छन्दों में गायत्री हो।

अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः ।
माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामपि ॥ १९ ॥

विद्या में अध्यात्मविद्या, गतियों में परमागति, सर्वशक्तियों की माया, और कलवित करने वाली काल तुम ही हो ।

ॐकार सर्वगुह्यानां वर्णानां च द्विजोत्तमः ।
आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वराणां महेश्वरः ॥ २० ॥

सम्पूर्ण गुह्यों में ॐकार हो; वर्णों में ब्राह्मण, आश्रमों में गृहस्थ और ईश्वरों में महेश्वर हो ।

पुंसां त्वमेव पुरुषः सर्वभूतहृदि स्थितः ।
सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे ॥ २१ ॥

पुरुषों में तुम पुरुष हो, सब भूतों के हृदय में स्थित हो । हे देवि ! सम्पूर्ण उपनिषदों में गुह्य उपनिषद तुम ही हो ।

ईशनश्चासि भूपानां युगानां कृतमेव च ।
आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवि सरस्वती ॥ २२ ॥

भूपालों में ईशता और युगों में सतयुग, हो । सब मार्गों में आदित्य, वाणियों में तुम ही सरस्वती देवी हो ।

त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामपि ।
अरुन्धती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि ॥ २३ ॥

सुन्दर रूप वालों में लक्ष्मी, मायावियों में विष्णु, सतियों में अरुन्धती, और पक्षियों में तुम गरुड़ हो ।

सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठं साम च सामसु ।
सावित्री ह्यसि जप्यानां यजुषां शतरुद्रियम् ॥ २४ ॥

वेद के सूक्तों में पुरुषसूक्त, सामों में ज्येष्ठ साम, जपों में सावित्री, और यजुषों में तुम शतरुद्रिय हो ।

पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामसि ।
सर्वेषां त्वं परंब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥ २५ ॥

पर्वतों में मेरु, भोगियों (सर्पों) में अनन्त हो। सब के परब्रह्म तुम हो और यह सब तुममें है।

रूपं तवाशेषकलाविहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम्।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ॥२६॥

तुम्हारा रूप सब कला से विहीन, अगोचर, निर्मल और एक है। आदि, अन्त, मध्यरहित, अनन्त तुमसे परे है। सबकी आदि तुमको मैं प्रणाम करता हूँ।

यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः।
आनन्दमात्रं परमाविधानं तदेव रूपं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ २७ ॥

जो वेदान्त-विज्ञान से निश्चितअर्थ होकर जब तुमको, इस जगत को उत्पन्न करने वाली के रूप में देखते हैं, तब तुमको तुम्हारे उस आनन्द-मय रूप को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

अशेषसूत्रान्तरसन्निविष्टं प्रधानसंयोगवियोगहेतुः।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥२८॥

सम्पूर्ण के सूत्रान्तर में सन्निविष्ट, प्रधान संयोग-वियोग के हेतु, तेजो-मय, जन्म-विनाश से हीन प्राणरूप तुमको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

आद्यन्तहीनं जगदात्मरूपं विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात्।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तवैव नमामि रूपं पुरुषाभिधानम् ॥ २९ ॥

आदि अन्तहीन, जगत् के आत्मरूप, विभिन्न संस्थानवान्, प्रकृति से परे, कूटस्थ अव्यक्त शरीर, पुरुष रूप तुमको नमस्कार करता हूँ।

सर्वाश्रयं सर्वजगन्निधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम्।
नतोऽस्मि ते रूपमणुप्रभेदमाद्यं महत्त्वे पुरुषानुरूपम् ॥ ३० ॥

सबकी आश्रय, सर्वजगत् की निधान, सर्वत्र गमन करने वाली, जन्म और विनाश से रहित, अणु-प्रभेद आद्य महत्त्व पुरुष के अनुरूप तुम्हारे रूप को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजमैश्वर्यविज्ञानविरागधर्मैः।
समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपं द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थम् ॥३१॥

प्रकृति की अवस्था वाली, त्रिगुणात्म बीज, ऐश्वर्य-विज्ञान-विराग-धर्मों से युक्त, चौदह लोकात्मक, जल में स्थित, देवि ! तुम्हारे रूप को मैं नमस्कार करता हूँ।

विचित्रभेदं पुरुषैकनाथमनन्त भूतैर्विनिवासितं ते।
नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसंज्ञमशेषवेदात्मकमेकमाद्यम् ॥ ३२ ॥

विचित्रभेद पुरुष, एकनाथ, अनन्त भूतों में निवास करने वाली, जगत की अण्डसंज्ञक, अशेष वेद, आद्य, तुम्हारे रूप को नमस्कार करता हूँ।

स्वतेजसा पूरितलोकभेदं नमामि रूपं रविमण्डलस्थम्।
सहस्रमूर्द्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्।
शयानमन्तः सलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मिरूपम् ॥३३॥

अपने से लोकभेद को पूरित करने वाली, रविमण्डल में स्थित तुम्हारे रूप को मैं नमस्कार करता हूँ। सहस्र मूर्द्धा वाले, अनन्त शक्ति, सहस्र-बाहु, पुराणपुरुष, जलके भीतर शयन करने वाले नारायणाख्य तुम्हारे रूप को मैं नमस्कार करता हूँ।

दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवंद्यं युगान्तकालानलकल्परूपम्।
अशेषभूताण्ड विनाशहेतुं नमामि रूपं तव कालसंज्ञम् ॥ ३४ ॥

कराल दंष्ट्रों वाले, देवताओं से नमस्कृत, युगान्त कालानल के समान प्रकाशित, सम्पूर्ण भूमण्डल के विनाश के कारण कालसंज्ञक तुम्हारे रूप को मैं नमस्कार करता हूँ।

फणासहस्रेण विराजमानं भुवस्तलेऽधिष्ठितमप्रमेयम्।
अशेषभारोद्वहने समर्थं नमामि ते रूपमनन्तसंज्ञम् ॥ ३५ ॥
अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं ब्रह्मात्मतानन्दरसज्ञमेकम्।
युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं न तोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंज्ञम् ॥३६॥

सहस्रफणों से विराजमान, पृथिवी के तल में स्थित, अप्रमेय, सम्पूर्ण भार का उद्वहन करने में समर्थ अनन्तसंज्ञक, अव्याहत-ऐश्वर्य, युग्मनेत्र, ब्रह्मानन्द में स्थित, स्वर्ग में नृत्य करने वाले तुम्हारे रुद्रसंज्ञक रूप के सम्मुख मैं मस्तक झुकाता हूँ।

प्रहीणशोकं विमलं पवित्रं सुरासुरैरर्चितपादयुग्मम्।

सुकोमलं देवि विशालशुभ्रं नमामि ते रूपमिदं नमामि ॥ ३७ ॥

शोकरहित, विमल, पवित्र, सुर-असुर से अर्चित चरणकमल, कोमल, विशाल शुभ्र, हे देवी ! तुम्हारे इस रूप के प्रति नमन करता हूँ।

एतावदुक्त्वा वचनं रघुराजकुलोद्वहः ।
सम्प्रेक्षमाणो वैदेहीं प्राञ्जलिः पार्श्वतोऽभवत् ॥ ३८ ॥

रघुकुलोद्वह राजा राम हाथ जोड़ कर इस प्रकार वचन कहते हुये देवी के पार्श्व भाग में स्थित हुये।

अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतीपतेः ।
सस्मितं प्राह भर्तारं शृणुष्वैकं वचो मम ॥ ३९ ॥

तब जगत्पति के वचन को सुन कर हँसती हुई जानकी अपने पति से बोलीं कि 'आप हमारा एक वचन सुनिये।

गृहीतं यन्मया रूपं रावणस्य वधाय हि ।
तेन रूपेण राजेन्द्र वसामि मानसोत्तरे ॥ ४० ॥

रावणवध के निमित्त मैंने जो यह रूप धारण किया है इस रूप से मैं, हे राजेन्द्र ! मानस के उत्तर भाग में निवास करूँगी।

प्रकृत्या नीलरूपस्त्वं लोहितो रावणार्दितः ।
नीललोहितरूपेण त्वया सहवसाम्यहम् ॥ ४१ ॥
गृहाण च वरं राम मत्तो यदभिकांक्षितम् ।

हे राम ! प्रकृति से नील रूप तुम, रावण से अर्दित होने से लोहित वर्ण हुये हो अतः मैं नील लोहित रूप से तुम्हारे साथ निवास करूँगी। हे राम ! जिस वर की इच्छा हो वह मुझसे माँगिये।'

तच्छ्रुत्वा राघवो वीरः प्रतिश्रुत्य गिरौ स्थितिम् ॥ ४२ ॥
भारद्वाजांशभागेन ययाचे परमेश्वरीम् ।
देवि सीते महाभागे दर्शितं रूपमैश्वरम् ॥ ४३ ॥
हृदयान्नापगच्छेत्तदिति मे दीयतां वरः ।

यह सुनकर वीर राघव ने उस पर्वत की स्थिति को स्वीकार कर, हे भरद्वाज ! अंश भाग द्वारा परमेश्वरी से यह माँगा : 'हे महाभागे देवी

सीते ! तुमने ईश्वर सम्बन्धी जो यह रूप दिखाया है वह मेरे हृदय से कभी न जाय, यही वर मुझे दीजिये ।

भ्रातरो मम कल्याणि वानरोः सविभीषणाः ॥ ४४ ॥

सेनान्यो मम वैदेहि अयोध्यायोधमुख्यकाः ।

सपुनस्ते सङ्गताः सन्तु मया रावणतर्जिताः ॥ ४५ ॥

हे कल्याणी : मेरे भ्राता, वानर और विभीषण आदि सुहृद, अयोध्या-मुख्य हमारी सेना के लोग जो रावण द्वारा तर्जित हो गये हैं वे मुझसे पुनः मिल जाँय ।'

एतस्मिन्नंतरे चाभूदाकाशे दुन्दुभिस्वनः ।

पपात पुष्पवृष्टिश्च रामसीतोपरि द्विज ॥ ४६ ॥

हे द्विज ! उसी समय आकाश से दुन्दुभी का शब्द होने लगा तथा राम और सीता के ऊपर पुष्पों की वृष्टि होने लगी ।

प्रहस्य सीता पुनराह रामं तथेति रामोऽपि विरिंचिमुख्यान् ।

स तान्विसृज्य प्रतिगृह्य सीतां गन्तुं स्वकं देशमसावियेष ॥४७॥

तब हँस कर सीता ने राम से कहा कि ऐसा ही होगा । तब रामचन्द्र ने ब्रह्मा आदि देवताओं को विदा कर सीता को लेकर अपने देश जाने की इच्छा की ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
श्रीरामविजयोनामषड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशति सर्ग

श्रीराम का अयोध्या आना

रामस्तु पुष्पकारूढः सीतामालिंग्य बाहुना ।

अयोध्यामगमद्वीरः काकुत्स्थकुलनन्दनः ॥ १ ॥

पुष्कर पर आरूढ़ होकर अपने बाहुओं से सीता का आलिङ्गन कर वह काकुत्स्थ कुलनन्दन राम अयोध्या को चले ।

रथनेमिस्वनं श्रुत्वा रामदर्शनलालसाः ।

भ्रातरो भरताद्यास्ते योधमुख्याश्च ते तथा ॥ २ ॥
राममागतमाज्ञाय ससीतं सऋषिव्रजम् ।
प्रणेमुः सहसागत्य आनन्दाश्रुकणाकुलाः ॥ ३ ॥

उस पुष्पक का शब्द सुन कर राम के दर्शन की लालसा वाले भरत आदि भ्राता और मुख्य योद्धाओं ने, सीता और ऋषियों के साथ राम को आया जान कर आनन्दाश्रु से भरे सहसा आकर उनको (राम को) प्रणाम किया ।

वानरान्राक्षसान्सर्वानानय्य स्वपुरं हि सः ।
सर्वं तत्कथयामास रामः कमललोचनः ॥ ४ ॥

सब वानर-राक्षसों को अपने पुर में लाकर कमललोचन राम ने रावण वध का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ।

तच्छ्रुत्वा विस्मिताः सर्वे साधुसाध्विति वादिनः ।
सीतां तत्त्वेन विज्ञाय रामं च मधुसूदनम् ॥ ५ ॥
तदेवं चिन्तयन्तस्ते स्वं स्वं स्थानं ययुर्मुदा ।
विसृष्टा रामभद्रेण सांत्वपूर्वं महात्मना ॥ ६ ॥

उसे सुन कर सब विस्मित हो धन्य-धन्य कहने लगे । तत्व से सीता को जानकर और राम को मधुसूदन जानकर यही विचार करते हुए वे सब अपने-अपने स्थान को चले गये । उन महात्माओं को रामचन्द्र ने सत्कारपूर्वक विदा किया ।

ऋषयश्चाभिनंद्यैनं ससीतं रघुनन्दनम् ।
आशीर्भिर्वर्धयामासुर्ययुश्चापि यथागतम् ॥ ७ ॥

सीतासहित रघुनन्दन का अभिनन्दन करके और आशीर्वादों से उनका वर्द्धन करके ऋषिजन अपने-अपने स्थान को गये ।

रामोऽपि सीतया सार्द्धं भ्रातृभिश्च महात्मभिः ।
चक्रे निष्कण्टकां पृथ्वीं देवानां च महद्धितम् ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्र ने भी सीता और महातमा भ्राताओं के साथ देवताओं के हित के निमित्त पृथिवी को निष्कण्टक कर दिया ।

यज्ञान् बहुविधांश्चक्रे सरयूतीर उत्तमे ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥
किञ्चिदभ्यधिकं चैव रामो राज्यमकारयत् ॥ ९ ॥

उन्होंने (राम ने) सरयू के किनारे अनेक उत्तम यज्ञ किये। इस प्रकार ग्यारह सहस्र वर्ष से कुछ अधिक राम ने राज्य किया ।

देवकिन्नरगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
रामं नमन्ति सततं गुणारामं रमापतिम् ॥ १० ॥

देव, किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर, महान सर्प गुणों की खान रमापति राम को सदा प्रणाम करते थे ।

एतत्ते कथितं भद्र भारद्वाज महामते ।
तेषु किञ्चिदिहाश्चर्यमुक्तं रामकथाश्रयम् ॥ ११ ॥

हे महामते भरद्वाज ! आपके लिये इस सब का कथन किया । राम-चरित्र अनेक हैं। मैंने उनमें से कुछ रामकथा के आश्रय वाले चरित्रों का वर्णन किया है ।

सर्वं न वक्तुमिच्छामि पुनरुक्तिभयाद्द्विज ।
ब्रह्मणा गोपितं तच्च अतोऽपि न तदुक्तवान् ॥ १२ ॥

पुनरुक्ति के भय से मैं सब कुछ कहने में समर्थ नहीं हूँ । ब्रह्माजी ने इसे गुप्त कर रक्खा था इसी कारण मैंने तुमसे वर्णन नहीं किया था ।

अद्भुतोत्तरकाण्डे तत्कथितं वेदसंमितम् ।
शृणोत्यधीते यश्चैतत्स ब्रह्म परमाप्नुयात् ॥ १३ ॥

इस वेदसम्मत अद्भुत्तोत्तर काण्ड का वर्णन किया गया। जो इसे पढ़ते या सुनते हैं वे परब्रह्म को प्राप्त होते हैं ।

श्लोकमेकं तदर्धं वा शृणुयाद्यश्च मानवः ।
प्रातर्मध्याह्नयोगे वा स याति परमां गतिम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य इसके एक या अधिक श्लोक को सुनते हैं, उनको प्रातः मध्याह्न योग में पढ़ने से परमगति की प्राप्ति होती है ।

पञ्चविंशतिसाहस्रं रामायणमधीत्य यत् ।

फलमाप्नोति पुरुषस्तदस्य श्लोकमात्रतः ॥ १५ ॥

पच्चीस सहस्र रामायण पढ़ कर जो पुण्य प्राप्त होता है वह इसके एक श्लोक से मिलता है।

न श्रुतं नाप्यधीतं वा येना श्रुतमिदं द्विज ।
स गर्भान्निःसृतो नैव यथा भ्रूणस्तथैव सः ॥ १६ ॥

जिसने इसको पढ़ा नहीं है अथवा सुना नहीं हैं वह गर्भ से न निकले हुये भ्रूण के समान है।

रामायणमिदं श्रुत्वा न मातुर्जठरे विशेत् ।
वेदाश्चत्वार एकत्र तुलया चेदमेकतः ॥ १७ ॥
विधात्रा तुलितं शास्त्रं सर्वदेवाग्रतो द्विज ।
इदं तु सर्ववेदेभ्यो गौरवादतिरिच्यते ॥ १८ ॥

इस रामायण को सुनकर फिर माता के उदर में प्रवेश नहीं करना पड़ता। चार वेद एक ओर और इस रामायण को एक ओर रख कर विधाता ने देवताओं के सामने इसको तौला तो इसे गौरव में वेदों से अधिक पाया गया।

शक्राय स्वर्णदीतीरे पुरा पृष्टोऽहमब्रुवम् ।
तदेव तव चाख्यातमद्भुतोत्तरकाण्डकम् ॥ १९ ॥

स्वर्ण नदी के किनारे पहले मैंने इन्द्र के पूछने पर इस कथा को कहा था। उसी अद्भुतोत्तर काण्ड का तुमसे वर्णन किया है।

रामायणं महारत्नं ब्रह्महृत्क्षीरधावसूत् ।
नारदान्तः समासाद्य क्रमान्मम हृदि स्थितम् ॥ २० ॥

यह रामायणरूपी महारत्न ब्रह्माजी के हृदयरूपी क्षीरसमुद्र में स्थित था। तदनन्तर यह नारद के अन्तर में प्राप्त होकर क्रम से मेरे हृदय में प्राप्त हुआ है।

तत्सर्वं ब्रह्मणो लोके निःशेषमवतिष्ठते ।
किञ्चिदुर्व्यां च पाताले त्रिदिवे शक्रसन्निधौ ॥ २१ ॥

यह सब चरित्र तो ब्रह्मलोक में स्थित है। कुछ पृथिवी-पाताल में, और स्वर्ग में इन्द्र के समीप स्थित है।

विरिञ्चिर्नारदोऽहं च त्रय एवास्य पारगाः ।
चतुर्थो नोपपद्येत बुद्ध्वेदं सुस्थिरो भव ॥ २२ ॥
यदुक्तमद्भुते काण्डे पुनस्ते कथयाम्यहम् ।

ब्रह्मा, नारद और मैं—ये तीन ही इसके पारगामी हैं, चौथा कोई नहीं है ऐसा जानकर स्थिर हो । जो कुछ इस अद्भुत्तोत्तर काण्ड में कहा गया है उसकी सूची तुमसे कहता हूँ :

श्रीरामजन्मवृत्तान्तः श्रीमतीचरितं महत् ॥ २३ ॥
दण्डकारण्यकस्थानां शोणितेन महात्मनाम् ।
नारदस्य च शापेन लक्ष्म्याश्चैवापराधतः ॥ २४ ॥
मन्दोदरीगर्भनिष्ठा वैदेही जन्म चोक्तवान् ।
रामस्य विश्वरूपं च भार्गवेण च वीक्षितम् ॥ २५ ॥

श्रीराम का जन्मवृत्तान्त, श्रीमती का महान चरित्र, दण्डकारण्य में रहने वाले महात्माओं का रुधिर लेना, नारद के शाप से और लक्ष्मी के अपराध से मन्दोदरी के गर्भ से वैदेही का जन्म, रामचन्द्र द्वारा भार्गव (परशुराम) को विश्वरूप दिखाना,

ऋष्यमूके हनुमता चतुर्बाहूरघूत्तमः ।
दृष्टो भिक्षुस्वरूपेण सुग्रीवसख्यमुक्तवान् ॥ २६ ॥

ऋष्यमूक में हनुमान को रघुश्रेष्ठ द्वारा चतुर्भुज रूप का दर्शन देना, और भिक्षु रूप दिखा कर हनुमान द्वारा सुग्रीव से (राम की) मित्रता कराना,

लक्ष्मणाङ्गजतापेन शोषणं वारिधेः पुनः ।
प्राप्तराज्यस्य रामस्य मुनीनां सन्निधौ तथा ॥ २७ ॥
सीतायाः कथनं श्रुत्वा सहस्रास्यस्य रक्षसः ।
मानसोत्तरशैलेन्द्रे स्थितिं ज्ञात्वा रघूद्वहः ॥ २८ ॥

फिर लक्ष्मण के अंग से उत्पन्न ताप से सागर का शोषण, फिर राज्य प्राप्त कर राम द्वारा मुनियों के निकट सीता से सहस्रमुख रावण का वृत्तान्त सुन कर और मानस के उत्तर पर्वत पर उसकी स्थिति को जानकर

जगाम पुष्करद्वीपं भ्रातृभि सह वानरैः ।
सीताया ऐश्वरं रूपं रावणस्य वधस्तथा ॥ २९ ॥

राम का वानरों और भ्राताओं सहित पुष्कर द्वीप में जाना, सीता का ईश्वररूप और सहस्रमुख रावण का वध,

अयोध्यागमनं रामस्यैव वृत्तान्त संग्रहः ।
वृत्तान्तसंग्रहं चापि पठित्वा रामभक्तिमान् ॥
जायते मुनिशार्दूल नात्र कार्या विचारणा ॥ ३० ॥

फिर अयोध्या में आगमन आदि वृत्तान्तों का संग्रह है। इस वृत्तान्त संग्रह को पढ़कर ही व्यक्ति राम में भक्तिमान् होता है—इसमें हे मुनि-शार्दूल ! कोई सन्देह नहीं है ।

पठेच्च यो रामचरित्र मेतत्पुनाति पापात्सुकृतं लभेत ।
तीर्थाभिषेकं समरे जयं च स सर्वयज्ञस्य महत्फलं च ॥३१॥

जो कोई इस रामचरित्र को पढ़ता है पापों से तर कर सुकृति को प्राप्त होता है; तीर्थ का अभिषेक, समर में जय, और सर्वयज्ञों का महत्फल प्राप्त करता है ।

भजेत यो राममचिंत्यरूपमेकेन भावेन च भूमिपुत्रीम् ।
एतत्सुपुण्यं शृणुयात्पठेद्वा भूयो भवेन्नो जठरे जनन्याः ॥३२॥

जो अचिन्त्य रूप राम का भजन करता है वह एक भाव से भूमिपुत्री (सीता) का भजन करता है। जो इस पवित्र ग्रन्थ को पढ़ता या सुनता है वह फिर माता के गर्भ में स्थित नहीं होता और मुक्त हो जाता है ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अद्भुतोत्तरकाण्डे
श्रीसीतारामायोरयोध्यागमनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

ग्रन्थ समाप्त

A Metrical English Translation of
Complete Works of
GOSVAMI TULSIDAS
by S. P. Bahadur

Gosvami Tulsidas was a Saint-Poet born towards the close of the fifteenth century. Ever since he has won the hearts of multitudes and captivated the imagination of millions of people by the beauty of his compositions and the simplicity of his viewpoint on Religion and Morality. The profoundness of his learning and exquisite beauty of his literary expression is marvellous. His works, for these qualities, have in India and in the Hindu world, acquired a scriptural sanctity.

The publication is for the first time a Metrical Transation of his Complete Works and includes an exhaustive Introduction to each Work, Metrical Translation of the Text, detailed Explanatory Notes and a comprehensive Glossary at the end.

The Set consists of the following Volumes :

Vol. I	Dohavali	Rs. 30/-
Vol. II	Vinaya Patrika	Rs. 50/-
Vol. III	Gitavali	Rs. 50/-
Vol. IV	Ramayana	Rs. 50/-
Vol. V	Kavitavali	Rs. 40/-
Vol VI	Miscellaneous Works	Rs 30/-
	Total for the Set	Rs. 250/-

PRACHYA PRAKASHAN
VARANASI

पुस्तक मिलने का पताः—

असतो मा सद्गमय

प्राच्य प्रकाशन

७४-ए, जगतगंज, वाराणसी